श्रीः।

उद्योग प्रारब्ध विचार।

अर्थात्

श्रीकाशीनिवासि निर्मल पं० स्वामिगोविन्दसिंहसाधु कृत विविधयुक्तिप्रमाणविभूषित "प्रारब्ध तथा उद्योग" के परस्पर निर्बल सबल विचार विषयक

"अत्युत्तम निबन्ध"

जिसको

खेमराज श्रीकृष्णदासश्रेष्ठिने

बंबई

निज "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) प्रेसमें

छापकर प्रकाशित किया.

संवत् १९५८, शके १८२३.

विक्रय्यपुस्तकें-वेदान्तग्रन्थाः

पुस्तकोंका नाम.	कीमत.
ब्रह्मसूत्र (शारीरक) भाषाटीका	१॥)
वेदान्तपरिभाषा शिखामणि टीका और मणिप्रभा टीका समेत	२॥)
वेदान्तपरिभाषा अर्थदीपिका टीकासमेत	१)
वेदान्तपरिभाषा अत्युत्तम भाषाटीका समेत	१।)
वेदांतसार संस्कृतमूल और संस्कृतटीका तथा भाषाटीका सहित	॥।)
पंचदशीसटीक (संस्कृत टीका)	२)
पंचदशी पं० मिहिरचंद्रकृत अत्युत्तम भाषाटीका सहित	४)
पंचदशी भाषा-आत्मस्वरूपजी कृत	४)
गीता चिद्घनानंदस्वामिकृत गूढार्थदीपिका मूल अन्वय पदच्छेदके सहित भाषाटीका	७)
गीता आनन्दगिरिकृतभाषाटीका	२)
श्रीमद्भगवद्गीता सान्वयब्रजभाषा दोहासहित	१।)
गीतामृततरंगिणी भाषाटीका (रघुनाथप्रसादकृत) अक्षर बड़ा	१)
गीतामृततरंगिणी भाषाटीका पाकिटबुक	॥।)
श्रीरामगीता मूल	≈)
श्रीरामगीता भाषाटीका-पदप्रकाशिका अनुवादसमुच्चय और विषमपदी के सहित	॥)
श्रीमद्भगवद्गीतापंचरत्नअक्षरमोटा गुटकारेशमी	१)

भूमिका ।

इस विचित्र संसारमें मनुष्यमात्र का उसमेंभी विशेष कर भारत निवासियोंका ऐसा स्वभाव है कि, जहांपर इनकी जैसी ध्वनि लगजाय उसीको अपनी वंशपरंपरातक भी सहस्रों वर्ष गाते रोते मरजातेहैं. परन्तु उससे हानि लाभ सोचनेकी किसीकी भी सामर्थ्य नहीं होती. उदाहरणके लिये आप एक प्रारब्धके मसलेहीको लेलीजिये सहस्रों नहीं लक्षों पुरुष समर्थ होकर भी हाथोंपर हाथ धरकर अपने दिन बिताया करतेहैं. परन्तु जब उनसे कोई किसी कामका नाम लेवे तो वे एक प्रारब्ध शब्दहीसे सबका उत्तर देतेहैं तथा समय २ पर यथा कथंचित् जैसे कैसे अन्नोदकसे भी अपना पालन पोषण करते हुए तृण तोड़कर दोहरा करनाभी नहीं चाहते. कारण इसका यही है कि, एक तो इस देशमें धनसंग्रहकी पुरानी प्रथा चलीआतीहै और दूसरे वर्तमान समयमें बहुधा जनसमुदाय इस देशमें कृपण तथा मन्दमति उत्पन्न होतेहैं धनसंग्रहकी प्रथा प्राचीन है परन्तु पूर्वकालमें लोग अधिक यत्नसे अधिक पैदाकरतेथे अपने यथायोग्य पालन पोषणसे शेष बचे धनको संग्रह भी करतेथे या सर्वसाधारणके उपयोगमें आनेवाले वापी कूप तड़ागादि धर्मकार्य्योंमें खर्च करतेथे परन्तु पेटसे भूखारहकर या कपडेभी अच्छीतरहसे न पहरकर कोई पुरुष पैसे जमाकरने वाला पैदा नहीं होताथा. परन्तु वर्तमानकालमें पूर्वकालसे सबही विपरीत हैं अर्थात् इस देशमें यदि संग्रह करनेवाले दीखतेहैं तो ऐसे हैं कि, उनको अपने स्त्री पुत्रादि कुटुंबका पालनकरना तो किनारे रहा अपने पेटभर खानेमें भी खेदसा मानते हैं ऐसे ही एक पापी जमाकरके मरजाता है तो वह बनीबनाई रकम दूसरे कृपणके हाथ आती है या मूढके हाथ आतीहै यदि कृपणके हाथ आतीहै तो वह तो अपने पूर्वजोंकी तरह ही उस रकमको बनीरहने देताहै और सकुटुम्ब पेटसे भी दुःखितहोकर अन्तमें हाड़ रुलाकर मरजाता है तथा वही बनीबनाई पूंजी भावी पापी या मूर्खकेलिये छोडजाताहै । और यदि वह कृपणकी रकम मूर्खके हाथ आती है तो वह

लाखों रुपया महीनोंमें खोयकर शेष इधर उधर धक्के ही खाकर मरताहै। तात्पर्य्य यह कि, सहस्रोंमें एक ऐसा पुरुष उत्पन्न होता है जो कि, अपने पूर्वजोंके कियेहुए प्रयत्नकेसाथ अपना प्रयत्न मिलाकर अपने पूर्वजोंके नामका उत्तेजन तथा स्वयं यथायोग्य संसारका सुख अनुभव करता है अन्यथा बाकी सबही निष्फल जातेहैं। मेरा यह अभिप्राय नहीं है कि, धनका संग्रह करना बुरा है किन्तु यह अवश्य है कि, जो मनुष्य पास धन होते अपने या अपने कुटुम्बके पालन पोषणमें या अपनी सन्तानके शिक्षादेनेमें संकोच करताहै वह नीच है यह पूर्वोक्त प्रथा अच्छी स्थितिवाले मनुष्य वर्गकी कही है इसके अतिरिक्त दो तरहके मनुष्य भारतभूमिमें और भी उत्पन्न होतेहैं। एक तो वे कि, जिनको जन्मसे लेकर माता पिताने कुछ भी शिक्षा नहीं दी. किन्तु जैसे कैसे पालन पोषणकर युवावस्थापन्न करदिया है ऐसे होकर वे लोग अनेक प्रकारके अनर्थ करनेमें प्रवृत्त होजातेहैं अर्थात ठगी चोरी डकैती इत्यादि अनेकतरहकी बुराईमें प्रवृत्त होकर अपना पालन पोषण करते हैं। दूसरा मनुष्यदल एक ऐसा उत्पन्न होताहै कि, असमर्थ होनेके कारण माता पिताकी तरफसे तो वह शिक्षा कुछ नहीं पाता परन्तु जैसे कैसे कुछ थोड़ासा प्रयत्न करके इतनी बुद्धि सीखलेता है कि, बुरेकामोंका नतीजा सदा बुरा ही होता है इसलिये हमको बुरेका-मोंसे बचेरहना चाहिये। अब ऐसी दशामें ऐसे दलको खान पानादिकी सदा त्रुटी ही रहती है, क्योंकि संसारमात्रमें ऐसा देखनेमें आता है कि, जिस पुरुषने दूसरेका पैदा किया नहीं खानाहै किन्तु अपने प्रयत्नसे पैदाकर के खानाहै उसको कोई अवश्य विशेष काम या रोजगार सीखना चाहिये परन्तु ऐसे दलको बूढे होनेतक भी आता तो कुछ भी नहीं शेषमें साधु संन्यासी अन्नक्षेत्रोंको अपना आश्रय जानकर इधर उधर चलते फिरते अपनी प्रारब्धको रोते गाते मरजातेहैं. इसलिये इन चारोंप्रकारके मनुष्य-वर्गके लिये इस हमारे ग्रन्थका उपयोग कुछभी नहीं, शेष रहा एक थोडासा पञ्चमदल जो कि, यथाशक्ति कुछ थोडासा लिख पढकर काररोजगारमें

समर्थ होकर भी अपनी प्रारब्धकी मालाको फिराताहुआ जान बूझकर दुःख उठारहा है ऐसे मनुष्यवर्गकेलिये हमारा यह ग्रन्थ परम उपयोगीहै मेरेको यह पूर्ण विश्वास है कि, विचारशील पुरुष यदि प्रेमपूर्वक इस ग्रन्थको आद्योपान्त अवलोकन करेगा तो अवश्य उसको प्रबल युक्तिप्रमाणोंसे उद्योगहीकी प्रधानता तथा प्रारब्धकी निपट गौणता प्रतीत होगी, यद्यपि इस सांसारिक विचित्र घटनाओंमें अनेक स्थलोंमें ऐसा भी निश्चय होता है कि, जहां सिवाय प्रारब्धके दूसरी गति ही नहीं दीखपड़ती । तथापि इस ग्रन्थमें थोडेसे इतिहास तथा उदाहरण ऐसे लिखदियेगयेहैं कि, उद्योग पक्षपाती पुरुष उनकी तरह उनका भी वही उत्तर करसकताहै. यहां पर अधिक लिखना व्यर्थ है, इस ग्रन्थके लिखनेका मेरा हार्दिक भाव यही है कि, प्रत्येक पुरुषको अपनी प्रारब्धके भरोसेपर हाथपर हाथ धरके कालक्षेप नहीं करना चाहिये किन्तु सभीको इस ग्रन्थके नायक मनोहरसिंह कुमारकी तरह अपने गतभागकी तरफ दृष्टि करनीचाहिये तथा उसकी प्राप्तिकेलिये जहांतक बनपडे विशेष उपाय करनाचाहिये इति ।

ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां ।
जानंतु ते किमपि तान्प्रति नैष यत्नः ॥
उत्पत्स्यतेऽस्ति मम कोऽपि समान धर्मा ।
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी ॥ १ ॥

(मालतीमाधव)

आपका-निर्मलपं० स्वामी **गोविन्दसिंहसाधु.**

उद्योगप्रारब्ध विचारानुक्रमणिका।

इत्यनुक्रमणिका समाप्ता।

ॐ

उद्योग-प्रारब्धविचार ।

प्रथम विश्राम ।

दोहा ।

विघ्न व्याल विष वार हित, जास नाम गरुडाय ॥
सो श्री गुरुनानक सदा, दासन करै सहाय ॥ १ ॥
मति अनुमत कछु करतहों, उद्यम दैव विचार ॥
सम निर्बल वा सबल को, बुधजन लेहु सुधार ॥ २ ॥

अथ कथा प्रस्ताव ।

(छप्पय.)

चंद्रकीर्ति नरनाह देश दक्षणमें नीको ॥
परम भक्त जगदीश चरण सेवक सियपीको ॥
राजकाज गज बाजि प्रजा सन्तति सम जाके ॥
धर्म कर्म विन दाम दैन इक छद्म न ताके ॥
वृद्धवयस संततिविना, निशदिन शोकातुर भयो ॥
ईश कृपाते तासु गृह; सुंदर सुत इक उपजयो ॥ ३ ॥

अथ राजकुमार नाम स्वरूप स्वभाव वर्णन ।

(छप्पय.)

नाम मनोहर तास पुकारत लोग रैन दिन ॥
क्षत्रवंश अवतंस हंस गुण रूप मान विन ॥
मधुर बैन प्रिय नयन सभीको लागत नीको ॥
करत बडन को नमन खैंच जन लेवत जीको ॥
परम पुनीत सुनीत मन, मोद होत पक्षी पिखे ॥
दूज चांद सम देखबे. धने चहें कबहूं दिखे ॥ ४ ॥

अर्थात् जिस समय परम देशोपकारक विद्वच्छिरोभूषण महामहोपदेशक श्रीशंकराचार्य्य स्वामीहुए उसीसमयके कतिपय शताब्दी पीछे दक्षिण देशमें कतिपय ग्रामाधिपति एक चन्द्रकीर्ति नामक राजाकी अन्तिमअवस्थामें उसके एक पुत्र हुआ जिसका नाम मनोहरसिंह था। वह राजकुमार १५ वर्षकी आयुमें अपने विद्याविनयादि गुणोंसे तथा रूपयौवनसे अपने नामको सार्थक करने वाला था। विद्योपयुक्त होकर पूर्वसंस्कारके अनुसार उस राजकुमारने तत्वदर्शी साधु महात्माओंके सत्संगको श्रेष्ठ समझा। इसनें अनेक विद्वानोंसे वार्तालाप कर लाभ उठाया। ऐसे ही उपदेश करते २ श्री शंकरस्वामीके अनुगामी लोगभी वहां पधारे और उनके उपदेश राजकुमारने परम प्रेमसे सुने ॥ श्रीशंकर स्वामीके अनुगामी सत्पुरुषोंके उपदेश यद्यपि नीति ज्ञान देशोपकारादि अनेक अनवद्य भावोंसे भरेथे तथापि उन सारगर्भित उपदेशोंसे राजकुमारको यही निश्चय हुआ कि जो कुछ शुभाशुभ कर्म वा भोग पुरुषको होताहै वह संपूर्ण प्रारब्धका प्रभाव है ॥ स्वयं भावि भोगार्थ प्रयत्नशील होना अविश्वासी वा असंतोषी पुरुषोंका काम है जिन महापुरुषोंको अपने प्रारब्धपर भरोसा है वे महात्मा सर्व दशामें प्रफुल्लित ही रहते हैं क्योंकि उनको दृढ विश्वासहै जो होनेवाला है सो अवश्य होगा जो नहीं होनेवाला है उसको ब्रह्मा भी करनेको असमर्थ है॥ और अविश्वासी पुरुषको तो रात्रिमें निद्राभी दुर्लभ है ॥ कुमारकी ऐसी दृढ विश्वासरूप अदमनीयदशाको देखकर परम प्रवीण नीतिनिपुण महाराज चन्द्रकीर्तिने विचारा कि यह राजकुमार यदि ऐसे ही स्वप्रारब्धपर विश्वस्त रहकर अपने राज्यकार्य्योंमें दृष्टिपात नहीं करेगा तो अवश्य मेरे पश्चात् शत्रुओंसे राज्य छिनाकर प्रारब्धके भरोसे आयुः पर्य्यन्त अनेक विध क्लेश उठावेगा ॥ परन्तु यत्नशील न होगा। प्रजाका पालन तो दूररहा स्वकीय पालन भी न करसके गा ॥ इसलिये कोई ऐसा उपाय सोचा जावे कि जिससे यह राजकुमार राज्यकार्य्योंमें दत्तदृष्टि होवे ॥ राजाने बहुत काल ऐसा सोचा परंतु कोई योग्य उपाय उसकी बुद्धिमें न आया ॥ उसके समझानेके लिये राजाने कईएक पण्डितोंको तथा राज्याधिकारी मंत्री

मुसाहिबोंको उपयुक्त किया । परन्तु पूर्णरीतिके उपदेशसे राजकुमारके मन्तव्य पलटदेनेका किसीको साहस न हुआ। प्रकृत विषयपर जिस २ पुरुषने राजकुमारके साथ वार्तालाप किया उसी २ को राजकुमारने अनेक प्रबल युक्ति प्रमाणोंसे प्रारब्धकी प्रबलता स्वीकार कराई ॥ ऐसी आश्चर्य्य घटनाको देखकर राजा प्रतिक्षण शोकसागरमें निमग्न रहे और मनमें कहे कि हे ईश्वर! प्रारब्धपर विश्वासी यह राजकुमार अपनी बाणीको तो प्रारब्ध पर नहीं रखता। इसने अपनी युक्तियुक्त वाक्पटुताके उद्योगसे अनेक विद्वानोंको स्वकीय मन्तव्य मनाया । परन्तु राजकार्योंमें उसी बुद्धिको प्रवृत्त नहीं करता । इसी तरह कुमारदशासे शोकतुरराजाने कितने दिन ऐसे ही ईश्वरप्रार्थनामें बिताये तो दैवात् देश देशान्तर दर्शनाभिलाषी तर्कवाचस्पति विद्वच्छिरोमणि पण्डित गोविन्दहरिनामक विद्वान् उसी राजधानीमें पधारे। उनके युक्तियुक्त सदुपदेशकी प्रशंसा महाराज चन्द्रकीर्तिके कर्णाक्रान्त हुई ॥ तो उनको राजाने अति सन्मानपूर्वक स्वागार में बुलाय एकान्तमें निविष्ट कर अपने अभीष्टको स्पष्ट निवेदन किया ॥ पण्डितने प्रार्थनापूर्वक राजवाणी सुनकर स्वीकार करी और राजाको धैर्य्य दिया कि आपका कार्य्य अति शीघ्र होगा बालककी बुद्धि स्वच्छ और जलस्निग्ध मृत्तिकावत् अति मृदु होती है आशा है कि जैसा चाहें वैसे पलटे गी। पण्डितकी ऐसी वाणी सुनकर राजाके मनमें संतोष हुआ और पण्डितजीको कुछ पारितोषिक देनेकी प्रतिज्ञा की। पण्डितजीने पारितोषिक स्वीकार किया तथा राजसभामें भगवद्गीताकी कथाका प्रारम्भ राजाको स्वीकार कराय दूसरे दिन १ प्रहर दिनशेष रहे अनेकविध पूजनादि उत्साहयुक्त कथाका राजसभामें प्रारम्भ किया। विलक्षण धूम धाम देखकर राजकुमार भी राजसभामें यथायोग्य स्थानपर आन बैठा । पण्डितजीने कथाप्रारम्भ समय भगवद्गीता के आगे प्रार्थनारूप मंगल किया वह श्लोक यह है:—

अर्जुनाद्यलसानां स्वत उद्योगिकारिके ॥
लज्जां मे रक्षतात्मातर्जगज्जालविदारिके ॥ १ ॥

अर्थ–हे मातः गीते जैसे तैने अर्जुनादि अति आलसी पुरुषोंको उद्योग शाली बनाया वैसे मेरी जिह्वाद्वारा इस राजकुमारको भी उद्योगी करके मुझ दासकी इस राजसभामें लज्जा राख ॥ १ ॥

ऐसे मंगलकर पण्डितने कथाका प्रारम्भ किया ॥ अनेक भाव कटाक्ष युक्त मधुर स्वरनिःसृत कथा राजकुमारने दत्तचित्त होकर श्रवण करी और दूसरे दिन राजकुमारने प्रेमपूर्वक श्रवण करनेकेलिये अपना आसन पण्डितके अग्रभागमें बिछवाया ऐसी घटनाको देख राजा तथा पण्डित दोनों प्रसन्न हुए ॥ अति उत्साहित होकर पण्डितजी और भी प्रेमसे कथा करने लगे और शुभगुणसारग्राही राजकुमार भी कथाप्रेमतन्तुसे बद्ध होकर सबसे अग्र ही सभाभवनमें प्रतिदिन आय २ बैठने लगा ऐसे ही चार पांच रोज व्यतीत हुए तो गीताके (३) अध्यायका (८) वां श्लोक आया वह यह है ॥

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः ॥
शरीरयात्राऽपि च ते न प्रसिध्येदकर्मणः ॥ १ ॥

अर्थ–श्रीकृष्णदेव अर्जुनको कहते हैं हे अर्जुन ! तुम नियमपूर्वक शुभकर्मों को करो कर्मोंके न करनेसे कर्मोंका करना श्रेष्ठ है क्योंकि कर्मोंके अभावसे तुम्हारी शरीरयात्रा भी सिद्ध न होगी अर्थात् बुद्धिपूर्वक शारीरिक प्रयत्न विना खान पानादि शरीरयात्राका निर्वाह भी नहीं होगा इसलिये शुभकर्म दृढ प्रयत्नसे अवश्य करने उचितहैं ॥ ऐसे ही गीताके इस श्लोकके भावको लेकर अनेक ग्रन्थकारोंने उद्योग ही की प्रशंसा करी है जैसे ॥ १ ॥

उद्योगः खलु कर्तव्यः फलं मार्जारवद्भवेत् ॥
जन्मप्रभृति गौर्नास्ति पयः पिबति नित्यशः ॥ १ ॥

पुरुषको उद्यम अवश्य करना चाहिये उसका फल बिल्लीकी तरह अवश्य ही होताहै जैसे कि जन्मसे लेकर उसके पास गौ नहीं परन्तु अपने उद्यमसे प्रतिदिन दूधपान करताहै ॥ १ ॥

उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्य्याणि न मनोरथैः ॥
नहि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः ॥ २ ॥

यावत् काय्योंकी सिद्धि उद्यम करनेसे होती है केवल मनोरथमात्रसे नहीं होती जैसे कि शयनकिये सिंहके मुखमें मृग आप ही नहीं आपड़ते किंतु यत्न से सिंह मृगोंको मारताहै ॥ २ ॥

काकतालीयवत्प्राप्तं दृष्ट्वापि निधिमग्रतः ॥
न स्वयं दैवमादत्ते पुरुषार्थमपेक्षते ॥ ३ ॥

अकस्मात् प्राप्त धनको आगे पड़ा देखकर भी पुरुषका प्रारब्ध नहीं उठाता किन्तु अपने यत्नसे पुरुष स्वयं उठाता है ॥ ३ ॥

आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान्रिपुः ॥
नास्त्युद्यमसमो बन्धुः कृत्वा यं नावसीदति ॥ ४ ॥

शरीरमें विद्यमान आलस्यहीं पुरुषोंका अतिशत्रु है और उद्योगके समान पुरुषका कोई बन्धु नहीं है इसके सेवनसे पुरुष दुःख नहीं उठाता ॥ ४ ॥

न दैवमिति संचिंत्य त्यजेदुद्योगमात्मनः ॥
अनुद्यमेन कस्तैलं तिलेभ्यः प्राप्तुमिच्छति ॥ ५ ॥

पुरुष अपनी प्रारब्धके भरोसेपर उद्यमको न त्यागे क्यों कि विना उद्यमके तिलोंसे तेलका लाभ कौन करसकता है ॥ ५ ॥

विहाय पौरुषं यो हि दैवमेवावलम्बते ॥
प्रासादसिंहवत्तस्य मूर्ध्नि तिष्ठन्ति वायसाः ॥ ६ ॥

जो पुरुष पुरुषार्थको छोड़कर केवल दैवकीही शरण लेताहै उसके सिरपर काक भी ऐसे निर्भय होकर बैठ जातेहैं कि जैसे मंदिरपर मिट्टीके बने सिंहके सिरपर बैठते हैं ॥ ६ ॥

पूर्वजन्मजनितं पुराविदः कर्म दैवमिति संप्रचक्षते ॥
उद्यमेन तदुपार्जितं चिराद्दैवमुद्यमवशं न तत्कथम् ॥ ७ ॥

जन्म जन्मान्तरके जाननेवाले ऋषि मुनियोंने पूर्वकृत कर्मोंकोही प्रारब्ध मानाहै ॥ और वह कर्म उसकालमें भी उद्यमसेही किये गये थे इस लिये दैव उद्यमके अधीन है अर्थात् उद्यम से उत्पन्न होनेवाला है ॥ ७ ॥

दैवं पुरुषकारेण साध्यसिद्धिनिबन्धनम् ॥
योऽतिक्रामितुमिच्छेत्स न लोकेष्ववसीदति ॥ ८ ॥

साध्य कार्यकी सिद्धि करनेवाले दैवको जो पुरुष अपने पुरुषार्थसे उल्लंघन करनेकी सदा इच्छा रखता है वह पुरुष लोकमें दुःख नहीं उठाता ॥ ८ ॥

सम्पदा सुस्थिरंमन्यो भवति स्वल्पयाऽपि यः ॥
कृतकृत्यो विधिर्मन्ये न वर्धयति तस्य ताम् ॥ ९ ॥

जो पुरुष बहुत थोड़ी सम्पदासे अपनेको अति सुखी कृतकृत्य मानता है उसको विधाता भी नहीं बढाता ॥ ९ ॥

असम्पादयतः किंचिदर्थं जातिक्रियागुणैः ॥
यदृच्छाशब्दवत्पुंसः संज्ञायै जन्म केवलम् ॥ १० ॥

जिस पुरुषने अपने जाति क्रिया गुणोंद्वारा कुछ भी प्रयोजन सिद्ध नहीं किया उसका जन्म केवल पुरुषसंज्ञाहीके लिये है अर्थात् मिट्टीकी मूर्तिके पुरुष जैसा वह पुरुष है ॥ १० ॥

कामपि श्रियमासाद्य यस्तद्वृद्धौ न चेष्टते ॥
तस्यापत्तिषु न श्रेयो बीजभोजिकुटुम्बवत् ॥ ११ ॥

जो पुरुष किसी एक विभूतिको पाकर उसकी वृद्धिका यत्न नहीं करता वह बीजको भोजनकरजानेवाले कृषिकार कुटुम्बवत् विपत्तियोंको प्राप्त होताहै अर्थात् उसको भविष्यत् कालमें सुख नहीं होता ॥ ११ ॥

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः
दैवं प्रधानमिति कापुरुषा वदन्ति ॥
दैवं विहाय कुरु पौरुषमात्मशक्त्या
यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोत्र दोषः ॥ १२ ॥

भावार्थ—सिंहसदृश उद्योगी पुरुष ही को सर्व सम्पदाएं प्राप्तहोती हैं ॥ केवल दैवही प्रधान है यह कहना कुत्सितों (नीचपुरुषों) का है ॥ इसलिये दैवकी आशाको छोड़कर हे पुरुषो प्रयत्न करो और यदि तुम्हारे बुद्धिबलसे कदाचित् कोई कार्य न सिद्ध हो तो सूक्ष्मदृष्टिसे पुनः विचारो कि कौन दोष कार्य्य का प्रतिबन्धक है यदि उस दोषका प्रतीकार तुम्हारेसे होसके तो

पुनः उसी कार्यका प्रारम्भ कर पूर्ण करो न होसके तो उस कार्यको छोड कार्यान्तरमें प्रवृत्त होवो स्वप्रयत्नको सफलीभूत करो ये पूर्वोक्त यावत् श्लोक महर्षि व्यासादिप्रोक्त धर्मशास्त्रोंके हैं और युक्तियुक्त होनेसे पुरुषको अत्यन्त उपादेय हैं इतना कहकर उस दिन पण्डितजीने कथाकी समाप्ति करी अति अल्पकालके कारण राजकुमार उस दिन चुपरहा परन्तु पूर्वोक्त श्लोकोंको श्रवण कर अति असंतुष्ट होकर स्वकीय प्रासादमें प्रविष्ट हुआ॥ १२॥

पहिला विश्राम समाप्त.

द्वितीयविश्राम ।
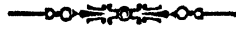
दूसरेदिन कथा प्रारम्भसे पूर्वही राजकुमारने पण्डितसे वार्तालापका प्रारम्भ किया कुमारकी ऐसी चेष्टाको देखकर राजाके तथा पण्डितके चित्तको अति संतोष हुआ और अपने उद्देशको साध्य समझा ॥

(राजकु०) क्या पण्डितजी दैवको माननेवाले सभी कुत्सित अधम नीच पुरुष हैं ॥ अनेकऋषि मुनियोंने दैवको प्रबल कथन कियाहै । तथा उत्तम २ उदाहरणोंद्वारा दिखलायाहै । प्रथम देखिये श्रीकृष्ण देव ही गीताके (३) अध्यायके (५) वें श्लोकमें क्या लिखते हैं ॥

नहि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ॥
कार्य्यते ह्यवशः कर्म सर्वःप्रकृतिजैर्गुणैः ॥ १ ॥

भावार्थ—कोई पुरुष कदाचित्क्षणमात्र भी क्रियाशून्य होकर नहीं बैठ सकता प्रकृतिसे उत्पन्न होनेवाले सत्वादिगुण पुरुषको स्वाधीन करके यावत् कर्मोंमें नियुक्त करते हैं ॥ इस कथनसे स्पष्ट यही सिद्धहोता है कि पुरुष प्रयत्नकी कुछ अपेक्षा नहीं है इसकी प्रारब्धके अनुसार प्रकृतिगुण आपही प्रेरणाकर जो चाहें पुरुषसे करवासकतेहैं पुनः इसीवार्ताको श्रीकृष्ण देवने (१८) अध्यायके (६०) वें श्लोकमें स्पष्ट कियाहै ॥ १ ॥

स्वभावजेनकौंतेयनिबद्धःस्वेनकर्मणा ॥
कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात्करिष्यस्यवशोऽपि तत् ॥ २ ॥

भावार्थ—हे अर्जुन ! स्वभावज कर्मोंमें ब्रध्यमान तुम जिस कर्म करनेकी

नहीं भी इच्छा करते सो भी तुम कर्मवेगके वशीभूत होकर अवश्य करोगे॥ अर्थात् श्रीकृष्णदेव कहते हैं हे अर्जुन ! पूर्वकृत कर्मका वेग वर्तमान उद्योगसे दूर नहीं होता किन्तु यावत् प्रवृत्ति निवृत्ति पूर्वकर्मानुसारिणी है यथेष्ट नहीं है ॥ २ ॥

इसी भगवत्तात्पर्य्यको अनेक ऋषि मुनि कवि कोविदों ने अनेकभावोंसे कहाहै सो सुनिये ॥

प्राप्तव्यमर्थं लभते मनुष्यो देवोऽपि तं लंघयितुं न शक्तः ॥
तस्मान्न शोचामि न विस्मयो मे यदस्मदीयं नहि तत्परेषाम् ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो पदार्थ पुरुषकी प्रारब्धमें है वह पुरुषको अवश्य प्राप्त होगा उसमें कोई देवादिक भी प्रतिबन्धक नहीं हो सकता इस लिये मेरेको इस बातमें कुछ विचार वा आश्चर्य्य नहीं होता क्यों कि मेरेको यह दृढनिश्चय है कि जो मेरा भाग है उसको दूसरा कदापि नहीं लेसकता ॥ ३ ॥

दैवे विमुखतां याते न कोप्यस्ति सहायवान् ॥
पिता माता तथा भार्य्या भ्राता वाऽथ सहोदरः ॥ ४ ॥

माता पिता स्त्री वा सहोदर भाई दैवके विपरीत होनेसे कोई भी सहायता नहीं करसकता ॥ ४ ॥

यद्धात्रा निजभालपट्टलिखितं स्तोकं महद्वा धनम् ।
तत्प्राप्नोति मरुस्थलेऽपि नितरां मेरौ ततो नाधिकम् ॥
तद्धीरो भव वित्तवत्सु कृपणां वृत्तिं वृथा मा कृथाः ।
कूपे पश्य पयोनिधावपि घटो गृह्णाति तुल्यं जलम् ॥ ५ ॥

विधाताने पुरुषके माथेपर थोड़ाबहुत जो कुछ धन लिखाहै वह पुरुषको मरुभूमिमें वा सुमेरुपर जहां जावे वहां उतनाही मिलेगा इसलिये हे पुरुष! तुम धैर्य्य धारण करो और धनाढ्य पुरुषोंके सामने अपनी दीन(कंगली)दशाको मत दिखावो देखो घटको चाहो कोई कूपसे भरे वा सागरमें लेजावे उतनाही जल पड़ेगा ॥ ५ ॥

नेता यस्य बृहस्पतिः प्रहरणं वज्रं सुराः सैनिकाः ।
स्वर्गो दुर्गमनुग्रहः किल हरेरैरावतो वारणः ॥

इत्याश्चर्य्यबलान्वितोऽपि बलिभिर्भग्नः परैः संगरे ।
तद्युक्तं वरमेव दैवशरणं धिग्धिग्वृथा पौरुषम् ॥ ६ ॥

जिस इन्द्रका साक्षात् बृहस्पति शिक्षक, वज्र शस्त्र, देवोंकी सेना, स्वर्ग किला ऐरावत हस्तीका वाहन और साक्षात् हरिकी कृपा इत्यादि अनेक आश्चर्य्य बल युक्त भी इन्द्रको युद्धमें अतिबलिष्ठ शत्रुओंने मर्दन किया इसलिये सर्व आशा को त्याग केवल दैवकी शरणहीमें सुख है और वृथा पुरुषार्थको अनेकानेक धिक्कार है ॥ ६ ॥

नमस्यामो देवान्ननु हतधियस्तेपि वशगाः
विधिर्वन्द्यः सोऽपि प्रति नियतकर्मैकफलदः ॥
फलं कर्मायत्तं यदि किममरैः किंश्च विधिना
नमस्तत्कर्मभ्यो विधिरपि न येभ्यः प्रभवति ॥ ७ ॥

भर्तृहरि कहते हैं हम देवताओंको नमस्कार करें सोभी ठीक नहीं वेमंदबुद्धि तो आपही इन्द्र ब्रह्मादि अनेकोंके आधीन हैं ॥ विधिको नमन करें तो वह भी तो हमारे कर्मफलसे अधिक कुछ नहीं देसकता यावत् भोग हमको यदि हमारे ही कर्मानुसार होता है तो देवतों तथा विधिसे क्या कामहै ॥ जिनसे विपरीत करनेमें बिधि भी असमर्थ है ऐसे अपने प्रारब्धरूप कर्महीको हम बारंबार प्रणाम करते हैं ॥ ७ ॥

भग्नाशस्य करण्डपीडिततनोर्म्लानेंद्रियस्य क्षुधा
कृत्वाऽऽखुर्विवरं स्वयं निपतितो नक्तं मुखे भोगिनः ॥
तृप्तस्तत्पिशितेन सत्वरमसौ तेनैव यातः पथा
लोकाः पश्यत दैवमेव हि नृणां वृद्धौ क्षये कारणम् ॥ ८ ॥

रात्रिकालमें भूखसे दुर्बल इन्द्रिय तथा टूटी हुई कमरयुक्त सर्पको कुछ खानेको मिलनेकी आशा नथी परन्तु एक मूषक स्वयं बिल निकाल उसके मुखमें गिरा सर्प उसके खानेसे अति तृप्त हुआ और अपने मार्गमें चला इस विचित्र घटनाको देख पुरुषोंको अवश्य निश्चय करना चाहिये कि वृद्धिमें वा क्षयमें केवल दैवही कारण है ॥ ८ ॥

खल्वाटो दिवसेश्वरस्य किरणैः संतापितो मस्तके
वाञ्छन्देशमनातपं विधिवशात्तालस्य मूलं गतः ॥
तत्रोच्चैर्महता फलेन पतता भग्नं सशब्दं शिरः
प्रायो गच्छति यत्र भाग्यरहितस्तत्रापदां भाजनम् ॥ ९ ॥

सूर्यकिरणोंसे अतितप्त मस्तकवाला गंजा पुरुष छायाको खोजता हुआ दैवात् तालवृक्षके नीचे चला गया वहां अकस्मात् ऊपरसे फल गिरकर उसका शिर फूटा इससे निश्चय हुवा कि भाग्यहीन पुरुष जहां जावे वहां ही विपदाका पात्र होताहै ॥ ९ ॥

गजभुजंगमयोरपि बन्धनं शशिदिवाकरयोर्ग्रहपीडनम् ॥
मतिमतां च विलोक्य दारिद्रतां विधिरहो बलवानिति मे मतिः॥१०॥

हस्ती और सर्पके बन्धनको तथा सूर्य्यचन्द्रकी ग्रहपीडाको और बुद्धिमानोंकी दारिद्रताको देख हमें निश्चय होताहै कि दैव अतिबली है ॥ १० ॥

मज्जत्वम्भसि यातु मेरुशिखरं शत्रूञ्जयत्वाहवे
वाणिज्यं कृषिसेवनादिसकला विद्याः कलाः शिक्षतु ॥
आकाशं सकलं प्रयातु खगवत्कृत्वा प्रयत्नं परं
नोऽभाव्यं भवतीह कर्मवशतो भाव्यस्य नाशः कुतः॥ ११ ॥

यह पुरुष चाहे गहरे जलमें गोते लगावे वा सुमेरुकी शिखरपर चलाजावे युद्धमें शत्रुगणसे विजय पावे व्यापार कृषि सेवादि अनेकविद्याओंको सीखे किंवा अति प्रयत्नसे पक्षीवत् आकाशमें उड़े पर तौ भी जो अभावी है सोकदापि न होगा और जो भावी है उसका नाश न होगा ॥ ११ ॥

द्वीपादन्यस्मादपि मध्यादपि जलनिधेर्दिशोऽप्यन्तात् ॥
आनीय झटिति घटयति विधिरभिमतमभिमुखीभूतः ॥ १२ ॥

पुरुषके अनुकूल हुआ विधाता उसके भोगाभिमत वस्तुको द्वीपांतरसे वा देशांतरसे वा समुद्रमेंसे भी शीघ्र लाकर जुटा देता है ॥ १२ ॥

दैवमुल्लंघ्य यत्कार्य्यं क्रियते फलवन्न तत् ॥
सरोऽम्भश्चातकेनाऽऽत्तं गलरन्ध्रेण गच्छति ॥ १३ ॥

प्रारब्धका तिरस्कार करके जो काम किया जावे सो फलीभूत नहीं होता जैसे सरोवरका पानी चातक पावे तो उसके गलेके छिद्रसे निकल जाताहै ॥ १३ ॥

भाग्यवन्तं प्रसूयेथा मा शूरं मा च पण्डितम् ॥
शूराश्च कृतविद्याश्च वने सीदन्ति पाण्डवाः ॥ १४ ॥

द्रौपदीको कुन्ती कहतीहै हेसुशीले तैंने भाग्यशालीपुत्रको उत्पन्नकरना क्योंकि अतिशूरवीर यावत् विद्याविचक्षण मेरे पुत्र पाण्डव वनमें क्लेशही उठाते हैं इसलिये शूर वीर वा विद्वान्की अपेक्षा नहीं ॥ १४ ॥

अरक्षितं तिष्ठति दैवरक्षितं सुरक्षितं दैवहतं विनश्यति ॥
जीवत्यनाथोपि वने विसर्जितः कृतप्रयत्नोपि गृहे विनश्यति ॥ १५ ॥

अरक्षितभी पदार्थ दैवरक्षासे बहुत काल बनारहता है और सुरक्षित भी दुर्दैवसे विनष्ट होता है ॥ निर्जनवनोंमें अनेकों अनाथभी जीव केवल दैवयोगसे आनन्दित हैं और घरोंमें यत्नसे रक्षितभी अनेक जीव दुर्दैवसे नष्ट होजाते हैं ॥ १५ ॥

दाता बलिः प्रार्थयिता च विष्णुर्दानं भुवो वाजिमखस्य कालः ॥
नमोऽस्तु तस्यै भवितव्यतायै यस्याः फलं बन्धनमेव जातम् ॥ १६ ॥

अश्वमेध यज्ञका समय और उत्तम भूमिका दान महाराज बलि जैसा दाता और विष्णु जैसे दानपात्र परन्तु तौ भी हम उस भावी ही को प्रणाम करते हैं कि जिससे सब शुभ सामग्रीका बलिको फल केवल बन्धन रूपही हुआ ॥ १६ ॥

किं करोति नरः प्राज्ञः शूरो वाप्यथ पण्डितः ॥
दैवं यस्य च्छलान्वेषि करोति विफलाः क्रियाः ॥ १७ ॥

जिस पुरुषकी छल चातुरीकी क्रियाको दैवही विफल करदेता है वह सुमति पण्डित वा शूर भी हो तोक्या करसकता है ॥ १७ ॥

यन्मनोरथशतैरगोचरं न स्पृशन्ति कवयो गिरापि यत् ॥
स्वप्नवृत्तिरपि यत्र दुर्लभा लीलयैव विदधातितद्विधिः ॥ १८ ॥

यदि पुरुषका प्रारब्ध अनुकूल हो तो मनसे अचिंतनीय कविलोगोंकि वाणीके भी अविषय किंवा स्वप्नमें भी दुर्लभ पदार्थ पुरुषको स्वाभाविक ही मिलजाता है ॥ १८ ॥

सदसि विदुरभीष्मद्रोणशारद्वतानां
पतिभिरमरकल्पैः पञ्चभिः पालितापि
अहह परिभवस्य द्रौपदी पात्रमासी-
द्बलवति सति दैवे बन्धुभिः किंविधेयम् ॥ १९ ॥

विदुर भीष्म द्रोण कृपाचार्यादि वृद्धोंकी सभामें देवतातुल्य पञ्च पतियोंसे संरक्षित भी द्रौपदी निरादरको प्राप्त हुई ॥ इससे निश्चय होताहै कि, दैवके वलिष्ठ होनेसे बन्धु भी कुछ नहीं करसकते ॥ १९ ॥

सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता परो ददातीति कुबुद्धिरेषा ॥
अहं करोमीति वृथाऽभिमानः स्वकर्मसूत्रग्रथितो हि लोकः ॥ २० ॥

इस जीवको सुख वा दुःखका देनेवाला कोई दूसरा नहीं है और अमुकने मेरेको क्लेश दिया यह माननाही मूर्खता है ॥ यह काम मैने किया यह अभिमान झूठा है ॥ स्वकर्मरूप रज्जुसे ग्रथितों सब जीवोंका यावत् व्यवहार स्वयं ही होता है ॥ २० ॥

विपत्तौ किं विषादेन संपत्तौ हर्षणेन किम् ॥
भवितव्यं भवत्येव कर्मणामीदृशी दशा ॥ २१ ॥

पुरुषको चाहिये कि विपत्तिमें विषाद वा सम्पत्तिमें आनन्द न माने पूर्वकर्म वेगसे जो भवितव्य है सो अवश्य ही होता है ॥ २१ ॥

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥
नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतै रपि ॥ २२ ॥

अपने किये शुभाशुभ कर्मका फल अवश्य ही भोगना पड़ेगा विना भोगसे कर्मका शतकोटिकल्पमें भी क्षय नहीं होता ॥ २२ ॥

मतिरुत्पद्यते तादृग्व्यवसायश्च तादृशः ॥
सहायस्तादृशो लोके यादृशी भवितव्यता ॥ २३ ॥

पुरुषका जैसा प्रारब्ध होताहै उसीके अनुकूल बुद्धि विश्वास और सहकारी भी मिलजाते हैं ॥ २३ ॥

यद्भावि न तद्भावि भावि चेन्न तदन्यथा ॥
इति चिंताविषघ्नोऽयं बोधो भ्रमनिवर्तकः ॥ २४ ॥

जो नहीं होनेवाला सो न होगा और जो होनेवाला है सो न टलेगा यह निश्चय यावत् संदेहका तथा चिंतारूपी विषका विनाशक है ॥ २४ ॥

अवश्यं भावि भावानां प्रतीकारो भवेद्यदि ॥
तदा दुःखैर्न लिप्येरन्नलरामयुधिष्ठिराः ॥ २५ ॥

भावार्थ—अवश्य होनेवाले कर्मवेगका यदि नाश होना सम्भव होता तो महाराज रामचन्द्र तथा नल युधिष्ठिरादि दुःखसे पीडित न होते ॥ २५ ॥

अर्थात् यह लोग यावत् दुःखका प्रतिकार करनेमें समर्थ भी थे परन्तु प्रारब्धवेगसे इन महापुरुषोंने साधारण संसारी जीवोंकी तरह अनन्तानन्त क्लेश उठाये श्रीरामचन्द्र महाराजका जीवनचरित्र तो विशेषतः पुरुषोंको ज्ञात हैं इस लिये कथनका उपयोग नहीं ॥ और महाराज नलका जीवन यद्यपि पण्डितोंको तो विदित है तौ भी सर्व साधारण प्रतिख्यात न होनेसे प्रतिपादनीय है ॥ सो महाभारतमें सविस्तर प्रतिपादन कियाहै और संक्षेप से यह है कि सत्ययुगमें परमधार्मिक वीरसेननामक राजाके पुत्र लोक प्रख्यात परमधार्मिक रूप गुण ज्ञान शील संयमसुचार बलवीर्य्यावधि महाराज नल हुए।इन्होंने अति अल्प आयुमें विविधशस्त्र शास्त्रादि विद्याओंमें विचक्षणता लाभकरके प्रचण्ड बाहुबलसे भूमण्डलमें अपने अखण्ड राज्यको जमाया । पश्चात् अनेकविध शुभाचरणोंसे अपनी आयु यापन करतेहुए एक दिन अपने उपवनमें पधारे । वहां विमल जलाशयके कूलपर कमनीय मूर्ति सुवर्णवर्ण सुशोभित अतिसुन्दरस्वरूप मनोहर हँसपक्षी देखे ॥ राजाने रमणीयपक्षी जान उनमेंसे एक स्वसेवकोंद्वारा स्वाधीन किया तो हंस पुरुषभाषामें बोला कि हे राजन् आपके धनधान्यकी कुछ त्रुटि नहीं मेरा पकडना आपको कौन लोभसे है ॥ आप महाराज हैं यावत् चराचर पुरुष

पशु पक्षी आदि आपके स्वयमेव वशवर्ती हैं ॥ परन्तु तौभी यदि आप मेरे को छोडदेंगे तो मैं आपको एक अपूर्व पदार्थ प्राप्त कराऊंगा ॥ तो राजाने पूछा ऐसी कौन वस्तु है हंसने कहा विदर्भनामक देशमें एक कुण्डीकट-कनामक ग्राम है वहां भीम नामक राजाकी एक पुत्री है वह कुमारी वर्तमान कालमें चतुर्दश वर्षकी आयुमें स्वरूप गुण स्वभावयुक्त भूमण्डल पर एकही है ॥ यदि आप मेरेको छोडें तो मैं उसकी आपको प्राप्तिके लिये प्रयत्न करूंगा पूर्वोक्त प्रतिज्ञापूर्वक हंसकी वाणी श्रवणकर महाराजाने उसके छोडनेकी आज्ञा दी हंसपक्षी भी छूटकर स्वप्रतिज्ञापालनार्थ सहवर्ति पक्षिवर्गके साथ दमयन्तीके देशको प्राप्त हुआ।वहां भी एक ऐसी वाटिकामें पहुंचा कि जिसमें दमयन्ती स्वकीय सखीजनोंके साथ दिनके चतुर्थांश शेषमें प्रतिदिन आतीथी उसदिनभी आई तो मन्दगामनी कामनी कमनीय पक्षी झुंडके प्रेक्षणसे आनन्द-सागरमें निमग्नहुई ॥ और उनमेंसे पूर्वोक्त एकको प्रयत्नसे पकड़कर नानाविध प्रेम करने लगी ॥ उस वाटिकाविहारमें दैवात् सखीजनोंके विभक्त होनेसे हंस दमयन्तीसे बोला कि हे राजकुमारी ! मैं तेरेको एक प्यारी शिक्षा देता हूं तैने विस्मरण मत करनी हेसुन्दरि ! तूं यह निश्चय कर कि इस संसारमें स्त्रीको स्वकीय सर्वस्व प्रियपतिकी अशरण विना और दूसरा कोई शरण नहीं है। इस लिये तेरे लावण्यस्वरूप गुणस्वभावानुरूप मैं एक अनुपमरूप भूपकी चितौनी तेरेको देताहूं कि, तैने अपने स्वयंवरकालमें सम्पूर्ण राजकुमारोंको अना पात दृष्टिसे न देखकर महाराज नलको स्वकीय स्वामी स्वीकार करना ॥ मैं पृथिवीमंडलके राजा महाराजों तथा राजकुमारोंको जानता हूं परन्तु वर्तमान कालमें यावत् शस्त्र शास्त्रादि विद्याविशारद सौन्दर्य्य सन्दोहसंकलित जैसे महाराज नल है ऐसे भूमण्डलमें द्वितीय पुरुष नहीं इत्यादि अनेकविध पूर्वोक्त महाराज नलकी प्रशंसा हंसाकृतिसे श्रवणकर राजकुमारी दमयन्ती देरतक एकाग्रमन हो पक्षीप्रतिपादित विषयको विचारने लगी । शेषमें स्वयमेव मनमें यही सिद्धान्तकिया कि रागद्वेषरहित निपट अस्वार्थी सुपर्णवर्ग सिवाय परोपकारके अनुपकारी गिरा कदापि किसीके कर्णगत नहीं कराता ऐसे निश्चय

कर हंसपक्षीको छोडदिया और उसके कथनानुसार महाराजा नलके गुण कर्म स्वभावको प्रतिदिन एकतान हो स्मरण करनेलगी कभी एकान्तमें निविष्टहो भगवत् प्रार्थनामें यह कहती कि हे सर्वान्तर्यामिन् दैव ! क्या महा-राज नलके मुखचन्द्रकी चकोरी होना कदाचित् में अनाथनीकेभी नसीबमें होगा। ऐसेही कुछकाल व्यतीत हुआ दमयन्तीके पिता भीमने स्वपुत्रीके स्वय म्बरके अर्थ यावत् राजकुमारोंको तथा इन्द्रादि लोकपालोंको बुलाया।स्वयम्बर पत्र आगमनप्रयुक्त पिताकी आज्ञासे प्रेरित हुये महाराज नलभी विदर्भदेशमें पधारे। मार्गमें दैवात् महाराज नलको इन्द्र वरुण यम अग्नि इन चारोंदि-क्पालोंका समागम हुआ (इन्द्र) हे सुपुरुष ! नल यदि तुम हमारा कार्य-करो तो हम चारों आपको चारप्रकारकी विद्या प्रदान करें ॥ (नल) कौन आपकाकार्य्य और कैसी २ विद्या (इन्द्र) तुम हमारी ओरसे दूत होकर राजकुमारी दमयन्तीके पास जाओ यह कार्य्य है (नल) वहां जाकरभी क्या करूं (इन्द्र) उसको ऐसा उपदेशकरो कि वह सुन्दरी स्वकीय स्वयम्वरमें हम चारोंमेंसे किसीएकको पति स्वीकार करे (नल) आप मुझे कौनसी विद्या प्रदान करेंगे (इन्द्र) मैं आपको विश्वनयनागोचर शक्ति देऊंगा जिससे तुम सबको देखो परन्तु तुझे सिवाय दमयन्तीके तुमारी इच्छा विना कोई न देखसके (वरुण) मेरी विद्यासे जलसम्बन्धि यावत् कार्य्य तेरे अनायास पूर्ण होंगे ॥ (यम) मेरी विद्यासे वेगसम्बन्धि गमनागमनादि कार्य्य संकल्प मात्रसे होंगे ॥ (अग्नि) तेजःसम्बन्धि सर्व मेरी विद्यासे होंगे (नल) आप लोगोंका कथन मेरेको स्वीकृत है पर दमयन्ती तो सिवाय मेरे दूसरेको पति स्वीकार न करेगी (इन्द्र) कैसेभी हो तौभी तुम सरल भावसे हमारी ओर-से उपदेश तो करो (नल) तथाऽस्तु आप मुझे विद्या प्रदान करें। राजा नलकी अभ्यर्थनासे चारों देवताओंने चारमंत्र प्रदान किये पश्चात् राजा नल राज कुमारीके पास गया परन्तु सिवाय दमयन्ती और उसकी सखियोंके उसे किसीने न देखा। दमयन्ती नलमुख चन्द्रको देख चकोरीसम प्रेमभावसे पूछने लगी आप कौन हैं (नल) मैं महाराज वीरसेनका पुत्र नल हुं (दमयन्ती) चारोंओर जनसंरक्षित भवनमें आपका कैसा प्रवेश हुआ (नल) देवकृपासे

(द०) कौन देव (न०) इन्द्र अग्नि वरुण यम (द०) उन्होंने आपको क्यों भेजा (न०) उनका यह भाव है कि दमयन्ती हम चारोंमेंसे किसी एकको स्वयम्बरमें पति स्वीकार करे (द०) मैं तो हंसपक्षिके उपदेशसे आपको पति कहचुकी (न०) देवोंके होते मैं क्या हूं (द०) मेरी प्रतिज्ञा है यदि तुम मेरेको स्वीकार करो तो ठीक अन्यथा मैं विषादिकोंसे अपने प्राण त्यागूंगी (न०) देवता विघ्न करैंगे दुःख उठाना पड़ेगा (द०) तुम देवोंके साथ मिलकर स्वयम्बरमें आओ मैं उनसे प्रार्थनाकर लेऊंगी (न०) जैसी आपकी इच्छा इत्यादि दिक्पालोंकी तरफसे राजा नलने दमयन्तीको अनेकविध बोधन किया पर दमयन्तीने एक न मानी और शेषमें कहा हे देवदूत यह जन्म तो मैं महाराज नलकी सेवामें अर्पणकी प्रतिज्ञा करचुकी हूं जन्मान्तरमें जो दैवकरेगा देखीजावेगी। पूर्वोक्त वाक्योंसे दमयन्तीके भावाशयको लेकर राजा नल अपने सरलभावसे फिर देवताओंके पास आया और दमयन्तीके सम्पूर्ण वृत्तान्तको निवेदन किया देवतालोग राजाका सरलभाव देख अतिप्रसन्न हुए और अनेकभावसे राजानलको धन्यवाद दिया पश्चात् सभी मिलकर स्वयम्बरमें आये। इन्द्रादि देवोंने भी राजा नल ही का स्वरूप धारण किया प्राप्त कालमें सभामण्डप सिंहासनस्थ राजकुमारनिरीक्षणार्थ राजकुमारी पधारी तो प्रत्येकको दृष्टिगोचर करनेसे एकस्वरूपके पाँच पुरुष प्रतीत हुए। उनको देख राजकुमारी आश्चर्य्यहो मनमें सोचने लगी पश्चात् निश्चय कियाकि यह किसी देवताओंका छल है फिर पूर्वश्रुतशास्त्रसंस्कारसे स्मरण कियाकि स्वरूपान्तर धारणसे भी चारचिह्न देवत्वके निर्णायक हैं॥

देवशरीरपर चन्दनादि लेप नहीं सूकता ॥ १ ॥
गलस्थ पुष्पमाला नहीं कुमलाती ॥ २ ॥
चरण भूमिस्पर्श नहीं करता ॥ ३ ॥
नेत्रपलक संस्फुरण नहीं होते ॥ ४ ॥

इन चारुचारचिह्नोंको चारों देवताओंमें देख राजकुमारी बोली हे देवो आप लोगोंने परमानुग्रह किया जो मुझ दासीको दर्शन दे कृतार्थ किया मैं अवश्य आप लोगोंहीके दासभावको स्वीकार करती परन्तु लाचारहो जो इस शरीरसे

राजा नलसे प्रतिज्ञा हो चुकी है, आप स्वस्वस्वरूपको धारणकर स्वयम्वर सभाको सुशोभित करैं, जो मैं दासीका विभ्रम दूर हो, राजकुमारीकी ऐसी प्यारी प्रार्थना श्रवण कर देवता अतिप्रसन्न हुए और स्वस्वस्वरूपको धारण किया राजकुमारी दमयन्तीने महाराज नलके गलेमें पुष्पमाला डाल पति स्वीकार किया, स्वयम्वराहूत विदेशीराजकुमारोंको भीमराजने यथायोग्य सत्कारपूर्वक स्वस्वदेशमें प्रस्थान कराया पश्चात् यथाशक्ति राज्यसामग्री देकर अतिमानपूर्वक महाराज नलको दमयन्ती समेत स्वदेशमें पहुंचाया, देवेन्द्र स्वर्गको जारहेथे मार्गमें द्वापर कलियुग अभिमानीदेवता मिले, (इन्द्र) आप लोग कहां पधारेंगे, (कलि) राजकुमारी दमयन्तीके स्वयम्वरमें, (इन्द्र) वह तो होचुका, (कलि) राजकुमारीने किसको स्वीकार किया, (इन्द्र) राजा नलको, (कलि) क्या हमारा प्रतीक्षण किसीने न किया, (इन्द्र) मितिसंकेतावधि सबकी प्रतीक्षा की. (कलि) भीम बडा दुष्ट है उसकी पुत्री कदापि सुखी न रहेगी, नल भी महा ढीठ है उसकोभी सुख न होगा, इतनी बातकर देवराज अपने भवन पधारे और कलि द्वापर परस्पर सोचने लगे कि क्या करणीय है तब कलि बोला कि, मैं राजाके शरीरमें प्रवेश कर उसकी विपरीत चेष्टा कर सकता हूं द्वापरने कहा ऊपरकी रचना मैं करसकता हूं, ऐसा विचार दोनों अदृश्य होकर राजा नलके आगे पीछे फिरने लगे, महाराज नल प्रतिक्षण परमधर्मानुरागी तथा पवित्र उत्साही था इस लिये कितना काल कलिको कायप्रवेशका अवसर न मिला शेष एक दिन दामिनीदमक कामिनी दमयन्तीके प्रेमप्रवाहमें निमग्न हो प्रातःकरणीय विधिको विस्मरण कर स्नानसन्ध्यादिसे विमुखहुए हमाराज नलको देखकर बलात् कलिकरालने महाराजके शरीरमें आवेश किया, कलिप्रवेश होतेही महाराजाके गुण कर्म स्वभाव विपरीत होगए, कईएक क्षुद्र अधर्मके कार्य्य राजाने निःशंक होकर करडाले, यहां तक कि एकदिन अपने विमातृज पुष्कर नामक भाईको

१यह पुरुष एक शूद्री दासीके पेटसे राजा वीरसेनके वीर्य्यका था रजवाडोंमें जैसे गोले, भाई बेटे कहलाते हैं वैसा था ।

बुलाकर द्यूतभी खेलना आरम्भकिया वह द्यूतविद्यामें अतिप्रवीण था दमयंती के सिवाय उसने महाराजका सर्वस्व जीता एक वस्त्रमात्र शेष रहा तो उसने स्वयं राज्याधिकारी होकर कर्मचारियोंद्वारा राजाको देशनिकालनेकी आज्ञा दी, उसमें भी यह प्रतिज्ञा कही कि यदि द्वादश वर्षके भीतर आपका *कहींभी पता न मिलेगा तो फिर आकर द्यूत खेलियेगा जो हारे सो वनको जावेगा* और यदि द्वादशवर्षके भीतर ही मेरेको आपका पता मिलगया कि आप अमुकस्थानमें हैं तो फिर उसकालसे द्वादश वर्ष गिनकर वनवास लेना होगा. ऐसेही फिर पता मिला तो फिरभी वैसेही होगा, ऐसी विपुल प्रतिज्ञाको सुकुमार महाराज नलने लाचार होकर स्वीकृत किया और अपनी प्राणप्यारी राजकुमारी दमयन्तीको साथलिये निर्जन वनमें पधारे, महाराज नल दमयन्ती की इस दारुणी वनदशाको देख सुनकर कौन पाषाणहृदय है जो द्रवीभूत न हो, समग्रदेशके ग्राम२के लोग एकदम विमल नलनीरधके अभावसे व्याकुल हो मछलीवत् तडफडाने लगे, प्रतिक्षण नलमुखचन्द्रचाँदनीचाहित चकोर पुरुषोंको तो मानों अनुदयी पूर्णचन्द्र बलात् एकदम अस्त हुआ हाय २ कर पुकाररहारे। परन्तु कोई उपाय महाराजनलके ग्राममात्र निवासका न मिला शेष महाराज नलभी प्यारी पत्नीको साथ ले ग्रामसे निकल चले महाराज नल नीरप्रेमप्रवाहाकर्षित अनेकों स्त्रीपुरुष हाथबाँधे साथ पीछे २ चलरहे हैं महाराजभी स्नेहपूरित स्वान्त होकर नयननसे नीर टेर २ बेर २ प्यारी वाणी कह ग्रामजनोंको फेरते हैं ॥

दोहा।

संगी साथन को धरे, जो भावी प्रतिकूल ॥
सुखसंपत्की बेलिको, करत हेल निर्मूल ॥ १ ॥

इसप्रकार सांसारिक सर्व स्नेहको तोड़कर राज्यवैभवको छोड़ दोनों दंपती ऐसे गह्वर वनकी ओर चले कि जिसमें सिंहव्याघ्रादि जीवोंसे अतिरिक्त मार्ग

---

१ प्रियपाठक ! द्यूतादि व्यसन राजा महाराजाओंको धूरमें मिलादेते हैं तो इतर जीवोंकी कौन कहै ।

मिलना भी कठिन होने लगा, पुनः वनवासकी भीतिसे द्वादश वर्षतक घरप्रवेश-आशासे निराश होकर फल फूल भोजनसे वनहीमें कालचक्रको व्यतीत करना स्वीकार किया, जहां तहां चलनेसे अपादत्राण पाउँसे काँटे पोय जाते हैं तो रोय२ बैठकर दोनों दंपती एकदूसरेके निकालने लगजाते हैं, इतनेपर भी कलिकुटिलको दया न हुई प्रत्युत सोचा कि हमारे इतने प्रयत्नसेभी यह दोनों दंपती परस्पर वियुक्त न हुए द्वापरको बोधन कर वैसी ही घटनाका प्रारम्भ किया कि जिससे यह दोनों एकत्र न रहसकें, द्वापर शीघ्रही कलिप्रेरणासे कतिपय स्वर्णपर्ण-मय कपोताकार बनकर निर्जन वनमें नलदमयन्तीके आगे पीछे उड़ने लगे नलने शोचा कि यदि यह पक्षी पकडे जावें तो इसका मांस भक्षणके काम आवे और कुछ स्वर्णभी मिले ऐसा मनमें विचार नलने अपना वस्त्र उनके ऊपर डाला वह छलपक्षी राजाका वस्त्र ले उडे पश्चात् राजा निर्जन वनमें नग्न हो विचरने लगा, कभी तरुत्वचाको कटिमें लपेट दिन यापन करता, रात्रिको एकही वस्त्रमें दोनों दंपती क्लेशसे निर्वाह करते, पौषादिमासोंमें मन्द२ वर्षायुत समीरकी पीर सुकुमार गात्रोंको निपट आतुर करती हुई रोमांचके विना क्षणभरभी टिकने नहीं देती, हा शोक! शोचिये पण्डितजी कहां महाराज नल का चक्रवर्तीराज्यसुख और कहां यह विपत्ति मेरा तो इस दारुणी दशाको स्मरण कर हृदय कंपायमान होजाता है एकदम चक्रवर्ती राज्यका त्याग, उसपरभी वनवास, उसपरभी अन्न वस्त्र विनाही हिमऋतुमें वर्षावायुव्याकुल, तरुतल निवास कर कौन साहसी पुरुष जीवन आशासे हाथ नहीं धोवता, ऐसे हो वनमें कितनेही काल दुःख उठाया तो वनमें चलते २ एक जगहपर मार्ग आया तो नलने दमयन्तीसे कहा, हे अनवद्यांगि ! यह मार्ग तेरे पिताके ग्रामको जाता है, (द०)क्या महाराज आप मैं दासीको छोडा चाहते हो, (न०) नहीं २ हे प्रिये! मैंने स्वाभाविक वार्ता करी है, (द०) महाराज ! यदि आपकी इच्छा हो तो दोनों मेरे पिताके गृह चलें वह राज्यभी आपहीका है, (न०) हे प्रिये ! विपत्तिकालमें सम्बन्धियोंके घर जाना अच्छा नहीं ऐसे वार्तालापसे मनोज्ञा दमयन्ती जानगई कि, महाराज मेरे को छोडा चाहते हैं, जैसी

दैवकी गति, दिनभर जहां तहां चलते फिरते फल फूल खातेहुए रात्रिको एक जंगलके शून्य मन्दिरमें पहुंचे सुकुमारी दमयन्ती दिनभर चलतीर श्रान्ताक्रान्त हो गाढनिद्रामें विराजी अर्धरात्रिमें राजाने अर्धवस्त्र लेकर प्राणप्यारी दमयन्तीको वहांही छोडना चाहा तो वस्त्र काटनेके लिये उपाय शोचताहीथा जो एक नग्न खड्ग अकस्मात् दृष्टिपडा, राजाने खड्ग उठाकर आधा वस्त्र काटलिया और अर्द्धांगीको छोड कर चला. थोडी दूर चला तो चकोराक्षी प्राणप्यारी नारीप्रेमाकर्षित हुआ, फिर पीछे आया, फिर चला फिर पीछे आया ऐसे ही चार पांच बेर किया परन्तु पश्चात् विचारसे मनको पाषाणवत् अद्रवीभूत कर एक बेर चला और पीछे न आया पश्चात् प्रभात-कालमें दमयन्ती विनिद्रित हो प्रियपतिकी वियोगाग्निमें स्वयं दग्ध होने लगी हा नाथ ! २ इत्यादि अनेक वाक्य करुणातुरभावसे नेत्रनीरधाराके साथही पुकारे परन्तु वहां दूसरा है ही कौन जिसको सुनकर दया आवे, ऐसेही वनमें इतस्ततः चलती सुंदरीको एक भयानक अजगर सर्पने ग्रसलिया परन्तु महाराज नलवियोगदावानलमें वह दुःख कुछभी न प्रतीत हुआ, पश्चात् सुंदरीके मधुरस्वर रोदन शब्दको कर्णगोचर कर एक वनचारी व्याधने आकर अजगरको विना प्राणकर राजकुमारीका त्राण किया शेषमें मनोहर रूप देख कामातुर हो पूछने लगा कि हे सुन्दरि ! तू कौन है ? और यहां कैसे आई ? दमयन्तीने उसकी विपरीत चित्तचेष्टाको देखकर उश्वास लेकर कहा, हे दुष्टव्याध ! यदि सत्यप्रेमसे मेरेको एक प्रियपतिही शरण है तो परमेश्वर तेरे अकस्मात् अभी प्राण हरण करे, राजकुमारीके ऐसे कहते ही व्याध भूमिपर गिरकर मरगया और वह अनेक प्रकारसे विलाप करती अबुद्धवत् सिंह, व्याघ्र, वन, पर्वतोंसे प्रार्थनापूर्वक स्वपतिवृत्तान्तको पूछती हुई क्या देखती है कि एक सुन्दर ऋषियोंका आश्रम है वहां जाकरभी अपना हाल कहकर रोने लगी ऋषियोंने उसे अति संतोष दिया और कहा कि, हे सुन्दरि! थोडाकाल धैर्य्य धर तूं अपने प्रियपतिके साथ असीम सुखको अनुभव करेगी इत्यादि अनेक उपदेशोंसे आश्वासित हो क्या देखती

है कि वहां विना गह्वर वनके कुछभी नहीं ऐसा आश्चर्य देखकर फिर निराश हो आगेको चली तो संध्यासमय क्या देखती है कि एक पुरुषोंका समुदाय उसी वनमें उतरा है व्याकुलमना रोती हुई उनके समीप चलीगई उन्होंने पूछा तो दमयन्ती ने अपनी सारी कथा सुनाई, दमयन्तीने पूँछा तुम कौन हो? तो उन्होंने कहा हम चेदिराजके पुरुष हैं, देश देशान्तरसे अनेक प्रकारकी व्यापारकी वस्तु लाकर चेदिराजके नगरमें समर्पण करते हैं, तो दमयन्ती स्वकीय प्रियपतिकी अन्वेषण लालसासे उन वणिक्समुदायके साथही चली, द्वितीय दिवसके मार्गपर एक निर्मल नीर नदीको देखकर यात्रीव्यूहने उसीके कूलपर रात्रिका यापन करना अनुकूल शोचा, दमयन्ती भी थोडी दूर पर किनारे होकर पड़रही अर्द्धरात्रि हुई तो कतिपय जँगली कुंजर पानी पीनेको आये व व्यापारियोंके हस्ती उष्ट्रादिकोंके अवलोकनसें अत्यन्त कोलाहल करनेलगे उससे व्यापारियोंको अत्यन्त हानि तथा भय हुआ शेषमें कई एक प्रयत्नोंसें जगली जीवोंको डराकर भगाया तो सभी मिल बैठकर शोचने लगे कि यह कौन अरिष्टका फल है, किसीने कहा कि, किसी देवका प्रकोप है, दूसरा बोला कि, ग्रहोंकी विपरीत दशा है, तीसरेने कहा कुशकुनोंका यह फल है, चौथेने कहा कि, विकराल रूपवती उन्मत्तदर्शना नारी जो हमारे साथ मिली है वह अवश्य कोई राक्षसी यक्षिणी पिशाची है यह सब उसी पापिनी का पापकर्म है उसपर कईएकने सम्मति दी और कहा कि, वह नीचनी कहीं दीखे तो अभी मारडाले उन अविचारकुशलोंकी कुसम्मतिको सुनकर दमयन्ती औरभी दुःखपीडित हुई और उनका संग छोड जहां तहां पतिरतिरंगमें रटने लगी अतिगह्वर कानन में उच्चस्वरसे 'रो, रो' पुकारती, हे विधे ! कौन पाप का फल मैं अनाथनीको भोगना पडा है, हे दैव! इस दारुणी दशा का शेष भी है कि, यही मेरा शेष करेगी, हा प्राणनाथ! यह पापिनी दीना दमयन्ती तेरे मुखपंकजकी दर्शनाशासे अभीतक निराश नहीं हुई इत्यादि अनेक करुणापूरित शब्दोंसे पुकारतीहुई दमयन्ती को मार्ग चलते वेदवेत्ता धार्मिक कतिपय ब्राह्मण मिले वह उनके संगसे

चेदिराज के पुरमें प्राप्त हुई, समीप जानेसे अर्द्धवस्त्रवेष्टित स्त्रीको देख उन्मत्ता जान ग्रामबालक पीछे लग और भी क्लेश देनेलगे, ऐसी घटनाको राजमाता ने देखा तो उसको दासी द्वारा समीप बुलाकर आश्वासन दिया राजमाताके पूछनेसे दमयन्तीने अपने नाम कुल गोत्र विना सारी वेदना सुनाई। राजमाताने अतिप्रेमसे कहा, हे सुभगे! तू हमारी बेटी सुनन्दाके पास प्रेमसे रहाकर और जो कुछ हो थोडा बहुत गृहकार्य्यभी कराकरना, *(दमयन्ती) हे मातः! तीन कामको छोड जो कहोगी सो करसकती हूं.* *(राजमाता) हे सुचारे! वह कौन तीन कार्य्य हैं जो तेरेको अभीष्ट नहीं,* (दमयन्ती) हे मातः! मैं किसीका उच्छिष्ट भोजन नहीं करूंगी (१) और किसीकी चरणसेवा (मूठियाँ) नहीं करूंगी (२)और द्वितीयपुरुषके साथ भाषणभी नहीं करूंगी (३) यदि कोई पुरुष मोहवश होकर मेरा अभिलाष करेगा तो वह अवश्य दण्डनीय होगा, राजमाताने पूर्वोक्त तीनों बातोंको स्वीकारकर दमयन्तीको आनन्दपूर्वक गृहनिवास दिया और उधर राजा नलभी वनमें विचरते हुए क्या देखते हैं कि एक गह्वर वन अग्निसे दग्ध होरहा है और उसके मध्यमें एक अग्निपीडित प्राणीकी पुकारध्वनि सुनाई पडती है राजाने उसके समीप जाकर दयापूर्वक उसको अग्निदाहसे बचाना चाहा तो आगे जाकर क्या देखता है कि, एक कर्कोट नामक नाग दग्ध होरहा है, सर्पको देखकर राजा रक्षासे उपराम हुआ तो सर्प बोला कि, हे राजन्! भयभीत मत हो मैं नागराजा हूं और नारदमुनिकी अवज्ञासे मेरी यह जडीभूत दशा हुई है आप मेरेको निःसन्देह होकर अग्निसे निकालो मैं आपका उपकार स्मरण रक्खूंगा और आपके ऊपरभी कुछ उपकार करूंगा, राजाने उसे उठाकर अग्निबाहर छोडना चाहा तो नाग बोला दश कदम आगे छोडिये राजाने वैसेही स्वीकारकर किया तो उसने शेषमें राजाको दंश मारा दंशते ही राजाका सारा शरीर क्षणभरमें श्याह होगया राजासे कहा क्या यही उपकार करनेको कहतेथे नागने कहा, हे राजन्! इस उपकारको तुम साधारण मत समझो इससे दूसरे किसी भयानकजीवका दंश तेरेको स्पर्श

न करेगा और यावत् आयु तेरेको कोई दुःख न होगा, शत्रुगण जीत न सकेगा और शरीरवर्ण विपरीत होनेसे तेरे को कोई पहँचान भी न सकेगा इत्यादि अनेक गुणयुक्त उपदेशोंसे नागने राजाका आश्वासन किया और दो वस्त्र दिये कहा कि. हे राजन्! जब तुझे अपने यथावत् स्वरूप धारणकी इच्छाहो तो मेरा स्मरणकर दोनों वस्त्र पहर लेने और अब तुम अयोध्यामें इक्ष्वाकुकुलोत्पन्न राजा ऋतुपर्णके पास जाकर द्यूतविद्याका अभ्यासकरो वह द्यूतविद्यामें अतिप्रवीण है और उसको अश्वविद्यामें प्रेम है जो तुमको यथावत् आतीहै यह कहकर सर्प तिरोधान हुआ और राजा नल आयोध्यामें प्राप्त हो राजा ऋतुपर्णके अश्ववाही लोगोंमें भृत्य हुआ, राजा ऋतुपर्णको अश्वकी शीघ्रगतिमें प्रेम था, नलभी उनके अश्वोंको दिनभर शीघ्रगतिका अभ्यास करावे परन्तु रात्रिको एकान्तमें बैठ प्राणप्यारी राजकुमारी दमयन्तीको स्मरण करता हुआ सदैव सायंकाल यही श्लोक पढ़ाकरै।

श्लोक।

क्व नु सा क्षुत्पिपासार्ता श्रान्ता शेते तपस्विनी।
स्मरन्ती तस्य मन्दस्य कं वा साद्योपतिष्ठति ॥ १० ॥

भा० वनप० अ० ६७ ॥

(अर्थ) तिस मन्दपतिको स्मरण करती हुई क्षुधा पिपासासे पीडित तपस्विनी स्त्री, हे दैव! आज कौन स्थलमें स्थित है। इत्यादि करुणापूरित वाणी सुनकर द्वितीयसेवकोंने पूछा, हे पुरुष! तुम किसकी स्त्रीको स्मरण करा करते हो, तो नलने और कुछ न कहकर यही कहा कि. एक मन्दप्रज्ञ पुरुषकी स्त्रीको मैं प्रतिदिन स्मरण किया करता हूं, ऐसा प्रत्युत्तर सुन द्वितीय सेवकने नलको विक्षिप्त समझा और उससे वार्तालापसे उपराम हुए, तथा निषधाधिपतिनेभी प्रतिक्षण प्रेमसे दमयन्तीको स्मरण करतेहुए राजा ऋतुपर्णके गृहमें कितना काल अज्ञात वासकिया, उधर दमयंतीके पिता राजा भीमने पुत्री जामातृकी कुदशाको श्रवणकर तिनके अन्वेषणार्थ कई एक ब्राह्मण नियत किये, उनसे यह प्रतिज्ञा की कि, साधारण दक्षिणा तो हम

सबको तुल्यही देंगे परन्तु जो महाराज नलदमयन्तीको ग्राममें लेआवे वा अवलोकन कर आवे कि, अमुक स्थानमें हैं तो उस श्रमी ब्राह्मणको हम एक ग्राम तथा एक सहस्र गौ औरभी पारितोषिक देंगे, इसी लोभसे अनेक ब्राह्मण कितनेही काल वन पर्वतोंमें तथा ग्रामोंमें खोजते फिरे परंतु एक सुदेवनामक ब्राह्मण देखता २ दैवात् चेदिराजके नगरमें पहुँचा, वहां राजमहलोंमें राजकुमारी दमयन्तीको देखा और उससे वार्तालाप करनेलगा, राजमाताने ब्राह्मणसे पूछा तुम कौन हो और इस दासीको कैसे जानतेहो? सुदेव नामक ब्राह्मणने सब वृत्तान्त राजमाताको निवेदन किया तो राजमाता दमयन्तीको अंकमें लेकर रोने लगी और शेषमें दमयन्तीको राजमाताने कहा, हे भामिनि ! तू मेरी भगिनीकी पुत्री है तेरी माता और मैं दोनों दशार्णाधिपति (सुदामत्) नामक राजाकी बेटीहैं तेरी माताको पिताजीने भीमराजको दिया और मेरेको महाराज वीरबाहुको विवाही और जब तू उत्पन्न हुई थी तब मैं तेरेको अपने पिताके गृहमें भगिनीकी गोदीमें देखाभी था, फिर राजमाताने सुदेवसे कहा हे विप्र ! तुमनें इस कृशतनुयुक्ताको कैसे पहचाना ब्राह्मणने कहा, हे राजमातः ! इसके मस्तकके मध्यभागमें जो एक काला तिल है वही मेरेको राजकुमारीका सूचक है, ऐसी सुदेव वाणीको सुनकर सुनन्दा तथा राजमाता दोनों मा बेटी मिलकर दमयन्तीको स्नान कराय मस्तकचिह्नको देख औरभी प्रेमपूरित हुई । राजमाताने दमयन्तीसे कहा, हे सुनीते ! अब तेरेको यहांही निवास करना उचित है अन्यथा मेरी हानि होगी दमयन्तीने कहा, हे मातः! मेरेको तेरे तथा पिताके गृहमें किंचित्भी भेद भावना नहीं परन्तु मेरे माता पिताके चित्तमें तथा इन्द्रसेना-इन्द्रसेन नामक बेटी बेटेके मनमें बिना मेरे गये कदापि संतोष न होगा दमयन्तीकी ऐसी दृढ मनोभावना विचारकर राजमाताने उसी कालमें सुन्दर शीघ्रवाही यान मँगवाकर सुदेवब्राह्मणके समेत दमयन्तीको पिताके आगारमें पहुँचाया माता पिता प्यारी पुत्री दमयन्तीको देखकर अपूर्व सुखको प्राप्तहुए इन्द्रसेना-इन्द्रसेन नामक बेटी बेटे पर तो मानों मातृसर्वस्व हरण

हारे दुर्दैवने पुनः कृपादृष्टि करी माताको देखकर दोनों भगिनी भ्राता युगपत् आय लपटे, प्यारी माताने दोनों सुकुमार पुष्पोंको गोदमें लेकर छातीसे लगा मुखचुम्बन किया, नर, नारी, दासी, दास, सखीसमुदाय, देश देवी दमयन्तीको देखकर सभी प्रसन्न हुए, रात्रि हुई तो शयन समय दमयन्तीने मातासे कहा कि, हे मातः! मेरा जीवन तो तभी होगा जो महाराज नल मिल-जावें अन्यथा मैं शोचती हूं कि, मेरा शीघ्रही मृत्युशय्यापर शयन होगा. माताने ऐसी निष्ठुर वाणीको श्रवणकर पुत्रीको आश्वासन दिया और प्रातःकाल यही वृत्तान्त स्वपतिके आगे निवेदन किया, महाराज भीमने उसी क्षण ब्राह्मणोंको बुलाकर पूर्वोक्त प्रकारसे महाराज नलके अन्वेषणकी आज्ञा दी, गमनकालमें ब्राह्मणोंको दमयन्तीने कहा कि, हे देवाः ! जनसमुदायमें क्षीणांग विरूप महा-राजकी आप कदापि पहचान नहीं करसकोगे इसलिये मैं एक श्लोक आप लोगोंको कहतीहूं उसको आप जहां तहां बोलो जो सुनकर उत्तरमें स्वाभा-विक पूछने लगे वह निश्चय महाराज नलही होगा वह श्लोक यह है—

" स वै यथा त्वया दृष्टा तथाऽऽस्ते त्वत्प्रतीक्षिणी ॥
दह्यमाना भृशं बाला वस्त्रार्धेनाभिसंवृता" ॥ ३८ ॥
भा० वनप० अ० ६९ ॥

(अर्थ) हे राजन् ! वह राजकुमारी जैसे तुमने पूर्व देखीथी वैसेही अबभी शोकातुरवस्त्रको धारणकिये तेरी प्रतीक्षा कररही है इत्यादि औरभी वाक्य यथामति कहने, ऐसी दमयन्तीकी आज्ञाको लेकर अनेक द्विज देश देशान्तरोंमें गये परन्तु एक पर्णाद नामक ब्राह्मण राजा ऋतुपर्णकी राजधानी अयोध्यामें प्राप्तहुआ राजसभामें जाकर राजाको आशीर्वादके पश्चात् दमयन्तीप्रोक्त श्लोककोभी बोला राजासे लेकर किसीनेभी उस श्लोकका भाव न पूछा, परन्तु एक दारुक नामक रथवाही उश्वास लेकर सभासे किनारे विप्रको बुलाया और कहनेलगा कि, द्विज ! सच है कुलीनस्त्रियोंका यही धर्महै वही मंद भागी मूर्ख है जिसने ऐसी प्राणप्यारी स्त्रीको छोड दिया है, ब्राह्मणने पूछा आप कौन हो तो राजा नलने कहा मैं राजा ऋतुपर्णका शीघ्रवाही रथवाही हूं,

दमयन्तीके कथनानुसार ब्राह्मणने निश्चय किया कि यह सूतवेषधारी राजा नल ही है, शीघ्र आकर दमयन्तीको निवेदन किया तो दमयन्तीने विप्रको पारितोषिक देकर मातासे कहा, हे मातः ! महाराजका पता तो मिला, पर उनके यहां आनेका उपाय करना चाहिये, माताने कहा, हे पुत्रि ! जैसे तू कहैं वैसे करें दमयन्तीने कहा जो निपुण ब्राह्मण मेरेको ग्राममें लाया है उसीको भेजना चाहिए पर पिताजीको यह वार्ता ज्ञात न हो तो ठीक है माताने वैसे ही स्वीकार किया, उसीकाल सुदेव द्विजको बुलाकर सारा वृत्तान्त कहा और दमयन्तीने ब्राह्मणसे यह कहा कि तुम राजा ऋतुपर्णसे कहना जो दमयन्ती महाराज नलके न मिलनेसे पुनः स्वयम्वर करेगी; परन्तु स्वयम्वरकी मितिमें एक दिन मात्रही शेष है, सुदेव ब्राह्मणने अयोध्या जाकर दमयन्ती प्रोक्त वृत्तान्तको राजा ऋतुपर्णसे यथावत् निवेदन किया राजाने स्वयम्वर-मिति सुनकर स्वयं शिर फेरा और कहा कि स्वयम्वरकाल अति समीप है मार्ग दूर है नहीं पहुँच सकेंगे, तत् पश्चात् दारुकको बुलाकर प्रकृत वृत्तान्तकी सूचना दी तो दारुकने स्वयम्वर समयपर पहुँचानेकी प्रतिज्ञा तो करी परन्तु दमयन्तीके स्वयम्वरको सुनकर अत्यन्त शोकातुर हुआ और राजाकी आज्ञासे उसीकालमें वेगशाली अश्वयुक्तयानको उपस्थित किया राजाके रथोपविष्ट होनेके पश्चात् दारुकने ऐसे वेगसे रथको चलाया जो राजा अश्वविद्याको देखकर आश्चर्य्य हुआ, मार्गमें एक हाथका रुमाल गिरनेसे राजाने रथरोकने की आज्ञादी तो देखा कि रुमाल चार कोसपर पीछे रह-गया है परंतु राजा दारुककी अश्वविद्यासे अति प्रसन्नहोकर स्वयमेव कहने लगा, हे दारुक ! तुम्हारी विमल विद्या तो हमने देखी परन्तु हमभी तेरे को एक अद्भुत गणितविद्या दिखलातेहैं देखिए इस वृक्षके भूमिपतित फल पत्र एकोत्तरशतहैं और इसकी दो वृद्धशाखामें पंचकोटिपत्र हैं । और दो सहस्र पंचनवति (२०९५) दोनों शाखामें फलहैं । दारुकने पूछा यह आप दृष्टिमात्रसे कैसे गणना कर लेतेहैं, तो राजाने कहा कि मंत्रा-नुगृहीत द्यूतविद्याका देवता मेरे वशीभूत है उसीकी कृपासे मेरेमें दृष्टिमा-

असे गणनाशक्ति विशद है, दारुकने पत्रपुष्पादि अनेकधा गिन२ कर राजाकी परीक्षा की, परन्तु राजाने विमल विद्यासे एकबेरभी विपरीत संख्या मुखसे न निकाली, दारुक देखकर आश्चर्य्य हुआ और कहने लगा कि, क्या यह विद्या आप मैं दासकोभी सिखलासकते हैं या नहीं, राजाने कहा हां परन्तु आपभी मेरेको अश्वविद्याका शिक्षित करें तो अति आनन्द हो, दारुकने भी स्वीकारकिया, राजा ऋतुपर्णने दारुकको द्यूतविद्यामंत्रका उपदेश किया और दारुकने राजाको अश्वविद्याका मंत्रोपदेश किया। द्यूतविद्याके मंत्रोपदेश होतेही कलिकरालनेभी दारुकरूप महाराज नलके शरीरसे आसन उठालिया, दारुकने पुनः रथको चलाया और शीघ्रही माहाराज भीमकी राजधानी कुण्डी ग्राममें आन पहुँचे, राजा भीमने यथोचित सन्मान कर निवासस्थान दिया, कुशल मंगल पूछकर आगमन प्रयोजन पूछा तो परम विज्ञ महाराज ऋतुपर्णने स्वयंवररचनाका अभाव देखकर यही कहा कि सिवाय आपके दर्शनके मुख्य प्रयोजन कोई नहीं है । परन्तु राजा ऋतुपर्ण मनमें जानगया कि यह अवश्य किसी स्त्रीका चरित्र है, परस्पर शिष्टाचारके अनन्तर राजा ऋतुपर्ण अपने आसनपर निविष्ट हुआ और दारुकभी वाजिशालामें अश्वन्बधनानन्तर शोकातुरसा होकर स्थण्डलोपविष्ट हुआ, राजकुमारी दमयन्तीनेभी राजमन्दिरपरसे दारुकको देखकर अंगप्रत्यंगतः महाराज नलको पहचानलिया, परन्तु वर्णविभ्रमसे यथावत् निश्चय न हुआ तो उसीकालमें केशिनीनामक दासीको बुलाकर दारुकके समीप भेजा, कुशला दासी दारुकसे वार्तालापकर यथासम्भव निश्चयकर आई कि यही राजा नल है । दमयन्तीने फिर दासीको भेजकर अपने अश्वपालक सेवकोंको यह आज्ञाकरी कि तुम लोगोंने इस दारुककी सर्वप्रकार शुश्रूषा करनी परन्तु जहां यह अपनी रोटी बनावे वहां जल अग्नि

---

१ जो पुरुष जितना काल जिस विद्यामें अशिक्षित है उस पुरुषमें उतना काल उस विद्या अभावप्रयुक्त कलिप्रवेशही समझना चाहिये विद्वानोंसे कलिभी भय करता है ॥

न जानेदेना और निवातस्थानमें रोटी बनानेको जगह देनी, सेवकोंने वैसेही आज्ञा पालन करी परन्तु परम प्रभावशाली दारुकके संकल्पमात्रसे घट जलसे *पूरित हुये, काष्ठमें दाहशक्तिभी दृष्टिमात्रसे उच्चशिखायुक्त निकली, वायु निवात स्थानमेंभी यथा योग्य* सहकारी हुआ, पूर्वोक्त देवमंत्रप्रभावसे अज्ञात अश्वपालकलोगोंको तो यह विचित्र रचना देखकर आश्चर्य्य हुआ और दारुकसे औरभी प्रेम करनेलगे. राजकुमारी दमयन्तीने प्रेमपरीक्षणार्थ अपने बेटी बेटेको साथदेकर दासीको फिर दारुकके समीप भेजा तो परम मनोहर जोरीको देखकर दारुकके अश्रुपात होनेलगे। दासीने दारुकसे अश्रुपातका कारण पूछा तो दारुकने कहा, हे भामिनि ! हमारे भी ऐसेही बच्चे थे, इसी वृत्तान्तको दासीने दमयन्तीसे कहा और उसने अपनी मातासे कहकर दारुकको राजमन्दिरमें बुलाया। प्यारी राजकुमारी दमयन्तीको देखकर दारुकरूप महाराज नलके नेत्रोंसे स्नेहसूचक नीर निकलनेलगा, राजकुमारी दमयन्तीनेभी कई एक विलक्षण चिह्नचेष्टाओंसे स्वपति पहचानकर पादप्रणाम किया और पश्चात् गले मिल रोने लगी, महाराजने कतिपय उपदेशयुक्त वचनोंसे धैर्य्य दिया और प्रेमसे पास बिठलाकर कुशल मंगल पूछा, दमयन्तीने यथावत् सभी सुनाकर महाराजसे शरीरश्यामका कारण पूछा तो महाराजने पूर्वोक्त कर्कोटनामक नागके वृत्तान्तको सुनाकर उसके दिये वस्त्रोंको धारणकर स्वशरीरको यथावत् कान्तिमान् बनाय दमयन्तीको परमोत्साहित किया, नल दमयन्तीके मिलापसे महाराज भीमकोभी परमानन्द हुआ और राजा ऋतुपर्णभी कतिपय दिन राजा नलको द्यूत विद्याका अभ्यास कराकर तथा उससे अश्वविद्याका स्वयं करके शेषमें महाराजसे क्षमा माँगकर अपनी राजधानी अयोध्यामें पधारे, तत्पश्चात् नलमहाराजनेभी महाराज भीमसे स्वदेशमें गमनार्थ आज्ञा माँगी तो महाराज भीमने उचित जान यथोचित सेनासामग्री देकर दमयन्तीसमेत मान्यपूर्वक जामातृको स्वदेशमें पहुँचाया, महाराज नलने स्वनगरसमीप जाकर अपने पुष्कर भ्राताको बोधन किया कि युद्धकरो वा द्यूत खेलो, हमारे पास इसकालमें उभयार्थसाधिका सामग्री सिद्ध है, पुष्करने संग्रामसे उपराम होकर

द्यूतदाउसे फिर राजा नलका सर्वस्वापहरण करनाचाहा, परन्तु सुशिक्षित महाराज नलने उसकी एक भी न चलने देकर प्रत्युत उसका सर्वस्व जीतलिया, पश्चात् पुष्कर स्वाधीनहुआ तो महाराजने दयाआर्द्र होकर यह कहा कि, हे भाई ! तुमने तो हमारेको द्यूतमें जीतकर देशसे निकाला था, परन्तु हमारेसे तो तेरेको ऐसा निष्ठुर वाक्य नहीं कहा जासकता, हम तो इतनेपरभी और न कुछ कहकर यही कहते हैं कि तुम अपने ग्राममें जाकर आनन्दसे बसो । इस प्रकार महाराजकी आज्ञा पाकर पुष्कर अपने ग्राममें जा बसा और महाराजभी अपनी महिषी (पटरानी) दमयन्ती देवीके साथ आनन्दपूर्वक राज्यऐश्वर्य्योंको भोगने लगे, सो इस प्रकार तो पण्डितजी महाराज भावीने महाराज नल को नीचा दिखलाया ऐसे ही महाराज युधिष्ठिरके भावीवेगका वृत्तान्त है सो कल्ह सुनाओंगा यह कहतेही संध्या होगई राजकुमार उठा सभा विसर्जन हुई ॥

इति द्वितीय विश्राम ॥ २ ॥

तृतीय विश्राम ३.

इसीतौर महाराज युधिष्ठिरके जीवन कहनेवाले सविस्तर महाभारतका संक्षेप यह है कि, एक मेनका अप्सराके पेटसे विश्वामित्र ऋषिके वीर्य्यसे शकुन्तला पैदा हुई इस शकुंतलाके पेटसे राजा दुष्यन्तके वीर्य्यसे भरत-नामक राजा हुआ इसीकी वंशपरंपरामें राजा प्रतीप हुआ । प्रतीप राजाके पुत्र शान्तनुनामक राजाके गृहमें गंगानामिका स्त्रीने राजासे यह प्रतिज्ञा करी कि जो मेरेसे संतति हो सो गंगानदीमें प्रवाही जावे राजाने इस वार्ताको स्वीकार किया, राजा शान्तनुके वीर्यसे गंगाके गर्भसे सात पुत्र हुये सो राजाने पूर्वोक्त प्रतिज्ञासे गंगानदीमें प्रवाह किये, पश्चात् अष्टमपुत्र भीष्मजी हुए तो राजाने पुत्रकी प्रतापशाली प्रतिमा देखकर विचारा कि यदि यह

---

१ क्या जाने गंगाकी स्वकीयापत्यमें क्यों द्वेषबुद्धि थी ।

मनोहर मूर्ति भी गंगामें डाली जायगी तो शासकाभावप्रयुक्त निःसन्देह राज्य नष्ट होगा, इसीवार्तामें मंत्रीलोगोंसे संमति लेकर राजाने गंगास्त्रीसे भीष्म पुत्रको माँग लिया स्त्रीने पुत्रको दे तो दिया परन्तु राजाको प्रतिज्ञा पालक न समझकर क्रोधसे गंगानदीके प्रवाहमें प्रविष्ट होकर आत्मघात किया, इस सुशीला प्राणप्यारी स्त्रीका राजाको कंई दिन अत्यन्त शोक रहा परन्तु पश्चात् अस्त्रशस्त्रादि विविधविद्याविशारद कला वृद्धचन्द्रवत् प्रतिदिन पुष्ट पुत्रको देखकर प्रसन्नभी होने लगा, एकदिन प्रसन्न हो कईएक कर्मचारी लोगोंको साथ लेकर आखेट (शिकार) खेलने गया तो नदीकूलपर एक केवटकी कमनीयकान्ती कुमारी योजनगन्धा नामिकाके अवलोकनसे व्यामोहित हुआ, राजाने केवटको बुलाकर लडकी योजनगन्धा पर स्वकीय चित्तचंचलता सूचन करी, परन्तु कुशल केवटने राजासे कहा कि, यदि इसके गर्भजपुत्रको आप राज्यतिलक देना स्वीकार करें तो मैं प्रसन्नतापूर्वक पुत्री प्रदान करता हूं, यह वार्ता धार्मिक राजाने अनुचित जानकर अस्वीकार करी परन्तु गृहाविष्ट होकर कई दिन व्यग्रमनसे प्रति क्षण उस प्रेममयी मनोहर मूर्ति योजनगंधाको स्मरण करने लगा, योजनगन्धा की जन्मकथा यह है कि, एक पराशर नामक ऋषि अपनी नवयुवती स्त्रीको छोड़कर तपस्यार्थ वनको पधारा और अपनी स्त्रीको यह कह गया कि ऋतुस्नानानन्तर शुक (तोता) द्वारा मेरेको बोधन करना मैं वीर्य्य भेजूंगा जलमें मिलाकर पीना तो गर्भस्थित होगा। पतिप्रिया स्त्रीने स्वामीकी आज्ञानुसार समयपर वैसे ही शुकपक्षी प्रेषण किया, ऋषिने स्ववीर्य्यको पत्रपुट (डोंना) में स्थापन कर सुशिक्षित शुकको समर्पण किया पक्षी वीर्य्ययुक्त पत्रपुट लेकर चला परन्तु मार्गमें तृषातुर हो नदीकूलपर पत्रपुट रख पानी पीने लगा तो अर्धभाग वीर्य्यका नदीमें गिर पड़ा उसको एक महामछलीने भक्षण किया, शेष रहा सो शुकपक्षीने ऋषिस्त्रीको जादिया उसे एक पुत्र हुआ और पूर्वोक्त मछली भक्षणार्थ एक केव-

---

१ गृहस्थमें इसीका नाम राजा सुधन्वा था।

टने पकड़ी उसके पेटमेंसे पूर्वोक्त ऋषिवीर्य्यरचित एक दिव्यगुणमयी कन्या निकली, केवटने उसका पुत्रीवत् पोषणकर मत्स्योदरी नाम रक्खा,वह सुन्दरी सुशिक्षित होकर नौकाद्वारा यात्री नदीवारपारादि केवट गृहकार्य्य अनायास करने लगी, ऐसेही पराशर महर्षिकी तपश्चर्य्याके भी द्वादश वर्ष पूर्ण हुए तो गृहगमनाभिलाषी होकर दैवात् उसी घाटपर आन उपस्थित हुए, अकस्मात् मत्स्योदरीही उनको पार उतारने लगी परन्तु ऋषि उसके स्वरूप गुण स्वभावको देखकर आसक्त चित्त होकर केवटकुमारी कृशोदरी मत्स्योदरीको बोला, हे सुन्दरि ! मेरा मन तेरे पर चलायमान है, शेष परस्पर कतिपय वार्तालापानन्तर महर्षि पराशरने मत्स्योदरीसे यथेष्टाचार- किया और पश्चात् कितने कुँवर प्रदानभी किये जिनमें एक यह भी था कि तेरेसे योजनतक गंध फैलेगी, उससे लोकप्रख्यात महर्षि व्यासदेव प्रादुर्भूत हुए.इन्होंने जन्मतेही जननीसे कहा कि, हे मातः ! जब तुझे कदाचित् कठिन कार्य्य पड़े तो मुझे स्मरण करना और यह कहकर वनको पधारे, पश्चात् उसी मत्स्योदरी अपरनाम योजनगन्धाके निरीक्षणसे राजा शांतनु व्यग्रचित्त हुआ, भीष्मने पितासे असंतोषका कारण पूछा तो राजाने सिवाय योजनगन्धाकी अप्राप्तिके कुछ न कहा,भीष्मने केवटके पास जाकर राजाको योजनगन्धा अर्पणका उपदेश किया तो केवटने भीष्मको योजनगन्धाके गर्भजपुत्रको राज्यप्राप्ति स्वीकार कराया। पश्चात् राजा शान्तनुने योजनगन्धासे विवाह किया और इस कार्य्यके करनेसे पुत्र भीष्मको अनेक वरप्रदान किये. ऐसे ही कुछ काल पीछे योजनगन्धाके पेटसे राजाके चित्रांगद, विचित्र वीर्य्यनामक दो पुत्र उत्पन्न हुए तो राजा शान्तनु प्रारब्धभोगानुसार देवलोक पधारे। पीछे भीष्मजीने स्वप्रतिज्ञानुसार राज्यतिलक वर्तमान मातासे पिताके ज्येष्ठपुत्र चित्रांगदको दिया और काशीराजकी अंबा अम्बालिका नामक दो कन्याओंके साथ यथोचित दोनों भाईयोंका विवाह करदिया, ऐसे ही कुछ काल पीछे राजा चित्रांगद राज्यमदान्ध होकर दुराचारी हुआ तो योजनगन्धाने

राज्य विनाशभयसे अपने पुत्र व्यासदेवका स्मरण किया व्यासजी उसीकाल आय उपस्थित हुए, माताने स्वपुत्र राजाको राजनीति उपदेशरूप कार्य्य बोधन किया तो व्यासने कहा, हे मातः! वह राज्यमदान्ध मेरेसे नहीं सुनेगा मैं तुझे सुनाताहूं तुम उसको सुनादेना, माताने स्वीकार किया तो प्रति दिन संध्यासेलेकर एकान्त अर्द्धरात्रितक व्यासजी माताको राजनीति सुनाने लगे, यह घटना देखकर राजा चित्रके मनमें मिथ्या भ्रमयुक्त असंतोष हुआ और चाहा कि इस दुराचारी ब्रह्मचारीके प्राण लेलेवें, परन्तु फिर शोचा कि विना पूर्ण निश्चय किये ब्रह्महत्या करनी उचित नहीं एकान्त होकर निश्चय किया तो सुना कि, व्यास हे मातः ! २ कह उपदेश करताहै और वह हे पुत्र!कहकर पूछतीहै तब तो वास्तव धर्मशाली राजा चित्र मिथ्यारोपसे और भी असंतुष्ट हुआ और प्रातःकाल व्यासजीको बुलाकर हाथ जोडकर पूछने लगा कि हे ऋषे ! मिथ्यारोपका क्या प्रायश्चित्त है तो व्यासजीने कहा कि,हे राजन्! प्राचीन शुष्क अश्वत्थके पेड़के पोलमें प्रविष्ट होकर मिथ्यारोपी पुरुष जीवित जलमरे तो ठीकहै, धार्मिक राजाने वैसेही किया पश्चात् भीष्मजीने राज्याधिकार छोटेभ्राता विचित्रको दिया,वह दैवात् आखेट खेलने गया तो सिंहने मार डाला पश्चात् माताके कहनेसेभी भीष्मजीने राज्याधिकार न स्वीकार किया तो माताने फिर पुत्र व्यासका स्मरण किया, ऋषि उपस्थित हुए तो माताने यावत् वृत्तान्त सुनाया,शेषमें माताकी आज्ञासे व्यासजीने चित्र विचित्रकी स्त्रियोंसे तथा एक दासीसे सन्तान अर्थ नियोग किया, तिससे उन तीनोंसे यथाक्रम धृतराष्ट्र, पण्डु, विदुर यह तीन पुत्र हुये,भीष्मजीने ज्येष्ठ जानकर राज्यतिलक अन्ध धृतराष्ट्रको दिया परन्तु यावत् राजकार्यकर्ता पण्डु हुआ ।भीष्मने प्रचण्ड बाहुबलसे दिग्विजय कर यावत् देशके राजा इनके स्वाधीन करदिये गान्धारीके पेटसे धृतराष्ट्रके दुर्योधनादि शतपुत्र हुए । और पण्डुने कुन्ती तथा माद्री इन दो स्त्रीके साथ विवाह किया पश्चात् एकदिन शिकार खेलने गया तो वनमें मृग मृगीके परस्पर संसर्ग समय राजाने उनपर बाण चलाया, वे दोनों वास्तवमें मृग मृगी न थे किन्तु पशुधर्मको दिनसमय शास्त्रविरुद्ध समझकर स्वरूपान्तर से पशुधर्म

करनेवाले कोई एक ऋषि, ऋषिपत्नी थे उन्होंने बाणाघात होते ही स्वकीय वास्तवस्वरूपको ग्रहण किया और पण्डुराजको ऋषिने शाप दिया कि, हे राजन्! तैंने हमारा आनन्द भंग किया है ऐसे ही जब तुम भी मदान्ध होकर इसी विषयानन्दकी अभिलाषा करोगे तब तुमारा शरीर भस्म होगा, ऋषिके ऐसे वचन सुन राजा अतिभयभीत हुआ और प्रतिदिन प्रयत्नसे जीवन व्यतीत करनेलगा, उधर कुन्तीने अपने कुलगुरु दुर्वासासे एक देव साक्षात् करनेका मंत्र सीख रक्खाथा, उसी मंत्रके परीक्षणार्थ कुन्तीने अपनी कुमारावस्थाही में सूर्य्यका आवाहनकर महा शूरवीर कर्णनामक पुत्रको लाभ कियाथा, कुन्तीने कई वर्ष तक जब अपने शापितपतिको शापभीतिसे सन्तान उत्पन्न करनेमें असमर्थ देखा तो उसने अपने प्रियपतिको स्वपरीक्षित मंत्रका प्रभाव सुनाया पण्डुराजने आज्ञा दी कि, यदि ऐसा है तो तुम देववीर्य्यसे संतान उत्पादन करो नाम तो मेराही रहेगा, एवं कुन्तीने प्रियपतिकी आज्ञाद्वारा धर्मराजके आवाहन, से युधिष्ठिरका, वायुके आवाहनसे भीमका, तथा इन्द्रसे अर्जुनका लाभ किया, कुन्तीहीसे उक्त मंत्रको सीखकर माद्रीने अश्विनीकुमारोंके आवाहनसे नकुल तथा सहदेवका लाभ किया, पश्चात् किसी एक कालमें कामातुर होकर पण्डुराजने प्राणप्यारी स्वनारी माद्रीसे सम्बन्ध किया तो उक्त महर्षिके शापसे उसके प्राण हत हुए, माद्री भी अपने द्वयपुत्ररत्नोंको प्यारी सखी कुन्तीको समर्पणकर महाराज पण्डुके साथ ही चितामें प्रविष्ट हुई पश्चात् कुन्तीने पाँचोंपुत्रोंका समानदृष्टिसे पालन किया, ऋषिलोगोंने पण्डुराजका राज्याधिकार सबसे बडे पुत्र युधिष्ठिरको प्रदान किया परन्तु छोटी अवस्थाके कारण राज्यप्रबन्धकी त्रुटीको न दूर करसके तो लाचार होकर धृतराष्ट्रका आश्रय लेनापडा, धृतराष्ट्रहीके शतपुत्रोंमें मिलमिलाके निर्वाह करने लगे, उन शतपुत्रोंमें एक दुर्योधननामक पुत्र अपनी छोटी ही अवस्थामें अति कुशल नीतिनिपुण तथा राज्याभिलाषी हुआ इसने अपने अन्धपिताकी सहकारितासे छोटीही आयुमें सर्व राज्यप्रबन्ध स्वाधीन किया, खेलकूदादिबलसंबंधी कार्य्योंमें इससे सिवाय भीमके सबको नीचा देखना पडताथा, यह

सयय २ पर अर्जुनादिके अभ्युदयके विपरीत चेष्टा करने लगा, उसकी कुनीतिके बर्तावको देख भीम उसके शतभाईयोंको खेलकूदमें दुःखी करने लगा ऐसेही प्रतिदिन आपसमें द्वेषकी वृद्धिहोनेलगी तो दुर्योधनने बिचारा कि यदि यह पांचों भाई बड़े होगये तो मेरेको राज्यवैभवका अनुभव करना कठिन होगा याते प्रथमही कोई प्रबल उपाय करना उचित है, ऐसा बिचार विषमिश्रित मिठाई बनवाकर नौकापर बैठ यमुनाजीके सैरकी तैय्यारी करी दिनभर सभी भाई मिलकर अनेक प्रकारके खेलोंको खेलकर चित्तप्रसन्न करते हुए भोजनके समय नदीके संकेतित स्थानपर पहुँचे तो वहां दुर्योधन-वशवर्ती पाचकने सबको मिठाई भोजनार्थ परोसी परन्तु भीमको वह मिठाई दई कि जिसमें विष मिलाय रक्खाथा अब अज्ञात विश्वस्त भीमको उस मिठा-ईके खानेसे थोड़ीही देर पीछे मूर्च्छासी आगई तो दुर्योधनने उसको हाँसी-हीमें नदीमें गिरवा दिया, युधिष्ठिरादिकोंसे शोकके सिवाय उस समय कुछ-भी न बनपड़ा, उधर दैवके कुछ अनुकूल होनेसे भीमको नदीहीमें नागलोकका मार्ग मिला, भीम वहां पहुँचा वासुकीसे भेंट हुई तो उसने प्रसन्न होकर उस-का विषजोश उतारकर शत्रु जीतनेकी विद्याभी प्रदान करी पश्चात् भीम फिर हस्तिनापुर आया दुर्योधनादि देखकर चकित हुए। वैसे ही फिर आपस में निर्वाह करने लगे परन्तु द्वेष प्रतिदिन वृद्ध होनेलगा इतनेमें एक परशुरा-मका शिष्य द्रोण नामक ब्राह्मण द्रुपद राजासे रुष्ट होकर स्वयं हस्तिनापुरमें आय निवास करने लगा, एक दिन वह सभी भाई मिलकर गेंद खेलरहेथे तो इनका गेंद दैवात् कूपमें गिरगया दौड़कर सभी कूपके किनारे गए पर गेंदका मि लना सबने दुष्कर समझा, ऐसेही स्नानसन्ध्यार्थ द्रोणाचार्य्यभी उसी कूपके किना-रे पर पहुँचे उन्होंने बच्चोंसे कूपावरणका कारण पूछा तो बच्चोंने अपने गेंदका कूपपतन बतलाया. द्रोणने एक बच्चेको भेजकर धनुष तथा दो चार बाण मँग-वाए, एकबाण गेंदमें मारा दूसरा उस बाणकी पृष्ठमें अर्थात् बाणमें बाण मारा एसेही दो चार बाणोंके आपसमें परोनेसे शेषबाणकी पृष्ठमें हाथ पहुँचनेलगा तो द्रोणने राजकुमारोंसे कहा अब तुम अपना गेंद निकाललो वे निकालके

अतिप्रसन्न हुए और ब्राह्मणको धन्यवाद देकर फिर खेलने लगे, सबने आश्चर्य्य होकर यह गेंद निकालनेका प्रसंग रात्रिको धृतराष्ट्र तथा भीष्मको सुनाया भीष्मने द्रोणको बुलाकर सन्मान किया और अपने राजकुमारोंको विद्या सिखलानेकी प्रार्थना करी द्रोणने उसको प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार किया और अतिप्रेमसे राजकुमारोंको प्रतिदिन नवीन २ शिक्षा देनेलगा, अनेक राजकुमार सुयोग्य शिष्य तैय्यार किये परन्तु उनमें पाँचों भाई पाण्डव, कर्ण तथा दुर्योधन यह सात शिष्य ऐसे निकले कि, जिनके सम्बन्धसे द्रोणगुरुको आचार्य्य पदवी मिली और मनुष्यलोकसे अतिरिक्त देवलोकतकभी द्रोणका नाम निष्कलंक कीर्तिपूर्वक प्रख्यात हुआ, उसीकालमें एक निषादराजका पुत्र एकलव्य नामक द्रोणके पास धनुषविद्या सीखनेकी अभिलाषासे आया, द्रोणने उसको शूद्र कहकर उक्त विद्या सिखलानेसे इनकार किया, उसने जङ्गलमें जाकर द्रोणकी मूर्ति बनाकर उससे मानसिक आज्ञा पाय २ कर अभ्यास करना आरम्भ किया यह भी द्रोणका शिष्य उक्तविद्यामें अतिनिपुणथा, लिखा है कि, एक समय यह पाण्डव वनमें शिकारको गये तो उसी एकलव्य भीलको देखकर इनका कुत्ता भोंकने लगाही था कि भीलने कुत्तेके मुख पसारनेतक उसका मुख बाणोंसे भर दिया, अर्जुन इस वार्ताको देखकर आश्चर्य्य हुआ और उस भीलसे प्रेमपूर्वक पूछने लगा कि. तुम कौनके शिष्य हो. उसने द्रोणका नाम लिया तो अर्जुन और भी प्रसन्न हुआ और मनमें कहा कि, यह विद्या गुरुजीने हमें तो न प्रदान करी, शेष भीलसे अर्जुनने पठन स्थल पूछा तो उसने स्वागारमें द्रोणजीकी मृण्मयी मूर्ति दिखलाई अर्जुन और भी प्रसन्न हुआ सभी राजधानीमें लौटके आये तो कुछ काल पीछे अर्जुन तथा कर्णका परस्पर घोर संग्राम हुआ कारण इसका यही था कि यह दोनों बलविद्यादिमें सर्वथा तुल्य थे परन्तु दुर्योधनका पक्ष करता हुआ कर्ण अर्जुन के बलवीर्य्यविद्यादिको तुच्छ जाना करताथा और पाण्डवभी इसको दासीपुत्र कहकर पुकारा करतेथे अर्थात् कुंतीने उत्पन्न होतेही इसको धृतराष्ट्रकी 'राधे' नामक दासीको

दे दियाथा और दुर्योधन उसके लोकोत्तर गुणोंको देखकर उसका बड़ाही सन्मान किया करताथा इसीलिये वहभी दुर्योधनको प्राणप्रिय तथा उसके आगे औरोंको तुच्छ जाना करताथा, कर्णार्जुनके संग्राममें दोनोंही तुल्यबल हुए एकके आगे दूसरेको नीचा न देखना पड़ा दोनों ओरके दर्शकोंकी चित्तवृत्ति प्रफुल्लितही बनी रही, द्रोणगुरु भी दोनों पर प्रसन्न हुए और दोनोंको कहा कि, तुमको हमारा निरादर करनेवाले द्रुपदपरभी चढाई करनी उचित है, इन दोनोंने स्वीकार किया तो द्रोणने अपनी और भी शिष्यमण्डलीको साथ लेकर द्रुपद पर चढाई की, द्रुपदको भेद मिला तो वह आगेसे चलकर शरणागत हुआ, एवं पाण्डवोंके प्रभावको प्रतिदिन वृद्ध देखकर दुर्योधन प्रतिदिन चिन्तातुर रहने लगा, शेषमें एक पुरोचन नामक मंत्रीके साथ यह मंत्र किया कि यह पांचों पाण्डव सहित इनकी माताके एक लाक्षामंदिरमें जला दिये जावें, उसी कालमें उक्तमंत्रीको लाक्षामन्दिर बनवानेकी आज्ञा दी बनकर तैय्यार हुआ तो दुर्योधनने अपने पितासे पाण्डवोंको आज्ञा दिलवाई कि, एक हमने नूतन मन्दिर गंगातीरमें निर्माण करवाया है कलहके दिन उसका वास्तु होनेवाला है, अग्निहोत्र, यज्ञ, दान, ब्रह्मभोजनादि बहुत उत्साहपूर्वक होगा, आप लोगोंकोभी वहां जाना उचित है, इस धृतराष्टकी आज्ञाको सरलस्वभाववाले पाण्डवोंने सत्कारपूर्वक स्वीकार किया परन्तु परम नीतिनिपुण विदुरने उनके जानेके पूर्वही उस लाक्षामन्दिरका सारा पोल पाण्डवोंको खोल सुनाया कहा कि, हे राजकुमारो! आप लोगोंने उसको राजमन्दिर मत समझना वह एक आपलोगोंके विनाशार्थ इस कुनीतिनिपुण दुर्योधनने छद्ममन्दिर बनवाया है, वह केवल चारोंतरफ बाँसकी लकड़ी खडीकर बनवाया है ऊपरसे कागद कपड़े, सफेदीसे पोचा है परन्तु बीचमें जगह २पर बारूद भरा है आग लगते ही वह एकदम जलेगा आपलोगोंने सावधान रहना, विदुरजीकी ऐसी वाणीको सुनकर पाण्डव आश्चर्य्य हुए और अति सावधानतापूर्वक वहां जाकर निवास किया उस दिन दुर्योधनके पुरोचन नामक मंत्रीने यज्ञहोमा-

दि यावत् क्रियाको करवाया और अनेक साधु ब्राह्मण अभ्यागतोंको भोजनभी प्रसन्नतापूर्वक कराया, उधर पाण्डवोंनेभी अपने सवार होकर पार होनेके लिये केवटको कहकर नौका तैय्यार रक्खी, रात्रिहुई तो मन्त्रीको दुर्योधनका हुक्म सब लोगोंके सोनेपर मन्दिरको अग्नि लगानेका था, तबतक दिनभरके कार्य्यके श्रमसे उसको सन्ध्यासमय ही आलस्य आया थोडीसी आँख लगी तो चार घटिका रात्रिगत हुई, पीछे अर्थात् अष्टवादनसमय भीमने स्वयं उस मन्दिरको अग्नि लगादिया और आप अपनी माताके साथ पांचोंभाई उक्त नौकापर सवार हो गंगापार हुए, पश्चात् दग्धमन्दिरमें एकमंत्री जो कि दुर्योधनने भेजाथा और एक पांचों पुत्रके साथ भीख माँगनेवाली ब्राह्मणी यह सात जलकर मरगये । पश्चात् मंत्रीके न मिलनेसे दुर्योधनने पाण्डवोंके साथही उसका जलजाना भी निश्चय किया और पाञ्च पुत्रोंके साथ जलमरी भिखारिन ब्राह्मणीको कुन्ती तथा उसके पांचों बेटोंको पाण्डव जले मानकर चित्तमें अतिसंतुष्ट हुआ तथा तबहीसे अप्रतिम निष्कण्टक राज्यवैभवका स्वामी अपनेको मान ऐसा प्रसन्न हुआ कि मानों रंकको अक्षयनिधि लाभ हुई, उधर पाण्डवोंने गंगापार होकर अपना स्वरूप ब्रह्मचारियोंका बनाया और माता कुन्ती को साथ लिये भीख माँग २ दिन काटने लगे, जो जो वस्तु भीख माँगनेसे मिलती वह पांचों माताके आगे लाकर रख देते माताभी इन पांचोंको यथायोग्य भागकर बाँट देती तथा शेष बचे तो आप भोजन कराकरती, ऐसेही वनमार्गमें पाण्डवोंको एक हिडिम्बनामस राक्षस मिला वह उनको त्रास देनेलगा भीमका उसके साथ घोर संग्राम हुआ शेषमें भीमने उसको मल्लयुद्धमें मलकर मार डाला और उसकी हिडिम्बा नामक भगिनीसे प्रेमकर भीमने भोगकिया तो उससे घटोत्कच नामक पुत्र पैदा हुआ भीमने उसको हालमें वनहीमें निवास की आज्ञादी और भावीयुद्धमें उपस्थित होनेका अनुरोध किया, आगे एक ग्राममें पहुँचे तो वहांके प्रतिदिन एक आदमीको एक बकासुर नामक राक्षस खाजाया करता था, उस दिन एक ब्राह्मणकी पारीथी वह ब्राह्मण अपनी, माताका एकही पुत्रथा, वह प्रातःही उठकर स्वपुत्रवियोगको स्मरणकर रोने-

लगी अकस्मात् भीमभी भीख माँगता उनहीके घर पहुँचा देखे तो माता रोरहीहै तथा पुत्र वारण कर रहा है, भीमने पूछा, हे ब्राह्मणदेव! तेरी माता क्यों रोती है? उस ब्राह्मणने सारा वृत्तान्त कह सुनाया, भीमने पूछा तुम्हारे घरमें खाने कोभी है कि नहीं ब्राह्मणने कहा खानेको तो आपलोगोंके अनुग्रहसे पुष्कल है, भीमने कहा तो मेरेको आप आज भोजन करायदेवें तो मैं आपके बदले बकासुरकी भेट होकर उपस्थित होजाऊँगा, ब्राह्मण बोला हरे! हरे! हे ब्रह्मचारिन्! ऐसा निषिद्ध कार्य्य मैं कैसे करसकूं, यदि मेरे बदले आप अपने प्राणार्पणकर मत्प्राणत्राणकरभी देवें तो भी मैं क्या अमर होसकताहूं? चार दिन पीछे या आगे मरणा समान है एक दूसरेके लिये प्राण देवे यह ईश्वरन्यायसे भी विरुद्ध है. इस लिये आप प्रसन्नतापूर्वक भोजन कीजिये और मेरी माताको आशीर्वाद दीजिये कि मेरे पश्चात् ईश्वर इसको सन्तोष तथा धैर्य्य प्रदान करे, भीमने कहा, हे ब्राह्मणदेव! जो आपने कहा सब सच है परन्तु यदि आप आज जायँगे तो वह दुष्टराक्षस आपको अवश्य मारही डालेगा और आपके बदले मैं जावूंगा तो मेरे मरणमें संदेह है क्योंकि मेरे पास एक गुरुका दिया हुआ राक्षसवशीकरणका मंत्र है मैं उस राक्षसके सामने उसका जप करूंगा, यदि वह गुरु पीरवाला होगा तो मेरेको मारनेके बदले प्रेमकरने लगेगा और यदि उसने गुरुकी कान न मानी तो भी मैं उसके साथ दो हाथ अवश्य करूंगा, बहुत कहनेसे भीमका कथन ब्राह्मणने स्वीकार किया उसकी माताभी प्रसन्न होकर भोजन बनाने लगी. भीमभी उक्त कार्य्य अपनी माता भ्राताओंको निवेदनकर भोजनार्थ ब्राह्मणगृहमें उपस्थित हुआ, अतिप्रसन्न हो भोजन किया और पश्चात् उक्त राक्षसके स्थानहीमें जायकर सोय रहा. सायं समय राक्षस आया और अपने भक्ष्यको निर्भय सोये देखकर एक लात प्रहार करी, भीम क्रुद्ध होकर उठा और राक्षसको पकड कर छछोडने लगा एक दो घंटेमें हैरानकर मारडाला, इस वृत्तान्तको नगरवासी लोग सुनकर अतिआनन्दित हुए और पाण्डवोंका विशेष सन्मान किया. ऐसेही चलते२ जङ्गलमें पाण्डवोंको कई एक ऋषियोंके आश्रम मिले दो दो चार चार रोज निवासकर आगे

चलते जाते, एक दिन प्रसंगानुसार पाण्डवोंको माताने कहा, हे पुत्रो! विदेशका समय है निर्वाह करना आवश्यक है आप पांचोंही मेरे सामने यह प्रतिज्ञा करो कि छोटी मोटी कुछ भी वस्तु मिले उसमें पाचोंका तुमरा सम भाग ही होना होगा, माताकी इस प्रतिज्ञाको पांचोंने प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार किया तबतक सर्व ऋषियोंके आश्रमोंपर राजा द्रुपदकी ओरसे द्रौपदीके स्वयम्वर का आमंत्रण आया पाण्डवोंको भी प्रेमपूर्वक साथ लेते हुए ऋषि लोग राजा द्रुपद की राजधानीमें उचित समयपर उपस्थित हुए, देश देशान्तरके और राजकुमार भी आमंत्रित हुए नियत समयपर आय पहुँचे, कृष्ण, बलदेव, कर्ण, दुर्योधनादि अनेक शूरवीर राजकुमार आये, राजा द्रुपदने सबका यथोचित सन्मान किया उचित समयपर यथोचित स्थानपर निविष्टहो राजकुमारोंने स्वयम्वरमण्डपको सुशोभित किया तो द्रुपदके पुरोहितने खडे होकर सब राजकुमारोंको बोधन किया कि इस धनुष बाणसे इस स्तंभशिरोपरि भ्रमायमाण मत्स्यमूर्तिको जो राजकुमार द्रुपदराजकी प्रतिज्ञापूर्वक वेधन करेगा उसके गलेको द्रुपदराजकुमारी स्वयम्वरमालासे सुशोभित करेगी, द्रुपदराज की प्रतिज्ञा यह थी कि, नीचे तेल या पानीके कटाहमें देख कर ऊपरकी ओर प्रचलित मत्स्यमूर्तिको वेधन करनेवाले विद्वान्को अपनी पुत्रीको देना परन्तु ऐसे लक्ष्यभेदनकी विद्या उस समय सिवाय कर्ण तथा अर्जुन के दूसरेको नहीं आतीथी और अर्जुनके तात्पर्य्यहीसे राजाकी प्रतिज्ञा भी थी, पुरोहितप्रेरित यथाक्रम अनेक राजकुमारोंने उक्त लक्ष्यभेदनका प्रयत्न किया परन्तु जिसका कभी स्वप्नमेंभी अभ्यास नहीं ऐसे लक्ष्यका भेदन अकस्मात् कैसे होसके अनेक राजकुमारोंने उक्त लक्ष्यभेदनका प्रयत्न किया परन्तु शेषमें विफल प्रयत्न होय नार निवायकर नियत स्थानोंपर आय बैठे एवं कईएक दुर्योधनादिके हृदयमें अपनी अप्रतिष्ठाकी भीतिसे उक्त लक्ष्यभेदनका साहसही नहीं पड़ा और करणने अपने को दासीपुत्र मानकर उक्त क्षत्रियसमाजमें लक्ष्यभेदनमें प्रयत्न ही न किया ऐसेही थोड़ी देरीतक कोई न उठा तो द्रुपदराजाका पुरोहित बोला कि इस समय भूमि शस्त्र विद्यासे

शून्यसी दीख पड़ती है, अहो ! इतने शूरवीर राजकुमारोंके समाजमें कोई एकभी उक्त लक्ष्यका भेदक न निकला, शोकका विषय है, इस सर्वसाधारण वचनको सुनकर कर्णसे रहा न गया दुर्योधनके भ्रूभङ्गसे आज्ञापित होकर अनायासही धनुषबाणको उठाय लक्ष्यमें एकतान करताही था कि ऊपर राजमन्दिरमेंसे द्रौपदीने सूचित किया कि, इस पुरुषके लक्ष्यभेदन करनेसेभी मैं इसको वर नहीं सकती क्योंकि मैंने इसको दासीपुत्र सुन रक्खा है, यदि यह वार्ता सच है तो इसके लक्ष्यभेदन करनेसेभी पिताकी प्रतिज्ञा अनुसार आजन्म मेरेको लांछित होना उचित नहीं, यही वार्ता पुरोहितने कर्णकर्ण गतकरी तो वहभी उक्त क्रियासे निवृत्त हुआ शेषमें ब्राह्मण ऋषिमण्डलीमें निविष्टपाण्डवोंने ऋषिसमुदायकी आज्ञा पाय अर्जुनको उक्त लक्ष्यभेदनमें प्रवृत्त किया अर्जुनका उत्थान देखकर कईएक ऋषि प्रसन्न हुए कि, यदि यह ब्रह्मचारी लक्ष्यभेदन करेगा तो इससमय शस्त्र विद्याके संरक्षणसे हमलोग यशोभागी अवश्य होंगे एवं कईएक (इस ब्रह्मचारीसे लक्ष्य न भिदेगा) ऐसा मानकर चित्तमें असंतुष्टभी हुए और यह कहनेलगे कि इस ब्रह्मचारीकी विपरीत चेष्टासे हमलोगोंको सभीलोग यह अवश्य कहेंगे कि अशिक्षित असंतोषी ब्राह्मण निर्लज्ज होकर क्षत्रिय राजकुमारियोंकोभी आवृत किया चाहते हैं । ऐसे २ परस्पर ऋषिमण्डलके विचार हो ही रहेथे तबतक अर्जुनने जातेही धनुषबाणको उठाय अनायास उक्त लक्ष्यको भेदन किया । सर्व ओर जय २ कारका शब्द हुआ यावत् ऋषिमण्डल प्रसन्न हुआ सबके स्वान्तमें शंका हुई कि यह ब्रह्मचारी ब्राह्मणकुलका कभी न होगा, ऐसेही द्रुपदकोभी संदेह हुआ उसके वारणार्थ अर्जुनको एकान्तमें बुलाकर पूछा तो उसने अपना सब वृत्तान्त कह सुनाया राजा द्रुपद अतिप्रसन्न हुआ और मनमें कहा कि दैवने मेरी अकस्मात् अभिलाषा पूर्ण करी अन्यथा मैं अर्जुनको कहाँ खोजने जाता एवं द्रौपदीका शास्त्रविधिपूर्वक विवाहकर आहूत राजकुमारोंको यथायोग्य सत्कारपूर्वक प्रस्थान कराया तथा पाण्डवोंके प्रस्थानार्थ हस्तिनापुरमें धृतराष्ट्रको पत्र भेजा धृतराष्ट्रने पाण्डवोंके लानेकेलिये

बिदुरको भेजा द्रुपदराजाने यथोचित सत्कारकर सबको स्वस्वस्थान पहुंचाया, पाण्डवोंने हस्तिनापुरमें आकर फिर पिताके राज्यको स्मरणकिया तो दुर्योधनके दुःखी होतेही धृतराष्ट्रने इनको खाण्डववनका राज्य दिया, वह वन यद्यपि प्रथम निपट जंगल तथा उपज शून्य था, तथापि पाण्डवोंके वहां निवास करनेसे अनेक प्रजाके लोगोंनेभी प्राचीन निवासस्थल छोड २ कर वहां जाय निवास किया, इसीसे सर्वत्र वह खाण्डव वनकी भूमि उपजसे पूरित होनेलगी तथा पाण्डव आनन्दपूर्वक निवास करनेलगे ऐसेही लोक लोकान्तर देशदेशान्तरकी यात्रा करते हुए नवीन बसती देखकर श्रीनारदजी पाण्डवोंके यहाँ पधारे, पाण्डवोंने महर्षिका यथोचित स्वागत किया और अपना सब वृत्तान्त सुनाया, पूर्वोक्त माता कुन्तीकी आज्ञापित प्रतिज्ञापूर्वक यहभी कहा कि, हे महर्षिवर्य्य! माताकी आज्ञासे यह द्रौपदी हम पांचोंकी समान है, नारदजीने माताकी आज्ञा पालनमें पाण्डवोंकी प्रशंसा करी और भावी परस्पर द्वेषके अभावके लिये सुंद[1], उपसुंद इन दोनोंभाईयोंका इतिहासभी सुनाया और कहा कि इसलिये आप लोगोंको द्रौपदीके साथ परस्पर प्रतिज्ञा पूर्वक बर्ताव करना उचित है, पाण्डवोने विनयपूर्वक कहा कि, हे देव! आपही कृपा करके हमलोगोंमें ऐसी प्रतिज्ञा करदीजिये जो जिसको पालन करते हुए हमलोग भावी सुखको यथोचित लाभ करसकें, नारदने कहा हे राजकुमारो! एक वर्षमें दो मास द्वादशदिवस तुम पांचोंके भागमें आतेहैं इसलिये उचित है कि यह द्रुपदकुमारी एक वर्षमें २ मास१२ दिन तक तुम पाँचोंका यथाक्रम एकान्तसेवन करे तो मङ्गल होगा. परन्तु उसके साथ यह भी रहे कि यदि एक भाई दूसरे भाईको एकान्तमें द्रौपदीके साथ निरीक्षण भी करे तो उसको उसी अपराधके दण्डमें १२ वर्षतक

---

१ येह दोनों भाई राक्षस थे एक छलकी स्त्रीपर दोनों मोहित हुए एक कहै हम को मिले और दूसरा कहै हमको मिले, शेषमें स्त्रीसे पूछा तूं किसको चाहती है तो उसने कहा कि तुम दोनोमें जो बली होगा उसको, वेह दोनों समबल ही थे परस्पर युद्ध करके दोनों मरगये ॥

वनवास लेना होगा, सिवाय इस कठिन प्रतिज्ञाके निर्वाह होना कठिन है, इस नारदप्रोक्त प्रतिज्ञाको पाँचोंने 'ओम्' कह कर स्वीकार किया इतने में नारदजी प्रस्थान करगये, और पाण्डव औरभी आनन्दपूर्वक खाण्डववनमें निवास करने लगे, ऐसेही कुछ समय व्यतीत हुआ तो दैवात् एकदिन उक्त प्रतिज्ञाका पालन करते हुए ऐसा प्रसंग आय पडा कि एक ब्राह्मणकी गौएँ हरणकिंये डाकू लिये जाताथा कि उसने उसीकाल अर्जुनके आगे आय पुकारा अर्जुनने उस ब्राह्मणको संतोष दिया और उस समय समीप उपस्थित युधिष्ठिरके घरसे धनुषबाणले भील डाकूओंसे ब्राह्मणकी गौएँ छुडा लाया वह युधिष्ठिरके एकान्त निवासका गृह था इसीसें ब्राह्मणका कार्य्य करनेके पश्चात् युधिष्ठिरादिके निवारते हुए भी उक्त प्रतिज्ञाको स्मरणकर अर्जुनने वनवास स्वीकार किया, देशदेशान्तरका सैर करता हुआ अर्जुन साधुवेषसे द्वारका पहुँचे तो वहां सखीसमुदायके साथ गोमतीकुण्डपर स्नान अर्थ आई कृष्णभगिनी सुभद्राका अर्जुनके साथ परस्पर दृष्टिपातसे मिलाप हुआ परस्पर देखतेही दोनोंको ऐसा दीखपडा कि मानों चिरकालके वियुक्त आज दैवात् फिर मिले हैं, परस्पर मिलापआशा नदी जब दोनों ओर कूलोंसे प्रतिकूल होने लगी तो दोनोंको परस्पर अनेक उपाय भी सूझ पडने लगे, भावी अभीष्ट अर्थसिद्धिके उद्देश्यसे साधुजीने द्वारकाके बाहिर अपनी धूनी रमाई, तथा साध्वी सुभद्राने अपनी माताके पास उक्त साधुकी प्रशंसा करनी आरम्भ की, अपूर्व नवयुवक मनोहर मूर्ति राजकुमार साधुको देखकर द्वारकाके यावत लोग उसके मुखचन्द्रके चकोरसे दीख पडने लगे, प्रतिदिन प्रख्यातिका उत्तेजन होने लगा, श्रीकृष्णदेव भी सपरिवार साधुजीके दर्शनको आये परन्तु देखतेही मर्म पागये कि यह सिवाय अर्जुनके दूसरा नहीं है, भगिनीका प्रेम देखके भी श्रीकृष्ण प्रसन्न हुए सोचा कि ऐसा पति इसको दूसरा कहां मिलनेवाला है, श्रीकृष्ण बलदेवजीने साधुजीको अपने गृह भोजनार्थ निमंत्रित किया सुभद्राको भोजनक्रियामें सेवाका तथा साधुजीके साथ वार्तालापका अवसर मिला उसीमें परस्पर एकान्त मिलनेका संकतभी हुआ उक्त संकेतपर सुभद्रा उप-

स्थित हुई, तो साधुजी उस सुचरिताको साथ लेकर रफू चक्र हुए पश्चात् दिन होतेही द्वारकामें शोर होने लगा, अति अन्वेषणसे भी सुभद्राके न मिलनेसे बलदेवजी अतिरुष्ट हुए और प्रतिज्ञा करने लगे कि, मैं भगिनी अपहारक दुष्ट को विना प्राण लिये न छोडूंगा, श्रीकृष्णदेवने बहुत समझाकर संतोष किया और कहा कि, हे आर्य! यह पराया धन ही था अवश्य दूसरेके हाथ जानेवाला ही था प्रत्युत हम स्वयं देते तो क्या जाने कैसे स्थानमें जाता अब आपहीसे गया है तो क्या जाने दैवात् अच्छे स्थलमेंही गयाहो, फिर यह प्रतिज्ञा करनी कि मैं उसके प्राण लिये विना न छोडूंगा यह अच्छा नहीं है प्रत्युत यही अच्छाहै कि यदि कहीं खबर मिले तो उनका विधिपूर्वक विवाह करदिया जावे इत्यादि कृष्णवचनोंसे बलदेवजीके चित्तमें शान्ति हुई और कहा कि जो आपने सोचाहै वैसेही करना. इधर अर्जुनके १२ वर्ष पूरे हुए सुभद्राको लेकर खाण्डववनमें पहुँचा तो पश्चात् कृष्णदेवने खाण्डववन में आकर सुभद्राका अर्जुनके साथ विवाह कर दिया, कुछदिन आनन्दसे गुजरे तो खाण्डववनको अकस्मात् आग लग उठी उसमें पाण्डवों काभी कुछ नुकसान हुआ ॥ इति आदि पर्व ॥ १ ॥

परन्तु उस भयानक अग्निमें जलते हुए एक 'मय' नामक राक्षसको पाण्डवोंने दयाकरके बचाया तो वह प्रसन्न होकर सेवा पूछने लगा, पाण्डवोंने पूछा तुम क्या करसकतेहो उसने कहा मेरेको शिल्पचित्रादि क्रिया विचित्र करनी आती है तो पाण्डवोंने उसको अपने नूतन निर्मित राजभुवनके समीप एक सभामण्डप बनावने की आज्ञादी. उसने अपनी राक्षसीमायासे तथा अलौकिक कारीगरीसे सभाका काम पाण्डवोंको ऐसा बनाकर दिखलाया कि संसारभरमें उसकी तुलना का दूसरा स्थान दुर्लभ दीख पड़ने लगा. नारदजी आये पाण्डवोंका सभामण्डप देखके अति प्रसन्न हुए और इन्द्र कुबेरादिकी अनेक सभाओंका नाम तथा स्वरूपभी पाण्डवोंको सभाके प्रसंगसे सुनाने लगे, परंतु शेषमें यह कहा कि वर्तमान कालमें आपके सभामण्डपको किसीके सभासदनके सदृश नहीं कहसकते किन्तु सबसे उत्तम है

विशेषता उस सभामण्डपमें यह थी कि उसमें अनेक विभ्रमस्थल ऐसे बनेथे कि जिनको देख अपरिचित विद्वान् भी धोखा खानेसे मुक्त न रहे, जलमें स्थल, स्थलमें जल, कपाटमें भित्ति, भित्तिमें कपाट, ऊर्द्धमें निम्न, निम्नमें ऊर्द्ध इत्यादि अनेक तरहकी विपरीत बुद्धि अपरिचित पुरुष की उस सभामण्डपमें अवश्य होही जातीथी ऐसे सभासदनको देखकर नारदजी अति प्रसन्न हुए और पाण्डवोंको उनके पिता पण्डुराजाका राजसूययज्ञ करनेका संदेश महाराज हरिश्चन्द्रकी प्रतिष्ठाके उदाहरणपूर्वक सविस्तर सुनाया. युधिष्ठिरने ऋषिकी आज्ञा पाकर राजसूयकी तैय्यारी करी और इसी विषे विशेष विचार करनेके लिये श्रीकृष्णदेवको बुलाभेजा वह आये तो राजसूययज्ञका आरम्भ हुआ. अर्जुनको दिग्विजय करने भेजा वह देश-देशान्तरके अनेक राजाओंको जीतकर साथले अनेक प्रकारका द्रव्य संचय कर हस्तिनापुर पहुँचा तो पाण्डवोंने आमंत्रितकर अन्तिम आहुतिसमय सर्वसम्बन्धीगणकोभी बुलालिया, शेषमें बिचार हुआ कि अब प्रथम पूजन किसका किया जावे अर्थात् इस भरी सभाका सभापति कौन नियत किया जावे पाण्डवोंने प्रथम कई एक वृद्धोंसे पूछा तो उन्होंने कहा कि आप अपने गुरु द्रोणसे पूछिये युधिष्ठिरने द्रोणसे पूछा तो उसने कहा कि यह आप लोगोंके जातीय वीषयका बिचार है मेरेको इसका पूरा मर्म मालूम नहींहै आप भीष्मजीसे पूछिये युधिष्ठिरने भीष्मको पूछा तो उसने परम प्रेम उत्साह तथा भक्ति भरी प्यारी गिरासे कहा कि ऐसे मंगलके समय उपस्थित मङ्गलमूर्ति श्रीकृष्णदेवको छोड़कर और कोई पूजनार्ह होसकता है ? भीष्मकी ऐसी एक पक्षपातिनी वाणीको सुनकर कई एक दुर्जन दग्धप्राय होगये. और श्रीकृष्णके पितृश्वसा (फूफी) के बेटे शिशुपालने भीष्मपितामह को ।

अविलिप्तस्य मूर्खस्य केशवं स्तोतुमिच्छतः ।
कथं भीष्म न ते जिह्वा शतधेयं विदीर्य्यते ॥ ५ ॥
यत्र कुत्सा प्रयोक्तव्या भीष्म बालतरैर्नरैः ॥
तमिमं ज्ञानवृद्धः सन्गोपं संस्तोतुमिच्छसि ॥ ६ ॥

सभाप० अ० ४१ ॥

इत्यादि अनेक दुर्वचन कहे अर्थात् शिशुपालने भीष्मको कहा कि, हे भीष्म ! कृष्णका मिथ्या स्तवन करनेकी इच्छा करनेवाले तुम निर्लज्ज मूर्खकी जिह्वा (जबान) फटके सौ टुकडे क्यों नहीं होजाती ॥ ५ ॥

हे भीष्म ! जिस निषिद्ध गोपकुलमें उत्पन्नहुए कृष्णकी बालक भी निन्दा करसकते हैं ऐसे उस तुच्छ गोपका तू ज्ञानवृद्धहोकर स्तवन करने की इच्छा करता है ॥ ६ ॥

इत्यादि कुवाक्योंका श्रवणकर श्रीकृष्णदेव अतिक्रुद्ध हुए और शिशुपाल को उसीसमय अपने क्षात्रपनेका परिचय दिखलाया अर्थात् सुदर्शनसे उसका शिर उतारके किनारे किया. उसकालमें ऐसी घटनाको कई पुरुषोंने अनुचित समझा और कई कहनेलगे कि पुरुष कहांतक सहनशील हो सकताहै, ऐसेही इस दुष्टने श्रीकृष्णका एकसौ बेर आगे भी अपराध किया था शेषमें न वारण होनेसे इस दशाको पहुँचा, अन्तमें श्रीकृष्णदेव का पूजनकर पाण्डवोंने यज्ञ समाप्त किया तो कृष्णदेव अपने ग्राम द्वारकाको प्रस्थान करगये और भी राजा लोगोंको यथायोग्य सन्मानकर पाण्डवोंने बिदा किया परन्तु दुर्योधन सभा देखने के लालचसे कुछ दिन वहां रहा एकदिन सभास्थल देखते हुए दुर्योधन को विभ्रम हुआ तो जलाशयमें गिरपड़ा द्रौपदीने उसको देखकर हँसादिया और धीरेसे यह भी कहा कि दुर्योधनभी अपने पितासे कम नहीं है, द्रौपदीके इस वचन को सुनकर दुर्योधन दग्धप्राय होगया और क्रुद्ध होकर अपने गृहमें चलाआया, धृतराष्ट्रके साथ मंत्रकर किसी एक विशेष उत्साह के मिससे पाण्डवोंको अपने घर बुलाया और प्रसंगसे द्यूतखेलनार्थ समुत्साहनादी, समबल सजातीय भाईके हेकारनेसे द्यूतादि अनुचित कर्ममें भी प्रवृत्त होना पाण्डवोंने अनुचित न समझा अपने सहोदर शकुनि को अग्रणीय करके दुर्योधनने युधिष्ठिरके साथ खेल प्रारम्भ किया, शकुनिका द्यूतकर्ममें पूर्ण अभ्यासथा थोडेही कालमें उसने पाण्डवोंका द्रौपदी समेत सर्वस्व जीतलिया, उसी समय दुर्योधनने अपने सहोदर दुःशासनको कहा कि इस काल इस द्रौपदीपर हमारा

स्वत्व है, हे भाई ! उठो सबके साम्हने इस दुर्भगाकी भगाको प्रकाशित करो माँगको बखेर ड़ारो तनियां को तोरतार जामा तनुते निकारो ।

छन्द ।

भूषण अलंकार अलिका निकार याकी ।
कबरीको खैंच खैंच शासना को दीजिये ॥
अम्बर निकारके दिगम्बरसी करो याहि ।
कियो निज पावे सब आगे नग्न कीजिये ॥
नीचनीने घरमें बुलाय मोसों हास्य कियो ।
हाय २ बदलो निबेर आज लीजिये ॥
लाजविना राँड यह साण्ढनसों भिन्यो चहै ।
यौवनमद सगरो निकार ह्याँही पीजिये ॥ १ ॥

दुर्योधनकी ऐसी क्रोधमयी वाणीको सुनकर दुःशासन उसीकाल उठा और पाण्डवोंके पश्चात् निविष्ट द्रौपदी को कबरीसे पकडकर अनेकधा खैंच खैंच बेइजती करने लगा, पाण्डव देखही रहेहैं परन्तु प्रतिज्ञाके वशवर्ति हुए कुछ कर नहीं सकते अनेक तरहकी लथेड पथेड कर शेषमें दुःशासनने द्रौपदीके वस्त्र उतारने प्रारम्भ किये तो अरक्षित हुई द्रौपदी करुणार्तस्वरसे हाय-२ कर श्रीकृष्णदेवको स्मरण करने लगी ।

यथा ।

सुनो फरियाद मेरी जी गोसाईं ।
निमाणी जालमो सें आ छुड़ाई ॥
न कछु अपराध मेरा कसम तेरी ।
अचानक यमोंने पापिनीसी घेरी ॥ १ ॥
पुकारों कौन जो मुझको छुड़ावे ।
विना ते और कोई नजरी न आवे ॥
तुम्हीं इक पाण्डवोंके पक्षपाती ।
निहारो नैक जी अब जान जाती ॥ २ ॥

यह गज औ ग्राह सा झगरा नहीं है ।
हिरण्याक्ष प्रह्लाद सा रगरा नहीं है ॥
अनाथा सैकडों ग्राहों ग्रसी है ।
हजारों राक्षसोंमें आफँसी है ॥ ३ ॥
करो अब देर ना चेतो दयालो ।
अपनीकरुणार्ति हारकता सँभालो ॥
हुए बिनप्राणसे पाण्डव विचारे ।
हरे छल द्यूतमें पाहि मुरारे ॥ ४ ॥
हे सखे श्रीकृष्ण गोविन्द वासुदेवा ।
विना तेरे न कोई सार लेवा ॥
यह अन्तिम दाद मेरी जी दयामै ।
बचावो किंकरी करके खलन खै ॥ ५ ॥
अहो मैं मन्दभागिन पैद होई ।
सुकीर्ति श्वशुर पितु की भी बिगोई ॥
सुनेगो द्रुपद मुझको क्या कहेगो ।
दिवि श्वशुराभी सुन आंसू बहेगो ॥ ६ ॥
अहो ! पाण्डव बिचारे क्या करेंगे ।
इसी इक लाज जग जीते भरेंगे ॥
दियो मो जन्म क्यों भोरे विधाता ।
न मारी मातने हुई खेद दाता ॥ ७ ॥
हुई मैं बन्धुगणमें क्लेश हेतु ।
बनो श्रीकृष्ण ! दुःखाब्धिसु सेतु ॥
लँघावो पार जी देरी न कीजै ।
सुवेला यशो निज विस्तार लीजै ॥ ८ ॥

दोहा ।

परब्रह्म परमातमा, योगेश्वर यदुराज ॥
मैं शरणागत रावरी, राखहु मेरी लाज ॥ १ ॥

इत्यादि अनेक दीन वचनोंसे करीहुई द्रौपदीकी पुकार योगेश्वर श्रीकृष्णदेवने द्वारकामें बैठेही शीघ्र श्रवणकरी और उसी समय अपनी योगमाया के प्रभावसे द्रौपदीके शरीरपर इतने असंख्यात वस्त्र करदिये कि दुःशासनादि अनेकोंने उतार २ कर अन्त पानेके लिये साहस किया परन्तु कुछभी न बन पड़ा शेषमें शरमिन्दे हो थककर बैठगये। अन्तमें दुर्योधनने पाण्डवों को वनवासकी आज्ञा दी और द्रौपदीको अपने अन्तः पुरमें दास्यभावसे रहनेको कहा, ऐसी आज्ञाको सुनतेही पाण्डव उठकर चलदिये जातीबेर धृतराष्ट्रको मिलनेगये तो द्रौपदीसे धृतराष्ट्रने कहा कि, हे द्रौपदी! मैं तेरे शील से प्रसन्नहोकर कहता हूं कि, मेरेसे इस समय जो तेरी इच्छाहो तीन वर मांगले, द्रौपदीने कहा कि, पिताजी यदि आप प्रसन्न हैं तो आप यही आज्ञा देवेंकि, पाण्डवों को वनवास न दियाजाय (१) दूजे मैं पाण्डवोंसे जुदी न करीजाऊं (२) तीजे अंतःपुरमें मेरेसे जूठे बर्तन न मलवायेजायँ (३) धृतराष्ट्रने तीनों बातोंको स्वीकारकिया इस विपरीत पितृआज्ञाको सुनकर दुर्योधनके चित्तमें बड़ा खेद हुआ और पाण्डवोंको फिर दृढ प्रतिज्ञापूर्वक द्यूतखेलनेके लिये हँकारा पाण्डवोंने फिर स्वीकार किया पूर्ववत् फिर हारे तो प्रतिज्ञापूर्वक चौदहवर्षके वनवासको गये ॥

इति सभापर्व ॥ २ ॥

पाण्डवों के वनगमनसमय अनेक पौरजन तथा अनेक ब्राह्मण भी पीछेचले सहस्रों साधु ब्राह्मणोंने तथा पौरजनोंने पाण्डवोंका पीछा किया तो युधिष्ठिर को अति चिन्ताहुई कि जंगलमें हम इतने जनसमुदायका कैसे निर्वाह करसकेंगे इतनेहीमें अकस्मात् धौम्य ऋषिने आय दर्शनदिया तो युधिष्ठिरने अपनी चिन्ताका कारण बतलाया ऋषिने सूर्य्यस्तवनकी आज्ञादी युधिष्ठिरने सूर्य्यस्तवन किया तो सूर्य्यदेवने एक ऐसा स्थाली (बटुआ) प्रदानकिया कि जिसमें बनाहुआ खाना सहस्रों पुरुषोंके भोजनकरनेसे भी खुटे कभी नहीं प्रतिदिन उसीमें अनेक पदार्थ बनाकर द्रौपदी सबको तृप्त करने लगी, वनमें पाण्डवोंको समय २ पर बिदुर व्यास तथा श्रीकृष्णदेव मिलनेको जातेरहे जंगलमें पाण्डवोंने कई एक राक्षस भी मारे अ

की प्रसन्नताकेलिये तप किया शंकर प्रसन्न होकर किरातरूप धरकर आये अर्जुनसे शंकरका घोर युद्ध हुआ शेषमें अर्जुनकी शूरता पर प्रसन्न होकर महाराजने पाशुपत अस्त्र अर्जुनको प्रदान किया एवं इन्द्रने रथ भेजकर अर्जुनको स्वर्गमें बुलवाया अति सन्मान किया और अनेकप्रकारके शस्त्र अस्त्र प्रदान किये, वहां ही उर्वशीनामक अप्सरा अर्जुनको देखकर मोहित हुई और एकान्तमें मिलनेकी प्रार्थना की तो अर्जुनने माता कहकर उसकी प्रार्थना अस्वीकार की उर्वशीने दुःखीहोकर षंढ होनेका अर्जुनको शापदिया. पीछे युधिष्ठिरके पास बृहदश्व नामक ऋषि आया, युधिष्ठिरने उसे पूछा कि मेरीतरह आगे भी कोई राजा वनमें दुःखी हुआ है या नहीं तो ऋषिने पाण्डवोंको पूर्वोक्त नलोपाख्यान सुनाया और द्यूतविद्या भी सिखलाई, ऋषिसे नलोपाख्यान सुनकर तथा द्यूतविद्या सीखकर पाण्डव अति संतुष्टहुए, एवं वनमें फिरते भीमने अनेक राक्षसोंके प्राणलिये एक दिन शिकारको गया तो मार्गमें भीमको एक सर्प मिला वह अगस्त्यमुनिके शापसे राजा नहुष ही सर्प रूप था, उसने भीमको पकड़कर खानेको चाहा तो शीघ्रही युधिष्ठिर पहुँचे और कहने लगे कि, हे सर्प! मैं आपको खानेको देताहूं आप मेरे भाईको छोड़दीजिये. सर्पने पूछा तू कौन है (यु०) मेरा नाम पाण्डव युधिष्ठिर है (सर्प) मेरे प्रश्नोंका उत्तर दो तो मैं आपके भाईको छोडूं (यु०) आपके कौन प्रश्न हैं।

(सर्प) ब्राह्मणः को भवेद्राजन्वेद्यं किश्च युधिष्ठिर ॥ २० ॥

हे युधिष्ठिर ! ब्राह्मण किसको कहते हैं ? और इस पुरुषको जानने योग्य क्या है ?।

(युधि०) सत्यं दानं क्षमा शीलमानृशंस्यं तपो घृणा ।
दृश्यन्ते यत्र नागेन्द्र स ब्राह्मण इति स्मृतः ॥ २१ ॥

हे नागेन्द्र ! जिस पुरुषमें सत्य, दान, क्षमा, शील परद्रोहाभाव, तप तथा लज्जा येह सात गुण हैं. उसको धर्मशास्त्रमें ब्राह्मण कहा है ॥ २१ ॥

(सर्प) शूद्रेष्वपि च सत्यं च दानमक्रोध एव च ॥
अनृशंस्यमहिंसा च घृणा चैव युधिष्ठिर ॥ २३ ॥

हे युधिष्ठिर ! सत्य, दान, क्षमा, शील, परद्रोहाभाव, तप, लज्जा इत्यादि अनेक सद्गुण शूद्रोंमें भी देखनेमें आतेहैं ॥ २३ ॥

(युधि०) शूद्रे तु यद्भवेल्लक्ष्म द्विजे तच्च न विद्यते ।
न वै शूद्रो भवेच्छूद्रो ब्राह्मणो नच ब्राह्मणः ॥ २५ ॥
यत्रैतल्लक्ष्यते सर्प वृत्तं स ब्राह्मणः स्मृतः ।
यत्रैतन्न भवेत्सर्प तं शूद्रमिति निर्दिशेत् ॥ २६ ॥

हे सर्प ! पूर्वोक्त सत्य दानादि धर्म यदि शूद्रमें हों और ब्राह्मणमें न हों तो उस शूद्रको शूद्र तथा उस ब्राह्मण को ब्राह्मण नहीं समझना चाहिये अर्थात् गुणकर्मानुसार व्यवहार करना चाहिये ॥ २५ ॥ हे सर्प ! पूर्वोक्त शुभ लक्षण जिसमें हों वह ब्राह्मण है तथा पूर्वोक्त शुभगुण रहित पुरुष शूद्र है ऐसाही धर्मशास्त्रोंमें कहा है ॥ २६ ॥

(सर्प) यदि ते वृत्ततो राजन् ब्राह्मणः प्रसमीक्षितः ।
वृथा जातिस्तदाऽऽयुष्मन्कृतिर्यावन्न विद्यते ॥ ३० ॥

हे दीर्घआयुवाले! राजन् युधिष्ठिर ! यदि तैने आचरणहीको ब्राह्मणपनेमें विशेष कारण माना है तो जबतक आचरण प्रचलित नहीं हैं तब तक ब्राह्मणत्वादि जाति तो वृथाही प्रतीत होती है ॥ ३० ॥

(युधि०) जातिरत्र महासर्प मनुष्यत्वे महामते ।
संस्कारात्सर्ववर्णानां दुष्परीक्षेति मे मतिः ॥ ३१ ॥
सर्वे सर्वास्वपत्यानि जनयन्ति सदा नराः ।
वाङ्मैथुनमथो जन्म मरणञ्च समं नृणाम् ॥ ३२ ॥
इदमार्षप्रमाणञ्च ये यजामह इत्यपि ।
तस्माच्छीलं प्रधानेष्टं विदुर्ये तत्त्वदर्शिनः ॥ ३३ ॥

वनप० अ० १८१ ॥

हे विशालमतिवाले सर्पराज ! जाति तो इस प्रकृतमें एक मनुष्यत्व ही बनसकतीहै उसकी व्याप्य ब्राह्मणत्व क्षत्रियत्वादि जातियां नहीं बनसकती क्योंकि दर्शनकारोंने हर एक जातिके व्यंजक धर्म भिन्न २ माने हैं जैसे-

गोत्व जातिका व्यंजक तथा सम नियत धर्म शृंग शास्नादिमत्व है अथवा मनुष्यत्व जातिका जैसे करचरणादिमत्व धर्म है वैसे ब्राह्मणत्वादिका व्यंजक सम नियत कोई नहीं है इसलिये संस्कारमात्रसे यावत् वर्णोंका परीक्षण अर्थात् निर्णय करना कठिन है ॥ ३१ ॥ सभी पुरुष कोईभी स्त्री मिले उसीमें सन्तान पैदा करलेते हैं एवं बातचीत करना, भोग करना, जन्म या मरण इत्यादि भी सबके एकही सरीखे हैं ॥ ३२ ॥ यह वार्ता सभी ऋषिवचनोंसे प्रमाणित है और (ये यजामहे) इत्यादि श्रुतिवचन भी जातिवर्णके अनिश्चयहीको सूचन करते हैं अर्थात् (ये वयं यजामहे) इस कथनसे स्वात्मनिश्चयाभावपूर्वक यजन प्रतीत होताहै अन्यथा यदि पूरा निश्चय हो तो ब्राह्मणा वयं (यजामहे) ऐसा श्रुति उपदेश करती परन्तु श्रुतिने वर्णाश्रमनिश्चयाभावपूर्वक सामान्यरीतिसे यजन कहा है । इसलिये तत्त्ववेत्ता लोग कल्पित जातिअभिमानको दूरकर केवल शीलही को प्रधान समझते हैं ॥ ३३ ॥

इत्यादि पवित्र तथा सच्चे भावगर्भित युधिष्ठिरके वचन सुन सर्प प्रसन्न हुआ भीमको छोड़दिया तो आगे चलते २ पाण्डव द्वैतवनमें पहुँचे वहां जंगलमें दुर्योधनके पूर्वजोंके बनाये हुए गोरक्षाके लिये अनेक घोष (ग्वालग्राम) थे वहां समीप ही पाण्डवोंने भी कुछदिन निवास किया तो उधर दुर्योधनको भी कुछ खबर मिली तो उसने घोषयात्राके मिषसे पाण्डवों की वनवास दशा देखनी चाही, बड़े ठाठके समाजके साथ अनेक सुन्दर स्त्रियों को लिये उस वनमें आया तो मार्गमें चित्रसेन नामक गन्धर्वने उसकी स्त्रीयां खोस लीं और उसको बाँधलिया इस वार्ताकी पाण्डवोंको खबरहुई तो युधिष्ठिरने उसके छुड़ानेके लिये अर्जुनको भेजा तो अर्जुनका उस गन्धर्वसे घोर युद्ध हुआ शेषमें गन्धर्वने कहा, हे अर्जुन ! तू क्यों नाहक दूसरेके बीचमें पड़ा है अर्जुनने कहा यह दुर्योधन हमारा भाई है यदि और कोई होता तो मैं आपके सामने कदापि शस्त्र न उठाता, गन्धर्वने कहा

हमको इन्द्रने भेजा है, अर्जुनने कहा तौ भी क्या हुआ आपने मेरी तर-
फसे उनसे क्षमा माँगनी. इस विचित्र कार्य्यको देख दुर्योधन बड़ा शर्मिन्दा
हुआ और चुपचाप घरको चला आया, प्रतिदिन अनेकतरहके विचार कर
शोकाग्निमें जलने लगा तो एक दिन एक दानवने उसकी प्रसन्नताके लिये
झूंठीही आकाशवाणी करी कि, हे दुर्योधन ! तू भय मतकर तेरा विजय होगा
और कर्ण अर्जुनको रणमें मारेगा, इस मिथ्या वचनको सुनकर दुर्योधनको
फिर धैर्य्य हुआ और पाण्डवोंके नाशके अनेक उपाय सोचने लगा, उधर
वनमें पाण्डवोंके पास व्यासजीने आकर उनको अनेकप्रकारसे शान्ति दी,
कणभक्ष मुद्गल ऋषिकी कथा सुनाई कहा कि द्वादशीके दिन दुर्वासा उस-
के घर अतिथि हुआ तो उसने जो अपने खानेको कई दिन कण बीनकर
बनाया था वह दुर्वासा सभी खाय गया, ऋषिने प्रसन्न होकर खिला
दिया, फिर दुर्वासा कई हजार ऋषिमण्डलको साथ लेकर दुर्यो-
धनके घर गया तो उसने खूब उसकी सेवा करी इतना कह
व्यासजी प्रस्थान करगये, उधर दुर्योधन पर प्रसन्न होकर दुर्वा-
साजीने वर माँगनेको कहा तो उसने कहा मेरी मंनसा है कि आप इसी
ठाठसे एकदिन वनमें पाण्डवोंके भी अतिथि होवें दुर्वासाने तथास्तु कहकर
वनमें पाण्डवों की और प्रस्थान किया वहांभी द्वादशीही को पहुँचे उधर
पाण्डवोंका भोजन होचुकाथा, ऋषिको असमय आने का पाण्डवों के चित्तमें
विचार हुआ, ऋषिगण स्नान करनेगये तो पश्चात् पाण्डवोंने श्रीकृष्णदेव
का स्मरण किया उन्होंने शीघ्र आनकर कारण पूछा, पाण्डवोंने ऋषिका
आगमन बतलाया, श्रीकृष्णदेव ने पाण्डवोंकी स्थालीमेंसे एक शिष्ट शाकका
पत्ता लेकर मुखमें डाल यावत् विश्वको तृप्तकिया पश्चात् स्नानकरके ऋषि-
गण आये तो पाण्डवोंने भोजनके लिये प्रार्थना की तो सबने कहा कि,
आज तो स्वयंही ऐसी तृप्तिहुई है कि एक मास भर फिर अन्नपर रुचि
होनी कठिनहै. ऐसेही दुर्योधनकी प्रेरणासे जयद्रथने द्रौपदीको चुरालिया
पाण्डवों को खबर हुई, अर्जुनने मार्गहीमें उसके पीछे जाकर द्रौपदी को

खोसलिया और उसको खूब मारा, उसने पाण्डवोंके जीतनेके लिये शंकरका आराधन किया शंकर प्रसन्नहुए, उसने वर माँगा, तो शंकरने कहा कि अर्जुन के सिवाय तू सबको जीतसकेगा क्योंकि अर्जुन हमारे से पाशुपत अस्त्र लेचुकाहै एवं भीष्मपितामहने ब्रह्मा का आराधन कर उससे वर माँगा।

परमापद्गतस्यापि नाधर्मे मे मतिर्भवेत्।

अशिक्षितं च भगवन् ब्रह्मास्त्रं प्रतिभातु मे ॥

वनप० ३० अ० २७५।

परम आपदा में प्राप्त होनेसे भी मेरी बुद्धि अधर्मपरायण कभी न होवे और हे भगवन्! अशिक्षित आचरण करने से मेरेको आपका ब्रह्मास्त्र दिखाई देतारहै, उधर पाण्डवोंके पास मार्कण्डेयऋषि आये पाण्डवोंको अनेक तरहके धर्मके उपदेश किये तथा रामायणभी सुनाया, पश्चात् एक दिन धर्मराजके सिवाय धर्मरूपी यक्षने एक जलाशय पर सबको मूर्च्छित करदिया. धर्मराजने कारण पूछा तो उसने अपने प्रश्नोंका उत्तर माँगा, धर्मने उत्तर दिये तो यक्ष प्रसन्नहुआ और सभीको सावधानकर युधिष्ठिरको कईएक वर प्रदानभी किये ऐसेही यक्षका तिरोधान हुआ तो पाण्डव आगे चलेगये ऐसे ऐसे अनेक विचित्र चरित्रोंसे पाण्डवोंके १२ वर्षभी समाप्तहुए ॥

इति वनप० ॥ ३ ॥

शेष एक वर्ष एकान्तवासार्थ समस्त ब्राह्मण ऋषिमण्डल को प्रार्थना पूर्वक विसर्जन कर विराटराजाके नगरसमीप जाकर विचार करने लगे कि, क्या कहकर माहाराजा विराटसे मुलाकात करनी चाहिये, भीमने कहा कि, मैं तो अपने को महाराजा युधिष्ठिरका सूपकार (रसोईया) कहूंगा, अर्जुन बोला कि, मैं अपनेको महाराज युधिष्ठिरके अंतःपुरमें रहनेवाला बृहन्नला नामक हीजड़ा बताऊंगा, नकुलने कहा कि मैं अपनेको महाराजा युधिष्ठिरकी अश्वशालाका वैद्य कहूंगा, सहदेवने कहा कि, मैं अपनेको महाराजाका गोपालक कहूंगा, द्रौपदी ने कहा कि, मैं अपनेको

महाराजाके अंतःपुरकी दासी बताऊंगी इत्यादि विचारकालमें पाण्डवोंके पास अकस्मात् धौम्य नामक ऋषि आय प्राप्तहुए पाण्डवोंके पूछनेसे ऋषिने उनके विराट राजाके नगरमें रहने योग्य उपदेश किया, पश्चात् पाण्डवोंने अपने शस्त्रोंको एक पुरानेसे वृक्षपर छिपाकर रखदिया और उसके समीपही एक पुरुषकी लाशपड़ी थी उसको उठाकर उस वृक्षके साथ लटकाय दिया, विराटभुवनमें आपसमें व्यवहारके लिये युधिष्ठिरने यथाक्रम अपने जय, जयन्त, विजय, जयत्सेन तथा जय-द्वल येह पाँचों नाम रखलिये और पुरमें प्रवेश:किया सबसे पहले देवी भग-वतीका स्तवनकर युधिष्ठिरने प्रवेश किया, विराटसे मेलहुआ उसने पूछा तो महाराजा युधिष्ठिरने अपनेको युधिष्ठिरका अक्षप्रयोक्ता कंक नामक ब्राह्मण कहा, उसके पीछे सूपकार कहकर भीमने प्रवेशकिया, पश्चात् दासी कहकर द्रौपदीने प्रवेश किया राजभार्य्या सुदेष्णा की सेवामें नियत हुई, वहांभी द्रौपदीने यह प्रतिज्ञा की कि, मैं जूंठा भोजन नहीं करूंगी(१)जूंठेपात्र मलने विना यावत् सेवा करूंगी(२)परपुरुष का एकान्तसेवन नहीं करूंगी (३) अन्यथा जो मेरेको चाहेगा मेरे पति गन्धर्व उसको मारडालेंगे, सुदेष्णाने सभी स्वीकार किया पीछे सहदेवका प्रवेश हुआ, उसके पीछे अर्जुनका प्रवेशहुआ तत्पश्चात् नकुल का प्रवेशहुआ सभीको महाराजा विराटने तत्तत्कार्य्ये पर नियत किया, ऐसेही एक दिन कईएक मल्ल आये विराटने उनके साथ भीमकी कुश्ती कराई, भीमने उसमें उनके उस्ताद जीमूतनामक मल्लको मारडाला, विराट बडा प्रसन्न हुआ ऐसेही विराटराजाके गृहमें पाण्डवोंके १० मास गुजर चुके तो एक दिन विराटके साले सेनापति कीचकने अन्तःपुरमें द्रौपदीको देखा तो देखताही मोहितहुआ, अपनी भगिनी द्वारा द्रौपदी को अपने पास बुलाभेजा, सुदेष्णाकी आज्ञा मानकर द्रौपदी गई उसने एकान्तमें द्रौपदीसे प्रार्थना की परन्तु साध्वी द्रौपदीने उसकी तरफ दृष्टि भी न करी, उस दिन द्रौपदी जैसे तैसे चलीआई परन्तु कीचक बड़ा दुःखी हुआ, कुछ दिनों के बाद किसी एक उत्सवके दिन अपनी भगिनी को कहकर

द्रौपदी के हाथ कीचक ने मदिरा मँगवाई, सुदेष्णाकी आज्ञा का न उल्लंघनकर द्रौपदी अति दुःखी होकर गई. कीचक देखके प्रसन्नहुआ और प्रेमपूरित गद्गद गिरा तथा कामातुर होय द्रौपदीको बलात् पकड़ने लगा, वह बिचारी भयभीत हुई भागी तो कीचक निर्लज्ज होकर उसके पीछे दौडा दैवात् मार्गमें मदान्धतासे गिरपड़ा, द्रौपदी राजा विराटकी सभामें जाकर रोनेलगी, वृत्तान्त पूछनेसे द्रौपदीने सब सुनाया परन्तु विराटने अपने साले के मुलाहजेसे तथा द्रौपदीको दासी जानकर कुछ खयाल न किया, भीमभी उसकालमें उस सभाहीमें था उसने कीचकको उसी कालमें मारदेनेकी इच्छा करी परन्तु युधिष्ठिरने कुछ दिन शेष जानकर उसको रोकदिया। पश्चात् एकान्तमें भीमके पास द्रौपदी अपना दुःख रोई तो भीमने कहा कि, हे सुन्दरि! जैसे तू कहै वैसेही करूं, द्रौपदीने कहा कि इस दुष्टका विनाश किसीतरहसे अवश्य करना चाहिये सो उसमें सहल उपाय यह है कि वह फिर मेरेको किसी न किसी तरहसे अपने पास बुलावेगा तो मैं उससे यह कहूंगी कि, आप मेरे मिलनेके लिये कोई ग्रामसे बाहर मकान नियत कीजिये वह मानलेगा तो रूपान्तर से मेरी जगह आपने जाकर उसको मारडालना, भीमने द्रौपदीके इस मन्त्रको स्वीकार किया कालान्तरमें उसने द्रौपदीको किसी मिससे फिर बुलाया तो उसने कीचकके बोल चालमें वही जवाब दिया जो कि विचार रक्खा था, द्रौपदीका ऐसा कथन सुनके कीचक अति प्रसन्नहुआ और ग्रामके बाहर स्थान नियतकर सायंकाल उन्मत्त होकर द्रौपदीको बुलाभेजा, उसकी जगह स्त्रीका वेष बनाकर भीम पहुंचा तो उन्मत्त तथा कामातुर कीचक उसको द्रौपदी आई जानकर आगे उठ प्रसन्नहोय गले लपकने लगा, भीमने उसी वक्त उसके मुखपर एक लप्पड़ मारा तो थोड़ा काल उसकी होश उड़गई फिर सचेतहोकर भीमके सम्मुख युद्ध करने लगा, एक प्रहर पर्य्यन्त दोनोंका मल्लयुद्ध हुआ शेषमें भीमने उसको नीचे गिराकर लातोंसे मार डाला और उसको वहां फैंककर अपने स्थानपर चलाआया, प्रातः-

काल कीचकके भाईयों को तथा राजाको खबरहुई तो शोकातुर होकर उसकी दाहक्रिया करनेको लेगये. उसके मरणका कारण उनको विशेषरूपसे तो कुछ न प्रतीतहुआ परन्तु सामान्यरूपसे यह समझलिया कि द्रौपदीके कारण हमारे भाई के प्राण गये हैं इसलिये इसको इसके साथही जलादेना चाहिये, उनके ऐसे दुष्ट विचारोंकी भीमको भी खबर लगी वह भी साथ गया जब उन सबने द्रौपदीको पकड़कर कीचककी चित्तामें फैंकना चाहा तो भीमने उन सबको पकड २ कर चितामें फैंकना आरम्भाकिया भीमसे भयभीत होकर सभी जलती चिताको छोड़ इधर उधर भागनेलगे परन्तु बीर भीमने उसके सभी भाई जीतेही घेर घेर कर चितामें फैंक जलाडारे और जिनको चुगल समझा उनके शिरपर धप्पेमार उनकी जीभ काटड़ाली साथके लोग इस तमाशेको देखकर चकित होगये और कई यहभी कहने लगे कि भाई कुछ अनुचित नहीं हुआ 'जैसी करनी वैसा फल' शेषमें दाहक्रिया करके घरमें आये तो भीमने विराटसे कहा कि, कीचकके साथ उसके भाईयोंका बड़ाही प्रेमथा देखिये हमने बहुतही वारण किये परन्तु वे विना उसके एकदिन भी पीछे जीते न रहे किन्तु जीतेही उसके साथही जलमरे, विराटने कहा स्नेह तो उनका परस्पर अवश्यही था. एवं डरके मारे भीमका नाम भी किसीने न लिया, द्रौपदी इस घटनाको देखकर अति प्रसन्न हुई उधर दुर्योधनने पाण्डवोंके खोज निकालनेके लिये देशदेशान्तरमें अनेक दूत भेजे और सुशर्म्माको कुछ सेना देकर विराटनगरमें गोहरणार्थ भेजा विराटके नगरके चारों दिशामें दो २ कोसपर गोशाला बनीथीं तो प्रथम सुशर्म्माने दक्षिणदिशाकी गौएँ चुराई, विराटको खबरहुई उसने चढ़ाई करी दोनोंका खूब युद्ध हुआ शेषमें विराटने सुशर्म्माको बाँधलिया. युधिष्ठिरके कहनेसे भीमने छोड़दिया राजा विराट पाण्डवोंपर बड़ा प्रसन्न हुआ, फिर दुर्योधनके पुरुषोंने राजा विराटकी उत्तरदिशाकी गौओंका हरणकिया गोपलोगोंने आकर पुकारकरी उनकी पुकारको अन्तःपुरमें राजा विराटके पुत्र उत्तरने भी सुना वह स्त्रीमण्डलमें बैठा बड़ी ऐंठसे बोला

कि, आज मेरे पास यदि कोई सारथी कामका होता तो एक गौभी न जाने-पाती, वहां बैठी द्रौपदीने धीरेसे कहा कि, सारथीकी त्रुटिसे तो आप देरी न करें, यहां बृहन्नला (अर्जुन) अच्छा रथ चलाने जानता है उत्तरने कहा अरी बावरी वहां युद्धमें मरदोंका काम है कि हिजड़ोंका ? क्या मैं इसको साथ लेजाकर लोकमें अपनी हँसाई कराऊं, अर्जुनने कहा कि युद्धकी तरफसे चाहो आपकी हाँसी हो या विजयप्रयुक्त प्रशंसा हो इसकी प्रतिज्ञा मैं नहीं करता परन्तु रथचलानेके विषयमें यदि आपको हानि होय तो जो आपकी इच्छामें आवे मेरे को दण्डदेना, उत्तरने अर्जुनकी प्रतिज्ञा स्वीकार करी और चढ़ाई करनेकी सेनाको आज्ञादी, मार्गहीमें जाते गोहरण करनेवाले जनसमुदायको ललकारा उनमें कर्ण भी था वह अर्जुनको देखकर भयभीत हुआ तथा अपने साथके लोगों पास कुछ अर्जुनकी प्रशंसाभी करने-लगा परन्तु उत्तर गोहारकसेनाके समुदायको देखकर बहुतही कातरहुआ अर्जुनको कहने लगा कि रथको लौटाकर घर लेचलो यह बहुत हैं इनका जीता जाना कठिन है, अर्जुनने बहुत धैर्य्य दिया परन्तु उसको कुछ न हुआ, शेषमें कहनेलगा कि अरे हीजड़े ! क्या तू मेरे यहांपर प्राण लिया चाहताहै यह कहताही रथसे उतर कर भागने लगा, अर्जुनने पकड़ कर उसके बाहु बाँधकर रथपर फैंकदिया और पूर्वोक्त वृक्षसे अपने युद्धके शस्त्रास्त्र लेकर दुर्योधनकी सेनाके साथ युद्धारम्भकिया अनेक शूरवीर परस्पर मारेगये शेषमें अर्जुनने विराटकी सभी गौएँ छुड़ाली, दुर्योधनादिने अर्जुनको पहचानलिया इसी गोहरणके युद्धमें अर्जुनने कर्ण, कृपाचार्य्य, द्रोणाचार्य्य, भीष्म, दुःशासनादि अनेकोंको पीछे भगाकर लज्जित किया विजय प्राप्तकर अर्जुन राजकुमार उत्तरको प्रसन्नतापूर्वक घर में लाया और उत्तरको अर्जुनने यह कहदिया कि तुमने युद्धके विषयमें मेरी बाबत कुछ भी किसीको मत सूचन करना उत्तरने वैसेही किया, विराटने पुत्रके विजयका अत्यन्त उत्साह किया तथा पुत्रका बड़ा सन्मानकिया, उसी समय युधिष्ठिरने बृहन्नलाकी प्रशंसा करी कहा कि, उतरका विजय केवल बृहन्नलाके संबन्धसे

हुआहै, विराट इस वार्ताको सुनकर बहुत क्रुद्ध हुआ और युधिष्ठिरको अपने पुत्रका निन्दक जानकर क्रोधसे उसके मुखपर एक पांसेका गोट मारा वह युधिष्ठिर के नाकपर लगा लोहू चूनेलगा परन्तु वह रुधिर युधिष्ठिरने भूमिपर न गिरने दिया किन्तु सभी अपने वस्त्रपर लेलिया अन्यथा महान् *अनर्थ होजाता क्योंकि अर्जुन की यह प्रतिज्ञा थी कि जो युधिष्ठिरके रुधिरको* भूमिपर गेरेगा मैं उसके उसी समय प्राण लूंगा। अर्जुन उस समय सभामें था भी नहीं पीछेसे आयाथा परन्तु युधिष्ठिरने नेत्रक्रियासे उसका वारण किया, ऐसा होनेसे उत्तरको अर्जुनकी शिक्षा भूलगई और उसी समय सभामें बोल उठा कि, हे पितः! आपने अनुचित् किया जो इस कंकनामक ब्राह्मणका आपने तिरस्कार किया यह बिचारा सच कहता है मेरेको युद्ध यथार्थहीमें बृहन्नलाने जीतदिया है आप इस ब्राह्मणसे क्षमा माँगलीजिये, राजा विराटने पुत्रकी ऐसी वाणी सुनकर युधिष्ठिरसे क्षमा मांगी, बृहन्नलाको बुलाकर राजाने उसका विशेष सन्मान किया तथा प्रशंसा करी अर्जुनने लड़ाईकी लूटसे लूटे हुए अच्छे २ वस्त्र उत्तरकी भगिनी उत्तराको लाकर दिये, एवं विराट के निवास करते भी पाण्डवोंका वर्ष पूरा हुआ पाण्डव प्रसिद्धहुए, राजा विराटने उनको पाण्डव जानकर बहुतही खुशी मनाई तथा उनसे विशेष स्नेह किया, शेषमें पाण्डवोंको अपना विशेषरूपसे बन्धु बनाने के लिये राजा विराटने अपनी पुत्री अर्जुन को देनीचाही उसका अर्जुनके साथ प्रेमभी था परन्तु अर्जुनने इस सम्बन्धको अनुचित समझा बहुतही कहनेसे अर्जुनने अपने पुत्र सौभद्रके साथ उत्तराकी सगाई स्वीकार की सौभद्रको बुलाकर उनही दिनोंमें विवाहभी कर दिया गया।

इतिविराट पर्व ॥ ४ ॥

उधर धृतराष्ट्रको भी पाण्डवोंकी खबर पहुंची उसने बिदुरको पाण्डवोंके लेआने के लिये भेजा, बिदुर विराट राजाके नगरमें आये मिलकर पाण्डवोंके लेजानेका संकल्प प्रकाश किया राजा विराटने अत्यन्त सन्मानपूर्वक पाण्डवों को बिदा किया पाण्डवोंको

हस्तिनापुर आये सुनकर द्वारकासे श्रीकृष्ण बलदेवभी उनके मिलने को आये, सबने मिलकर धृतराष्ट्र से तथा दुर्योधनसे पाण्डवों के भागके विषयमें बहुत कुछ कहा परन्तु दुर्योधनने एक ना मानी शेषमें पाँचोंको पांच ग्राम देने तकभी कहा परन्तु दुर्योधनने न मंजूर किया बहुत ही कह सुनकर कृष्ण बलदेव द्वारकाजी चलेगये, परन्तु जातीबेर पाण्डवों को युद्धकरने की सम्मति पूर्णरूपसे देगये पाण्डव आपसमें बैठकर युद्धका विचार करनेलगे (युधिष्ठिर) हे भाई! अब क्या करना उचितहै दुर्योधन तो हम लोगोंको कुछ दिया नहीं चाहता (अर्जुन) जो आपकी आज्ञाहोय सो कियाजाय (युधिष्ठिर) मैं आपलोगों की संमतिके सिवाय विशेष कोई आज्ञा नहीं दे सकता (भीम) विना युद्धसे इस दुष्टसे कुछ मिलना कठिनहै (युधिष्ठिर) बन्धुओंका परस्पर युद्ध भी तो एक लज्जाका स्थान है (भीम)

युष्मान् ह्रेपयति क्रोधाल्लोके शत्रुकुलक्षयः ॥
न लज्जयति दाराणां सभायां केशकर्षणम् ॥ १ ॥ वेणी०

हे आर्य्य! क्रोधपूर्वक शत्रुओंके कुल नाशकरने में आपको लज्जा आतीहै परन्तु भरी राजसभामें अपनी स्त्रीके केशकर्षण कियेजानेमें लज्जा नहीं आती यहभी एक आश्चर्य्यकी बात है ॥ १ ॥

(युधिष्ठिर) तथापि हे भाई! जहांतक बनपड़े शान्ति तथा क्षमा से बर्ताव करना अच्छा होता है (भीम) महाराज शान्ति क्षमा से बर्ताव करना तो भीखमाँगके खानेवाले साधु ब्राह्मणों का काम है हम लोग क्षत्रिय हैं जहांतक बनपडे नीतिसे बर्तावकरना उचित है (युधिष्ठिर) तो भाई नीति यही कहती है कि, आपसमें बन्धु बन्धु लडमरें! (द्रौपदी) हे आर्य ! जिस दुष्टने आपलोगोंके मारने के लिये खानेमें विष डलवाया, तथा जिसने आपलोगोंके जलानेके लिये लाक्षामन्दिर निर्माण करवाया तथा जिसने छलका द्यूत खेलकर आपलोगोंका सर्वस्व जीता तथा जिसने आपलोगोंके सामने मेरी बेइज्जती करी तथा जो अन्यायकारी दुष्ट दुर्योधन वर्तमानमें अनेक सत्पुरुषोंके समझानेसे भी आपलोगोंको आपके भागका एक तृणभी नहीं दिया

चाहता ऐसे क्षुद्र नीच तथा द्वेषकको फिर २ बन्धु बन्धु कहते आपको लज्जा नहीं आती, पिछले दुःखोंको स्मरणकर (भीम) हे सुन्दरि! तू शोक मतकर अब समय बहुत समीप आचुकाहै देख मैं तेरे सामने इस सुयोधनके उरुस्थल गदासे चूर्ण करताहूं तथा इसके सहकारी वर्गको भी शीघ्रही महानिद्रामें शयन करावाहूं। इत्यादि महानिष्ठुर वचनोंको श्रवणकर युधिष्ठिरको निश्चय हुआ कि भीमार्जुनादिको बिना युद्धकिये संतोष न होगा तो महाराज युधिष्ठिरने कहा कि, हे भाई! यदि आप सबकी ऐसी इच्छाहै तो युद्धकी तैयारी करो, अर्जुन उसीसमय द्वारकामें श्रीकृष्णदेवके पास पहुंचा. उसको सुनकर दुर्योधनभी द्वारका गया, दोनोंही आपसमें थोड़ेसे अन्तरेमें एकदिन साथही जाय पहुँचे आगे श्रीकृष्णदेव विराजमानथे अर्थात् वस्त्रसे मुखाच्छादन कर शयनकियेथे. अर्जुन जाताही महाराजके पाउँकी तरफ जाकर खड़ाहोगया और दुर्योधन राजमदान्ध हुआ जाकर महाराजके शिरकी ओर बैठगया, थोडीही देर पीछे महाराज उठे दोनोंका प्रेमसे उचित स्वागत किया, शेषमें आगमनकारण पूंछा तो प्रथमही दुर्योधन बोला कि हमारा इनका संग्राम होनेवाला है आप किसीका पक्ष लेवोगे या दोनोंतरफसे उदासीन रहोगे? महाराज बोले आपलोग सभी हमारे समानही बन्धुहो हमको किसीका पक्ष करना उचित नहीं परन्तु थोड़ी बहुत जो कुछ सम्मतिभी हम देंगे तो उसीके पक्षकी देंगे जो यहां हमारे पास प्रथम आया है, दुर्योधनने कहा प्रथम तो मैं ही आयाहूं माहाराजने कहा हमने तो उठतेही प्रथम अर्जुनको देखा है। शेषमें महाराजने कहा कि हमारे पास सात अक्षौहिणी सेनाभी है हमारेको तुम दोनों समानहो हम जिसके पक्षमें होंगे उसके पक्षसे शस्त्र उठाकर दूसरेका सामना नहीं करेंगे, तुम दोनोंमें चाहो कोई हमको लेलो, चाहो हमारी सेनाको, महाराजकी ऐसी वक्रोक्तिको सुनकर दुर्योधन यही बोला कि मेरेको तो आप अपनी सेना देदीजिये, महाराजने स्वीकारकिया, दुर्योधन उसी समय बलदेवजीके पास गया तो बलदेवने कहा जहां कृष्ण वहां मैं परन्तु शस्त्र

मैंभी किसीकी तरफसे नहीं उठाऊँगा, दुर्योधनको इनही दोनोंकी पाण्डवोंको मदतका भारी भयथा परन्तु अब इनके प्रतिज्ञावचन सुनकर निर्भय होगया सात अक्षौहिणी सेना लेकर घर चला आया, उधर श्रीकृष्ण बलदेवको साथ लेकर अर्जुन भी हस्तिनापुर पहुँचा इनको सेनाकी मदत द्रुपद विराटादि सम्बंधिराजाओंने करी उनही दिनोंमें बिदुरने धृतराष्ट्र को बहुतही नीतिका उपदेश किया परन्तु अन्धेने एक न सुना शेषमें युद्धकी तैयारी हुई दोनों तरफकी सेना जुटकर कुरुक्षेत्रके मैदानमें पहुँची ।

इति उद्योगपर्व ॥ ५ ॥

युद्ध आरम्भ हुआ पाण्डवोंने युद्ध आरम्भके थोड़ाकाल प्रथम जाकर भीष्म द्रोण दोनोंको नमस्कार किये, उन दोनोंने इनको विजयपाने के आशीर्वाद कहे युधिष्ठिरने भीष्म द्रोण को युद्धमें सत्ता न देनेकी प्रार्थना करी तो उन दोनोंने यह उत्तर दिया ॥

अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित् ।
इति सत्यं महाराज बद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवैः ॥ ४१ ॥

हे राजन् युधिष्ठिर! यह पुरुष स्वार्थका दासहै और स्वार्थ किसीका दास नहीं यह वार्ता सत्यहै इसीलिये हमको दुर्योधनने स्वार्थसे बाँधलियाहै अर्थात् हमलोगोंने इस दुर्योधनका बहुत कालतक लवण खायाहै अब समयपर विपरीत होना कठिन है ऐसेही श्रीकृष्णदेवने कर्णको एकान्त करके बहुत समझाया तो उसने यह उत्तर दिया ।

न विप्रियं करिष्यामि धार्तराष्ट्रस्य केशव ।
त्यक्तप्राणं हि मां विद्धि दुर्योधनहितैषिणम् ॥ ९२ ॥ अ० २४३ ॥

हे श्रीकृष्ण! मैं दुर्योधनका बुरा कभी नहीं करसकता किन्तु प्राणान्त तक जहांतक मेरेसे बनपड़ेगा इसका हितही करूंगा इति। शेषमें युद्ध होनेलगा उधरसे सबसे प्रथम सेनापति भीष्म हुए, इधरसे अर्जुन हुए, अर्जुन भीष्मको सामने देखकर युद्धसे उपराम हुआ इसने अपने पितामहको तथा और सम्बन्धियों को मारना अनुचित समझा, इसी समय श्रीकृष्णदेवने भगवद्गीताका

उपदेशकर अर्जुनको फिर सावधानकिया आप उसके सारथि बने युद्धहोने-लगा परस्पर शूरवीर मरनेलगे अनेक शृगाल गृध्रादि जंगलके जीव पुरुषोंके मांस मज्जा मेद रुधिरादि को खान पान कर प्रसन्न होनेलगे, घोर युद्ध हुआ शेष में रात्रिके समय युधिष्ठिरने पितामहके समीप जाकर हाथजोड़के मृत्युका उपाय पूछा तो उसने अपनी मृत्युका उपाय शिखण्डीको आगे रख अर्जुनको बाण मारने कहा, युधिष्ठिरने अर्जुनको वैसेही कहा अर्जुनने शिखण्डीको आगे रखकर भीष्मको बाण मारा तो भीष्म अपने बाणोंकी सत्तासे शून्यहोकर गिरपड़ा मूर्च्छितहुआ. भाव यह कि, भीष्मकी यह, प्रतिज्ञा थी कि स्त्रीपर या स्त्रीवेषपर शस्त्र न उठाना और शिखण्डीको एक ऋषिका शाप था वह कभी स्त्री भी होजाताथा इसलिये उसको सामने देखकर भीष्मने अपने शस्त्रोंको छोड़दिया अर्जुनने भीष्मको मूर्च्छित किया ।

इति भीष्मपर्व ॥ ६ ॥

भीष्मके मूर्च्छित होनेसे दुर्योधनने सेनापति द्रोणको बनाया द्रोणाचार्य्य का भी अपने शिष्य पाण्डवोंके साथ युद्ध होने लगा अश्वत्थामा जयद्रथादि द्रोणके सहकारी हुए, जयद्रथने अर्जुनके पुत्र अभिमन्युको मारडाला उसके मरनेसे पाण्डव बहुत दुःखीहुए अपने विजयार्थ श्रीकृष्ण तथा अर्जुन दोनोंने महादेवकी उपासना करी महादेव प्रसन्नहुए विजयका वरप्रदानकिया, अर्जुनने जयद्रथको मारडाला यह धृतराष्ट्रका (जामाता) दामादथा इसके मरनेसे दुर्योधनादिको बड़ा खेदहुआ जयद्रथके मरनेसे द्रोणके आगे होकर अश्व-त्थामा युद्ध करनेलगा. उधर कर्ण तथा कृपाचार्य्यकी परस्पर बातचीत होनेलगी कर्णने उसमें अपनी प्रशंसा तथा अर्जुनकी निन्दा बोधन करी कृपाचार्य्यको कर्णके स्वप्रशंसा वचन अति कुत्सित प्रतीत हुए शेषमें नहीं रहसका तो कर्ण के कथनको हाँसीकर अर्जुनकी प्रशंसा करनेलगा कृपा-चार्य्यने कहा, हे कर्ण ! क्या तू अर्जुनको भूलगयाहै और मैं क्या अर्जुनको नहीं जानता हूं । जिस अर्जुनने गेंदखेल तथा बाहुयुद्धादि में तेरेको अनेक-वार नीचा दिखलाया तथा जिस अर्जुनने सहस्रों राजकुमारोंमें द्रौपदी विवाह

तथा जिस अर्जुनने अपनी मनोहर वीरविद्यासे शंकरको भी युद्धमें प्रसन्न किया तथा जिस अर्जुनने तुम सबसे विराटकी गौएँ छुड़वालीं तथा जो वीरअर्जुन अपनी युद्धक्रियामें कदापि दम्भ छल कपटादिका लेशभी नहीं मिलने देता ऐसे महा पुरुषकी निन्दा करणी तो अपनी लघुताकी बोधक है । इत्यादि प्रशंसावाक्य सुनकर कर्णको अतिक्रोध हुआ कृपाचार्य्यको बोला—

यद्येवं वक्ष्यसे भूयो ममाप्रियमिह द्विज ॥
तदा ते खड्गमुद्यम्य जिह्वां छेत्स्यामि दुर्मते ॥ ५७ ॥
यच्चापि पाण्डवान्विप्र स्तोतुमिच्छसि संयुगे ॥
भीषयन्सर्वसैन्यानि कौरवेयाणि दुर्मते ॥ ५८ ॥

द्रोणप० अ० १६८ ॥

कि, हे भिखारी ब्राह्मण ! हे मूर्ख ! मेरे सामने मेरी निन्दा तथा मेरे शत्रुगणकी कीर्तिका वर्णन तुमने किया सो किया परन्तु यदि अब फिरभी करेगा तो मैं खड्ग उठाकर तेरी जिह्वा छेदन करूंगा ॥ ५७ ॥ हे दुष्टबुद्धिवाले ब्राह्मण ! ऐसे युद्धके समयमें तेरा पाण्डवों का स्तवन करना कुछ उपकारक नहीं है किन्तु केवळ कौरवोंकी सेनाके भयमात्रका हेतुहै ॥ ५८ ॥

कृपाचार्य्यके प्रति कर्णके ऐसे दुर्वचन सुनकर अश्वत्थामाको बहुत बुरा प्रतीतहुआ और कर्णको कुत्सित वचन बोलनेलगा, शेषमें कर्णने अश्वत्थामाको भी फटकारा और कहा कि, तुम लोगोंकी जातिहीका यह नीचस्वभावहै जो मालिकके नमकहराम होना तथा शत्रुके प्रशंसक होना परन्तु हम क्षत्रियोंसे तो ऐसा कदापि होना कठिनहै हमसे तो जहांतक बनपड़ेगा अपने उत्कर्ष-पूर्वक शत्रुओंका अपकर्षही सबको बोधन करेंगे इत्यादि सुनकर अश्वत्था-माने कहा थोडेही दिन बाकी हैं जो सबके सामने तेरा क्षत्रियपनेका अभिमान अर्जुन अनायासही तोड़डालेगा इत्यादि वचन कहते हुए अश्वत्थामाको दुर्योधनने शान्तकिया, कर्णने इन्द्रकी दीहुई शक्ति चलाकर घटोत्कच नामक भीमके पुत्रको मारडाला इतनेमें सम्मुखहोकर द्रोण स्वयं लड़नेलगा थोडीही देरमें अपने ब्रह्मास्त्रसे अनेक वीरोंके प्राण लेडारे ऐसी घटनाको देखकर

अनेक ऋषिगण आये और द्रोणको उपदेश किया कि, तैंने ब्राह्मण होकर अनेक निर्दोष जीवोंका विनाश कियाहै यह तेरा धर्म न था उन ऋषियोंके उपदेशसे द्रोण युद्धसे उपराम होगया. और सबसे पूंछनेलगा मेरा पुत्र अश्वत्थामा जीताहै कि मरगया है उसके उपराम करनेके लिये कई एक लोगोंने कहा कि मरगया है परन्तु द्रोणको अश्वत्थामाके मरनेका विश्वास नहीं हुआ वस्तुतः वह माराभी न था, केवल पाण्डवोंके पक्षके लोग उसको घेरेहुए बहकाही रहेथे, इतनेमें श्रीकृष्ण तथा युधिष्ठिर द्रोणके समीप आये तो उनसेभी पूंछनेलगा कि मेरा पुत्र जीता है या मरगया तो श्रीकृष्णदेवने युधिष्ठिरको कहा कि तुम कहदो कि, तुम्हारा पुत्र मरगया, युधिष्ठिर बोला हे दीनबन्धो ! मेरी प्रतिज्ञा है कि मैं ऐसा मिथ्याचरण कभी नहीं करता जो जिसमें दूसरेकी हानि होवे आगे जैसी आपकी आज्ञा हो करूं, युधिष्ठिरके ऐसे सम्भावित वचनको सुनकर श्रीकृष्णदेवने कहा ।

संभवाँस्त्रातुं नो द्रोणात्सत्याज्ज्यायोऽनृतं वचः ॥
अनृतं जीवितस्यार्थे वदन्न स्पृश्यतेऽनृतैः ॥ ४७ ॥ अ० १९० ॥

कि, हे युधिष्ठिर! हमलोगोंकी द्रोणसे रक्षाकरनेके लिये अर्थात् द्रोणसे हम लोगोंको बचानेके लिये तेरा सत्यसे मिथ्या बोलना अच्छाहै क्योंकि धर्म-शास्त्रकी यह आज्ञा है कि अपने प्राण बचानेके लिये पुरुष मिथ्यावाद करताहुआभी उसके दोषका भागी नहीं होता इति । श्रीकृष्णदेवका ऐसा उपदेश सुनकर युधिष्ठिरने द्रोणको कहदिया कि तेरा पुत्र युद्धमें मरचुकाहै युधिष्ठिर के कथनका द्रोणको विश्वासहुआ पुत्रविरहसे संसारसे उपराम होकर युद्धसे विरक्तहुआ तो द्रुपदके पुत्र धृष्टद्युम्नने द्रोणको मारडाला उधर अश्वत्थामाको अपने पिताका मरण सुनकर बड़ा शोकहुआ और कहनेलगा ।

मद्वियोगभयात्तातः परलोकमितो गतः ॥
करोम्यविरहं तस्य वत्सलस्य सदा पितुः ॥ १ ॥ वेणी०

कि, मेरे वियोगके भयसे मेरा पिता यहांसे शीघ्र परलोकको चलागया अब मेरेकोभी ऐसे (वत्सल) प्रिय पिताको शीघ्र अविरहयुक्त करना

उचित है, इत्यादि अनेकाविध करुणापूरित वचनोंसे विलाप करताहुआ शेषमें युधिष्ठिरको सामने देखकर कहनेलगा ।

आजन्मतो न वितथं भवता किलोक्तम् ।
न द्वेक्षि यज्जनमतस्त्वमजातशत्रुः ॥
ताते गुरौ द्विजवरे मम भाग्यदोषात् ।
सर्वं तदेकपद एव कथं निरस्तम् ॥ १ ॥ वेणी० ।

कि, हे युधिष्ठिर ! जन्मसे लेकर तुमने आजतक कभी झूंठ न बोला और नाहीं किसीके साथ तुमने द्वेषभाव किया इसीसे तेरेको लोग अजातशत्रु कहनेलगे । परन्तु मेरे मन्दभागके दोषसे तैंने अपने स्नेही तथा गुरु उसमें भी द्विजवर मेरे पिताके लिये तैंने अपने प्रणका सम्पूर्णरूपसे एकदम त्याग कैसे करदिया ॥ १ ॥ इत्यादि अनेकविध करुणामयी वाणियोंसे प्रिय पिता द्रोणको स्मरण करता हुआ अश्वत्थामा युद्धकरने लगा घोर युद्ध किया, पाण्डवोंकी सेनाकी बहुतही हानिहुई शेषमें अर्जुनके बाणोंसे त्रस्तहुए अश्वत्थामाके संगके योद्धा युद्धस्थल छोड़कर भागनेलगे तो उनके प्रति अश्वत्थामा बोला ।

यदि समरमपास्य नास्ति मृत्योः ।
भयमिति युक्तमितोऽन्यतः प्रयातुम् ॥
अथ मरणमवश्यमेव जन्तोः ।
किमिति मुधा मलिनं यशः कुरुध्वे ॥ १ ॥ वेणी०

कि ,यदि युद्धके छोडदेनेसे मरणका भय छूटजाय तो तौतो यहांसे भाग कर स्थलान्तरमें जा छिपना उचितहै, परन्तु यदि मरण का भय हरएक जगहमें बनाही रहताहै और मरभी अवश्यही जाना है तो काहेलिये वृथा भागकर अपने शूरताके उज्ज्वल यशको मलिन करतेहो इत्यादि वचनोंको-कहकर अपने साथके योद्धाओंको युद्धसे उपराम देखकर अश्वत्थामाभी उप राम हुआ ।

इति·द्रोणपर्व ॥ ७ ॥

ऐसी दशा देखकर दुर्योधनने सेनापति कर्णको नियतकिया फिर युद्ध होने

लगा, उसी समय कर्णने राजा शल्यको देवासुरसंग्रामप्रसंगसे त्रिपुरका शंकरके हाथसे वध होना सुनाया, भाव उसके सुनानेका यह था कि, त्रिपुरासुररूप पाण्डवोंके लिये मेरी शंकररूपसे चढाई हुई है कर्णके ऐसे अभिमानयुक्त वचन राजा शल्यको शल्यकी तरह प्रतीत हुए और बोला कि हे कर्ण ! ।

आत्मनिन्दाऽऽत्मपूजा च परनिन्दा परस्तवः ॥
अनाचरितमार्य्याणां वृत्तमेतच्चतुर्विधम् ॥ ४५ ॥ अ० ३५ ॥

अपनी निन्दा या अपना आपही पूजन, परकी निन्दा या परका वृथा स्तवन करना यह आचरण आर्य्यलोगोंके नहीहैं इत्यादि कहकर कर्णको राजा शल्यने कहा कि, यदि तुम्हारी पाण्डवोंके साथ संग्रामकी इच्छा हो तो मैं आपका सारथि बनताहू कर्णने मंजूर किया युद्ध होनेलगा, प्रसंगसे फिर कर्णने पाण्डवोंकी निन्दा करी तो राजा शल्यने एक वणिक्पुत्रके काकपालनका दृष्टान्त सुनाया अर्थात् जैसे काक बोलना नहीं सीखाथा वैसेही हे कर्ण! तुमभी हो, कर्णको शल्यका कथन बहुत बुरालगा. दोनों परस्पर अबे तबे करनेलगे तो दुर्योधनने बीचमें पड़कर दोनोंको शान्तकिया. कर्णका पाण्डवोंसे घोर युद्धहुआ, कर्णने अनेक शूरवीर स्वर्गधामको पहुँचाये, शेषमें अर्जुनके कठोरबाणकी चोटसे उसको आपभी उनहींका मार्ग ग्रहण करना पड़ा. अर्थात कर्णभी इस असार संसार सुखको छोड़कर वीर अर्जुनके बाणसे प्राणत्यागकर स्वर्गधाममें प्राप्तहुआ ।

इति कर्णपर्व ॥ ८ ॥

कर्णका मरण सुनकर धृतराष्ट्रको बड़ा शोकहुआ दुर्योधनके दुःखको देखकर कृपाचार्य्य बोला ।

न युद्धधर्म्माच्छ्रेयान्वै पन्था राजेन्द्र विद्यते ।
यं समाश्रित्य युद्ध्यन्ते क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभ ॥ ९ ॥ अ० ४८ ।
सम्बन्धिबान्धवाश्चैव योद्धया वै क्षत्रजीविना ।
वधे चैव परो धर्मस्तथाऽधर्मः पलायने ॥ १० ॥ अ० ४८ ॥

कि हे राजेन्द्र दुर्योधन ! क्षत्रिय पुरुषको युद्धधर्मके सिवाय और कोई

कल्याणका मार्ग नहीं है. हे क्षत्रियश्रेष्ठ इस कल्याणमार्गके उद्देशसेंही यावत् शूरवीरोंकी युद्धमें प्रवृत्ति होती है ॥ ९ ॥ क्षात्रधर्मसे जीनेवाले पुरुषको युद्धसमय अपने सम्बन्धी या बन्धु नहीं देखनेचाहिये । किन्तु उपस्थित कोईभी हो सबके साथ युद्ध करना चाहिये, भाव यह कि युद्धमें यदि क्षत्रिय माराभी जायगा तो परमधर्मकी बात है परन्तु युद्धके नामसें भागकर छिपनेका प्रयत्न करना तो महापाप है ॥ १० ॥

इत्यादि कृपाचार्य्यके सदुपदेश सुनकर दुर्योधनके चित्तमें फिर लड़नेका उत्साह होआया शीघ्र उठा और कहनेलगा ।

गृहे यत्क्षत्रियस्यापि निधनं तद्विगर्हितम् ॥
अधर्मः सुमहानेष यच्छय्यामरणं गृहे ॥ ३२ ॥ अ० ५ ॥

कि, हे आचार्य्य ! आपने कहा सो सत्यहै घरमें क्षत्रिय पुरुषका मरना बहुतही निन्दित है उसमेंभी क्षत्रिय होकर घरमें खाटहीपर मरजाना और भी निन्दित है इत्यादि उत्साहके वचनकहकर दुर्योधनने युद्धको फिर चढ़ाईकरी, शल्यको अपनी सेनाका सेनापति नियतकिया. घोरयुद्ध हुआ. युधिष्ठिर के बाणसे शल्यभी गिरा उसको गिरा देखकर दुर्योधनको बड़ा भयहुआ, रणभूमिको छोड़कर एक जलके तालावमें जाकर छिपबैठा, पाण्डवोंने बहुत अन्वेषण करा परन्तु कहीं न मिला, शेषमें धनका लोभ देकर पाण्डवोंने भीलोंसे पूछा तो उन्होने वह तालाव बतलादिया भीमने वहां जाकर दुर्योधनकी खोजकरी तो एक कन्दरामें छिपाबैठापाया, भीम देखकर चलेआये, आकर युधिष्ठिरसे कहा युधिष्ठिरने कृष्णको कहा कृष्णने भीमको कहा कि उसको पकड़कर युद्धभूमिमें लेआओ । भीम फिर उस तालावपर जाकर उसको पकड़कर लेआया, कृष्णने दुर्योधनसे पूछा कि, क्या अब युद्ध नहीं किया चाहते दुर्योधनने कहा अवश्य कियाचाहता हूं परन्तु एक एक के साथ जुदा जुदा युद्ध होना चाहिये, शेषमें भीमके साथ दुर्योधनका गदायुद्ध नियत हुआ दोनों वीर गदा उठाकर मैदानमें निकले दोनोंहीमें कम कोई भी न था महाविकराल युद्धहुआ देखने वाले लोगोंकी चित्तवृत्ति भी ऐसे क्रूरयुद्धको

देखकर थरथराई कई दिन तक युद्धहोनेसेभी जब दोनोंमें किसीको निर्बल न देखा तो श्रीकृष्णने भीमको दुर्योधनके उरु भेदनकी प्रतिज्ञा स्मरण-कराई भीमने स्मरणकर दुर्योधनके गदासे उरु भेदनकिये तो वह हारकर गिरपड़ा, बलदेवने दुर्योधनके गिरनेसें हाहाकार किया और भीमको कहा कि, हे भीम! तैंने बडा बुरा काम कियाहै दुर्योधनको तुम्हें मारना न था किन्तु युद्ध-से व्याचालन मात्र करदेनाथा क्योंकि राजाका मारना धर्मशास्त्रसे निन्दित है बलदेवकी ऐसी वाणी सुनकर भीमने कुछ उत्तर न दिया परन्तु दुर्योधनने मरण समय श्रीकृष्णको महाकपटी तथा छलिया कहा.उसके उत्तरमें श्रीकृष्ण-देवने दुर्योधनको अभिमानी तथा अधर्मी कहा इत्यादि वार्तालापके अनन्तर दुर्योधनने सेनापतिका अधिकार अपने गुरुपुत्र अश्वत्थामाको दिया और थोड़ीही देर पीछे आप देवयान मार्गसे अनेक देवोंके सन्मानपूर्वक देवलोकमें प्राप्तहुआ ।

इतिशल्यपर्व ॥ ९ ॥

ऐसेही रात्रिभी हुई घोरयुद्धसे श्रान्तहोकर पाण्डवोंने विश्रान्त होना चाहा शत्रुकंटकक्लेशसे मुक्तहोकर पाण्डवोंने निर्भयहोकर शयन किया तो अश्वत्थामाने रात्रिमें उनके पुत्र मारडाले जिस समय द्रोण मराथा तो उसके दुःखसे दुःखितहुए दुर्योधनने महादेवका आराधनकर एक उससे (शक्ति) बरछी पाईथी श्रीकृष्ण तथा पाण्डवोंके सिवाय हरएक पर चलनेका उसमें महादेवजीने सामर्थ्य भराथा, वही बरछी पाण्डवों पर निरर्थक समझकर अश्वत्थामाने उनके पुत्रोंपर सार्थक करी, उनमें धृष्टद्युम्नके साथ द्रौपदीका अतिस्नेहथा उसके मरनेसे द्रौपदीको भारी खेदहुआ पाण्डवोंने यह सारा कर्तव्य अश्वत्थामाका निश्चयकिया और द्रौपदीके दुःखको देखकर भीमके चित्तमें अश्वत्थामाके मारडालनेका विचार हुआ अश्वत्थामा कुरुक्षेत्रसे भाग-कर गंगाकिनारे आय छिपा, भीमने उसका पीछा किया गंगा किनारे खोजनेसे अश्वत्थामाको पाया तो उसकी अच्छीप्रारब्धसे वहां उन दोनोंको व्यासदेवजी मिलगये उन्होंने अपना अपना वृत्तान्त व्यासजी को सुनाया तो व्यासजी

ने भीमको गुरुपुत्र तथा ब्राह्मण कहकर अश्वत्थामाके मारनेसे घोर पाप बोधनकिया अन्तमें व्यासजीके कहनेसे भीमने अश्वत्थामाको छोड़दिया और व्यासजीने एक मणि जो कि अश्वत्थामाके सदैव पास रहतीथी वह छोड़नेके संतोषमें भीमको दिलवादी भीमका मणिसे पूजनकर अश्वत्थामा संसारसे उपराम होकर उत्तराखण्डको चलागया और पाण्डवभी भीमके रणक्षेत्रमें आनेसे युद्धक्रियाको परिशेषकर विश्रान्त हुये ।

इतिसौप्तिकपर्व ॥ १० ॥

युद्धभूमिमें दुर्योधनादिका विनाश सुनकर उसकी माता गांधारी तथा दुर्योधनकी विवाहिता स्त्रियाँ हस्तिनापुरसे चलकर रणभूमिपर अपने मृत-पुत्र तथा पतिका मुखदेखनेको आपहुंची, युद्धक्षेत्रमें दुर्योधनकी लाश के समीप जाकर उन्होंने अनेक प्रकारके करुणार्तस्वरपूरित शब्दोंसे दुर्योधन के गुण स्मरणपूर्वक विलापकिया, श्रीकृष्णदेवको साथलेकर पाण्ड-वोंने उन सबको आश्वासन दिया, गान्धारीसे युधिष्ठिरने कहा, हे मातः ! हम पाँचों भी तेरे दुर्योधन जैसेही पुत्र हैं, आपकी आज्ञाका हमलोग कभी उल्लंघन नहीं करेंगे दुर्योधन भाईके मरनेका हमकोभी बड़ा शोक है परन्तु क्या करें भावी प्रबलहै किसीकी कुछ पेश नहीं जाती, अब आपको धैर्य्य धरना चाहिये इत्यादि वचनोंसे गान्धारीको संतोषदेकर पाण्डवोंने मिलकर दुर्योधनादि सभीसम्बंधियोंकी जो कि रणक्षेत्रमें प्राण देचुकेथे यथा योग्य दाहादिक्रिया करी ।

इति स्त्रीपर्व ॥ ११ ॥

पाण्डव विजयपताकाको फहराते हुये कुरुक्षेत्रसे हस्तिनापुरमें आये तो सबसे प्रथम धृतराष्ट्रको मिलनेगये परन्तु पुत्रशोकातुर धृतराष्ट्र उनसे प्रस-न्नतापूर्वक न मिला पाण्डवोंका विजय सुनकर उनको आशीर्वाद देनेके लिये व्यासजी नारदजी तथा और भी अनेक ऋषिगण आये, भरी सभामें नारदजीने युधिष्ठिरसे विशेष विजयका कारण तथा चित्तकी व्यवस्था पूंछी तो राजा युधिष्ठिरने कहा ।

विजितेयं मही कृत्स्ना कृष्णबाहुबलाश्रयात्।
ब्राह्मणानां प्रसादेन भीमार्जुनबलेन च ॥ १३ ॥

इदं मम महद्दुःखं वर्तते हृदि नित्यदा।
कृत्वा ज्ञातिक्षयमिमं महान्तं लोभकारितम् ॥ १४ ॥

सौभद्रं द्रौपदेयाँश्च घातयित्वा सुतान्प्रियान्।
जयोऽयमजयाकारो भगवन् प्रतिभाति मे ॥ १५ ॥ अ० १।

कि, हे ऋषे! यह विजय मैंने श्रीकृष्णदेवके बाहुबलसे तथा ब्राह्मणोंकी कृपासे और भीम अर्जुनके पराक्रमसे लाभ कियाहै ॥ १३ ॥ यह दुःख मेरे हृदयमें सदैव बना रहताहै कि, जो मैंने अपनी जातिका विनाशकरके अपने राज्यलोभको कियाहै ॥ १४ ॥ हे भगवन्! सुभद्रा तथा द्रौपदीसे उत्पन्न होनेवाले प्यारे पुत्रोंको रणभूमिमें मरवाकर जो मेरेको यह विजय लाभहुआ है वह मेरी हारहीके सदृशहै ॥ १५ ॥

और मैंने अपने सहोदर भ्राता कर्णको मारा यहभी मैंने महा अपराध किया है। कर्णके मरनेका दुःख मेरेको रात्रिदिन तपाता रहताहै, धर्मके इत्यादि वचनोंको सुनकर ऋषिमण्डलने युधिष्ठिरका आश्वासन किया. और सबने कहा कि, हे धर्मपुत्र! अब आपको राज्यशासन करना होगा इसलिये उचित है कि, आप अपने पितामह भीष्मसे कुछभी सद् उपदेश ग्रहण करें, युधिष्ठिरने कहा मेरेको पितामहके सामने मुखदिखानेमें लज्जा आतीहै श्रीकृष्णदेव पूंछें तो मैंभी सुनलूं। युधिष्ठिरके कहनेसे कृष्णदेवने पितामहसे पूंछा परन्तु पितामहने श्रीकृष्णकी अति प्रशंसा करतेहुए कहा, हे देव! कौन ऐसी वार्ता मेरेको याद है जो कि, आपको अविदितहो, धर्म, नीति, ज्ञान, वैराग्य योगादि अनेक सद्विद्याओंके निर्माता तथा विधाता तो आपहीहैं इत्यादि स्वविषयक श्रद्धापूरित भीष्मके वचन सुनकर श्रीकृष्णदेवने भीष्मसे कहा कि, हे पितामह! आपके मुखसे युधिष्ठिर सुना चाहता है, तो भीष्मने कहा कि, हे देव! उसको स्वयं सामने होकर पूंछना चाहिये। इतना सुनकर युधिष्ठिर स्वयं हाथबाँधकर पितामहके सम्मुख उपस्थितहुआ श्रद्धा भक्तिपूर्वक

उपस्थित हुए युधिष्ठिरको देखकर पितामहने अनेक इतिहासोंसे तथा युक्ति-प्रमाणोंसे गर्भित राजधर्मका आपद्धर्मका तथा मोक्षधर्मका उपदेशकिया उस भीष्मके त्रिविध उपदेश सुननेसे पाण्डवोंके हृदयमें अनेकप्रकारका विकाश हुआ और परमसन्तोषको प्राप्त होकर राज्यकार्य्योंको यथोचित करने लगे।

इति शान्तिपर्व ॥ १२ ॥

तत्पश्चात् भीष्मने युधिष्ठिरको अपनी प्रजाके साथ यथायोग्य बर्ताव करनेका उपदेश किया. तथा स्वर्णरजत गोभूमि आदिके दानका महत्त्व बोधनकिया और उसी प्रसंगसे सर्वधर्मोंसे उत्तम तथा साररूप हरिनामको कहकर युधिष्ठिरको ' सहस्रनाम ' का उपदेश सुनाया भीष्म की ऐसी अनुशासना सुनकर युधिष्ठिरको बहुतही धैर्य्य हुआ।

इति अनुशासनपर्व ॥ १३ ॥

इत्यादि सद्उपदेशों के करते हुए भीष्मका नियत समय उत्तरायण आय प्राप्तहुआ, उचित अवसर जानकर भीष्मने यथेष्ट प्राणोंका त्याग किया उससे पाण्डवोंको बहुत खेदहुआ युधिष्ठिर व्याकुल हुआ । श्रीकृष्णदेवने उपदेशसे प्रबुद्धकिया और उपदेशकर यथा योग्य दाहादि क्रिया भी भीष्मकी उसहीके हाथसे करवाई । उसके पीछे व्यासदेवजी भी पाण्डवोंकी खबर लेने आये, युधिष्ठिरको उदास देखकर व्यासजीने उसको अश्वमेधयज्ञ करने की आज्ञा करी, युधिष्ठिरने ऋषिकी आज्ञाके अनुसार यज्ञका प्रारम्भकिया यथोचित क्रियाके पश्चात् दिग्विजयार्थ अश्वविसर्जन किया अर्जुनको उस अश्वका अनुगामी रक्षक नियतकिया पूर्ववत् श्रीकृष्णदेव अर्जुनके सारथि बने यज्ञपूर्ति अर्थ विसर्जित अश्वने यथेष्ट पृथिवीकी परि-क्रमा करनी प्रारम्भकरी, चतुरंगिणी सेना समेत अर्जुन उसके अनुगामी हुये अनेक राजाओंने उस अश्वको बाँधा और युद्ध किया परन्तु अर्जुनने श्रीकृष्णदेवकी साहायतासे सर्वत्र विजय लाभकिया जिन्होंने युद्धकरना न मुनासिब समझा वेह अर्जुनको आगेसे भेटलेकर उपस्थितहुए शेषमें अनेक राजा महाराजाओंके मण्डलको साथलिये अर्जुन हस्तिनापुरमें लौट-

कर आये, विजित राजा रहाराजा लोग नानाविध वस्त्र भूषण धन धान्यादि भेटको हाथमें लेकर महाराजा युधिष्ठिरको मिले उसनेभी सभीका यथायोग्य सन्मान किया यज्ञकी अन्तिम आहुतिके पश्चात् श्रीकृष्णदेवकी अनुमति से महाराजा युधिष्ठिरने सम्पूर्ण मण्डलेश्वरोंका यथायोग्य सत्कार-कर उनको अपने अपने देश जाने की आज्ञा दी इसरीतिसे दिग्विजयपूर्वक अश्वमेधयज्ञ सम्पूर्ण होनेसे महाराजा युधिष्ठिरका राज्य निर्भयहुआ।

इतिअश्वमेधपर्व ॥ १४ ॥

अत्यन्त निर्भय होकर धर्मराज राज्य करनेलगा ऐसेही शान्तिपूर्वक १५ वर्ष व्यतीतभी होगये परन्तु समय समयपर भीमके वक्रभाषणसे धृत-राष्ट्र बहुतही दुःखित होगया, भीम उसको सुना सुनाकर यह कहा करता कि, स्यानेलोगोंका लज्जाको नेत्रधर्ममानना वास्तवमें सत्य है, नेत्रहीन पुरुषके लज्जाका लेश नहीं होता, निर्लज्ज पुरुष विना अपनी पेटपूर्तिके उचितानुचित भी कुछ नहीं देखता । इत्यादि भीमके तोदित वचनोंको सुनकर धृतराष्ट्र एकान्तमें आह मार मारकर रोयाकरता जब कभी युधिष्ठिर उसको देखलेता तो वह उसको बहुतही दीनता तथा प्रार्थनापूर्वक आश्वासन कर धैर्य्य देता।युधिष्ठिर कहता कि, हे पितः आप दुर्योधनको! स्मरणकर वृथा खेदित मत हुआकरें, मेरी आपके चरणोंमें दुर्योधनसे भी अधिक भावनाहै भावीही ऐसीथी अन्यथा हम कब अपने भाईको मारा चाहतेथे आपको अब यही उचित है कि, आप अब बीती बातोंको भूलकर एकान्तमें स्वात्म-सुखको अनुभव करें । इत्यादि ऐसेही फिर चौथे पाँचवे मित्रमण्डलको साथ लेकर भीम धृतराष्ट्रके महलमें आता तो उसको सुनाकर दूसरेको कहता कि, हे भाई! भोगोंकी तृष्णा इस जीवको बहुतही निर्लज्ज करदेतीहै,सर्वस्व विनाश-के पीछे तृष्णाही इस जीवके जीवनका हेतु है, समय समयपर तृष्णाही शत्रु-ओंको मित्र तथा मित्रोंको शत्रुरूपसे भी दिखलादेतीहै, एक तृष्णाहीके आधार से मृतप्राय: पुरुषभी जीवितसा दीखपडताहै,वाह!वाह!देवी तृष्णे! तेरी क्याही महिमा है इत्यादि भीमके वचन सुनकर धृतराष्ट्र बीचही बीच जलता रहता

परन्तु अपने दुःखका किसीके पास प्रकाश कदापि नहीं करता ऐसे दुःख कालमें धृतराष्ट्रका समाचार पूंछनेके लिये उसके पास व्यासदेव आये तो उसने अपना सारा हाल उनको निवेदन किया, व्यासजीने धृतराष्ट्रको गंगा-किनारे ऋषिकेशमें या बदरिकाश्रममें रहनेकी सम्मतिदी. धृतराष्ट्र तैयार-हुआ. युधिष्ठिरने मार्गव्ययका प्रबन्ध पूर्णरूपसे करदिया घरछोड़कर प्रथम धृतराष्ट्र कुरुक्षेत्रमें गया वहां जाकर मृतपुत्रोंके नामसे पिण्ड प्रदानभी किये एक वर्षपर्य्यन्त वहां ही निवास किया. सालपीछे युधिष्ठिर फिर मिलनेको कुरुक्षेत्र गया यावत् राज्यवैभवके साथ एक मासभर वहां रहा और श्रद्धाभ-क्तिसे धृतराष्ट्रकी सेवाकर उसकी प्रसन्नता लाभकरी, मासपीछे युधिष्ठिर हस्तिनापुर लौटआया और धृतराष्ट्र, विदुर, संजय, गान्धारी तथा कुन्ती यह पाँचो हरिद्वारको चलेगये. वहां उनको फिर व्यासजी मिले धृतराष्ट्रने बन्धु-दुःख व्यासजीसे कहा तो व्यासजीने उसको गंगाकिनारे लेजाकर सभी बन्धु-वर्गका दर्शनकराया और उपदेशसे भी आश्वासनकिया. ऐसेही व्यासजीके उपदेशोंसे सचेत होकर धृतराष्ट्र. उक्त विदुरादि चारोंके साथ कुटी बाँधकर गंगातीरपर ऋषिकेशमें निवास करनेलगा कुछ दिन वहां रहे तो एकदिन रात्रिको अकस्मात् वनको आग लग उठी उससे सारा वन दग्ध होगया उसीमें धृतराष्ट्र, गान्धारी तथा कुन्ती येह तीनों जलकर जीर्णदेहके दुःखसे मुक्त होकर देवसदनको प्राप्त हुए। विदुर संजय पीछे बचे सो वेह दोनों वहां ही साधुलोगोंके साथ रहकर अपना समय व्यतीत करने लगे। इनका सभी वृत्तान्त नारदजीने पाण्डवोंको आनकर हस्तिनापुरमें सुनाया तो पाण्डवोंके चित्तको अत्यन्त खेदहुआ ऐसी घटनाके पीछे उदास होकर जैसे तैसे १५ वर्षतक युधिष्ठिरने और राज्यकिया।

इति आश्रमवासपर्व ॥ १५ ॥

उधर द्वारकामें यादवोंने एक लड़केको स्त्रीवेष बनाकर उसके पेटपर लोहेकी छोटीसी बटली बाँधकर महर्षि दुर्वासाके सामने करके पूछा कि, ऋषे! इस सुन्दरीके गर्भसे क्या उत्पन्न होगा, दुर्वासाजी समझ गये कि, येह दुष्ट

उद्धत होकर हमारी हाँसी कररहे हैं, उन्होंने झट यही कहा कि, हे बालको! इसके पेटसे यादवोंके सारे वंशके निर्मूल करनेवाला उत्पन्न होगा. ऋषिकी ऐसी क्रोधमयी वाणीको श्रवणकर यादवोंके बालकोंको भारी भय हुआ, आपसमें बैठकर विचार करनेलगे शेषमें सबने यह निश्चय किया कि, इस लोहपात्रको घिसकर समुद्रमें फैंकाजाय तो अच्छाहै, उसी समय उसको घिसना आरम्भकिया सभी घिसडाला शेषमें एक थोड़ासा टुकड़ा बाकी रहा सो वह ऐसेही सागरमें डालदिया परमात्माकी इच्छासे तथा महर्षिके तपोबलसे उस घसे लोहेसे तो प्रत्येकभागसे शर कुशा उत्पन्न हुई और जो शेषरहा बड़ा टुकड़ा एकही फैंकदियाथा वह एक मत्स्यने खाया उसको एक माछी धीवरने पकड़ा खानेकेलिये काटा तो उसके पेटसे वह लोहका फल निकला, उसने तेज चमकीला जानकर अपने बाणके मुखपर लगाया उसीसे प्रतिदिन शिकार करनेलगा, ऐसेही कुछ कालके पीछे उक्त ऋषिके शापको भूलकर एकदिन समुद्रके किनारे जाकर यादवोंने यथेष्ट मदिरा पान करी, मदान्ध होनेके पीछे परस्पर विवाद कर लड़नेलगे तो शस्त्रोंके स्थानमें उसी शर कुशाको उखाड़ २ कर एक दूसरेको मारनेलगे जो कि, उसी लोहचूनसे उत्पन्न हुईथी निदान परस्पर 'सुन्दोपसुन्द' न्यायसे थोड़ेही कालमें सभी यादवोंकी समाप्ति हुई । शेष रहे श्रीकृष्णदेव सो उनकोभी उक्त धीवरने उसी बाणका प्रयोग किया कि, जिसकी मुखीके अग्र वही लोहका हिस्सा लगा था, श्रीकृष्णदेव अपनी इच्छाके अनुसार प्रभासक्षेत्रमें जो कि द्वारकासे तीस चालीस कोस के फैंसले पर है एक पीपलके पेड़के नीचे टाँग पर टाँग रखकर शयन कियेथे; दूरहीसे शिकारअर्थी वधकको श्रीकृष्णदेवका चमकता चरण देखपड़ा उसने हरिणकी आँख समझी, परन्तु था वह कृष्णदेवके पादका पद्म, ऐसे विपरीत ज्ञानसे उक्त लक्ष्य पर वधकने निशाना बनाया वह बाण श्रीकृष्णदेवके चरणमें आकर लगा इसी मिससे महाराज अपने कृत्रिमकायको छोड़कर परम स्वरूपको प्राप्तहुए; पीछे व्याधने समीप आकर बहुतही पश्चात्तापकिया परन्तु फिर बनही क्या सकताथा, महाराजके कृत्रिमशरीरको उसीने सन्मानपूर्वक जलप्रवाह

किया, उधर यादवक्षय तथा कृष्णपरलोक पाण्डवोंने भी सुनपाया, हाहा कार करनेलगे अर्जुनको द्वारकामें भेजा वह श्रीकृष्णदेवकी स्त्रियोंको लेकर हस्तिनापुरमें आताथा कि मार्गमें भीलोंने अर्जुनसे सभी स्त्रियां खोसलीं तो बहुत दुःखी होकर हस्तिनापुर आया तो कृष्णदेवको स्मरणकर हाय! हाय! कर रोनेलगा युधिष्ठिरने कारण पूछा तो अर्जुनने कहा कि, हे राजन् श्रीकृष्ण देवकी कृपासे जिस मैंने सारी पृथिवीका दिग्विजय कियाथा तथा उसीकी सहायतासे जिस मैंने अनायासही अपने शत्रु दमनकियेथे। एवं जिसकी कृपासे मैंने जहां तहां प्रतिष्ठा लाभकरीथी ।

सोऽहं नृपेन्द्र रहितः पुरुषोत्तमेन ।
सख्या प्रियेण सुहृदा हृदयेन शून्यः ॥
अध्वन्युरुक्रमपरिग्रहमङ्गरक्षन् ।
गोपैरसद्भिरबलेव विनिर्जितोऽस्मि ॥ २० ॥

हे नृपेन्द्र ! वही मैं अपने सखे प्यारे सुहृद् तथा हृदयरूप पुरुषोत्तमसे रहितहुआ हृदय शून्य अर्थात् मरे सदृश होगयाहूं. हे राजन् ! मार्गमें महाराजके स्त्रीवर्गकी रक्षाकरते हुए मुझको महामूढ गोपाल भीलोंने स्त्रीकी तरह जीत लिया और षोडश सहस्र स्त्री जो कि मैं साथ लिये आताथा सभी खोसलीं ॥ २० ॥

तद्वै धनुस्त इषवः स रथो हयास्ते ।
सोऽहं रथी नृपतयो यत आनमन्ति ॥
सर्वं क्षणेन तदभूदसदीश रिक्तम् ।
भस्मन्हुतं कुहकराद्धमिवोप्तमूष्याम् ॥ २१ ॥
भागवत—अ० १५ स्कं० ॥ १ ॥

हे राजन्! यह मेरा धनुषभी गाण्डीव वहीहै और इसमें चलानेवाले बाणभी वही हैं वही रथ तथा उसके घोड़ेभी वहीं है और उनके चलानेवाला रथीभी मैं वही हूं इसीकारण समुदायके प्रभावसे सभी राजा लोग चारोंतरफ से नम्र किया करतेहैं परन्तु यह सभी एक श्रीकृष्णदेवसे विना अर्थात् उसके

न होनेसे एक क्षणमात्रमे ऐसे असद् होगये कि मानों जैसे भस्ममें हवन करना या किसी मायावी पुरुषसे ऋद्धि लाभकरना अथवा ऊषर भूमिमें बीजबोना सर्वथा निरर्थकही होताहै २१ अर्जुनके इत्यादि विलाप युक्त अनेक वचन सुनकर महाराज युधिष्ठिरने अर्जुनको बहुतही धैर्य्य बोधनकिया परन्तु श्रीकृष्णदेवके वियोगाग्निसे दग्धहुआ अर्जुन का हृदयकमल फिर क्योंकर प्रफुल्लित होसकताहै एक थोडेही दिनोंमें बन्धुवियोगसे व्यग्र हुए पाण्डव आपसमें एक दूसरेको उपरामताकी बातें सुनाने लगे, श्रीकृष्ण जैसे महापुरुषके वियोगसे पाण्डवोंका सांसारिक सुखसे उदास होना न्यायहीथा अन्तमें उदास होकर युधिष्ठिरने राज्यतिलक अपने पौत्र तथा अभिमन्युके पुत्र परीक्षित को दिया ।

इति मौसलपर्व ॥ १६ ॥

पाण्डवोंने उदास होकर द्रौपदी समेत अपनी राजधानी हस्तिनापुरको छोड़दिया और सारे भारतमें यथेष्ट विचरने लगे, तीर्थ यात्रा करते हुए अन्तमें हिमालयको चलेगये परन्तु तथापि श्रीकृष्णदेव वियोगाग्निसे तप्त पाण्डवोंको हिमालयभी क्या करसकताहै महाबरफमें चलते २ शेषमें आपसमें भी उदासहुए एक दूसरेकी सारतक कोई नहीं पूछता है, सबसे आगे युधिष्ठिरहैं और सबसे पीछे द्रौपदी हैं पादत्राणसे विना पैदल चलनेकाहै और चलनेवाले राजकुमार हैं, मार्गहिमालय जैसे विकट पर्वतका है फिर उसमें भी साथमें एक राजकुमारिकाका निर्वहनहै यदि ऐसी दशाके होतेभी पाण्डव आपसमें उदास न होवें तो परस्पर मुखजोड़के भी क्या करसकते हैं ऐसेही चलतो २ सबसे पाहिले, द्रौपदी बरफमें गिरपड़ी भीमने युधिष्ठिरसे उसके गिरनेका कारण पूछा तो धर्मने कहा कि. इसका नीतिपूर्वक बर्ताव न था किन्तु अर्जुनसे सबसे अधिक प्रेम रक्खा करतीथी, उसके पीछे सहदेव गिरा तो फिर भीमने धर्मसे पूछा तो धर्मने सहदेवको बुद्धिका अभिमान बतलाया अर्थात् सहदेव मानताथा कि, मेरे जैसा बुद्धिमान् संसारमें नहीं है. ऐसेही उसके पीछे नकुल गिरा,

फिर अर्जुन गिरा, पीछे भीम गिरा तो भीमने सबका कारण पूछा, धर्मने नकुलको अपने सौंदर्य्यका अभिमान बतलाया अर्जुनको एकदिन शत्रु-वधकी प्रतिज्ञाहानिरूप दोष कहा और भीमको कहा कि, तुम खान पाना-दिके समय सबसे अधिक भाग लिया करतेथे इन पांचों दोषोंसे पांचोंही पीछे गिरकर बरफमें गलगये और एक धर्मही अकेला दूरतक आगेको चला-गया, ऐसे विकट स्थलमें एक कुत्तेके सिवाय धर्मका साथ किसीने न दिया, वह कुत्ताभी धर्मकी परीक्षाके लिये धर्महीका रूपान्तरथा, दूरतक जानेसे इन्द्र अनेक देवगणके साथ विमान लेकर आगेसे राजा युधिष्ठिरको लेनेको आया, विमानमें उपविष्ट होकर स्वर्ग प्रस्थान की प्रार्थनाकरी तो धर्मने कहा कि, मेरे चारभाई और एक द्रौपदी स्त्री येह पांच पीछे हैं, उनके आनेसे चलेंगे, इन्द्रने कहा, हे राजन् ! आपके भाई सहित द्रौपदीके वहां जापहुंचे केवल आपहीकी प्रतीक्षाहै. धर्मने कहा तो यह कुत्ताभी तो हमारे साथहीहै, इन्द्रने कहा कुत्तेके जानेकी वहां आज्ञा नहींहै, धर्मने कहा तो ऐसे नियमित स्थानमें मेरेको जानेकी आवश्यकता नहीं है इन्द्रने कहा उस उत्तम स्वर्गभूमिमें आपके पुण्यपुंजका आपको विशेष भोगहोगा, धर्मने कहा तुच्छ भोग लोभ जो कि सदा कदापि नहीं रहसकता उसके पीछे मैं अपने साथीका साथ छोड़ना अपने धर्म तथा न्यायसे विरुद्ध समझताहूं । इन्द्रने कहा महाराज कुत्तेका पुरुषसे क्या साथ है, धर्मने कहा साथ तो स्पष्टहीहै परन्तु पुरुष तथा कुत्तेका परस्पर विरोधभी तो कुछ नहीं, इन्द्रने कहा आपको अकेले जाना न स्वीकार हो तो मैं जाऊं धर्मराजने कहा मैं कुत्तेको छोड़कर नहीं जासकता आप जाइये ऐसा सुनकर इन्द्र चलनेही लगाथा जो उसी समय धर्मस्वरूप कुत्तेने अपना वास्तव स्वरूपधारण किया और धर्मस्वरूप धर्मपुत्र युधिष्ठिरको कंठसे लगालिया ।

इति महाप्रस्थानपर्व ॥ १७ ॥

इन्द्रादिदेवोंसे सन्मानित तथा उक्त विमानारूढ होकर धर्मपुत्र स्वर्गमें

पहुँचा वहां दुर्योधनको महा ऐश्वर्य्यमें मग्न देखा युधिष्ठिरने पूछा मेरे भाई भीमादि कहां हैं, इन्द्रने कहा वेह तो यहां पर नरकविशेषहै उसमें हैं युधिष्ठिरने उनको देखना चाहा इन्द्रने दिखलादिये परन्तु कहा कि, आप *को यहां रहनेकी आज्ञा नहीं आपको दुर्योधन सदृश ऐश्वर्य्य भोगका हुकमहै,* धर्मने कहा, ऊपर जानेकेलिये हुकमकी पाबन्दी हो सकती है कि, अपने अधिकारसे कोई अनुचित अधिक न लाभकरले परन्तु नीचे रहनेके लिये हुकमकी कोई पाबन्दी नहीं है जो चाहे अपने दर्जेसे नीचे यथेष्ट रह सकताहै इसलिये मुझे ऐसे स्वर्गकी दरकार नहीं है जहां मेरे भाई नहीं है. अपने प्यारे भाईयोंके साथ रहनेसे मेरेको नरकभी स्वर्गसे सौगुण अधिक सुखका जनकहै, युधिष्ठिरकी ऐसी गम्भीर गिरा श्रवणकर धर्म बहुतही प्रसन्नहुआ और कहा कि,हे पुत्र ! यह तेरेको नरकप्रदर्शन तेरे मिथ्याभाषण मात्रका फल है । महा पुण्यात्मा तथा धार्मिक तेरे भाई कदापि नरकको नहीं जासकते अब मैं आपको यही आशीर्वाद देताहूं कि, तुम अपने भाइयोंके साथ दीर्घ कालतक स्वर्गसुखको अनुभव करतेहुए शेषमें परमधामको प्राप्त होवो ।

इति स्वर्गारोहणपर्व ॥ १८ ॥

इसरीतिसे पण्डितजी महाराज कर्मका वेग राजा महाराजाओंकी भी बुरी दशा करडालताहै तो इतर जीवोंकी तो कथाही क्याहै ऐसे कहकर राजकुमारने राजसभामें अपने समुदित अर्थका बोधक एक छन्द पढ़ा सो वह यह है—

छप्पय ।

कर्मवेग श्रीरामचन्द्र लख वनको लीनो ।
कृष्ण मात पितु कर्मवेग कारागृह दीनो ॥
हरिश्चन्द्र नृप कर्मवेगने कीनो दासा ।
चन्द्रहास प्रियपाल मदनको कीनो नासा ॥
कहों कहांलों कर्मकी पृथा पुरुष खोवे सभी ।
धूर मिलें साधन सकल कर्मवेग होवे जभी ॥ १ ॥

इति तृतीयविश्राम ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थ विश्राम ४.

राजकुमारके मुखसे पूर्वोक्त गर्जायमान गिराको श्रवणकर पण्डितने मनमें विचारा कि इस अति दृढविश्वासी राजकुमारके निश्चयको व्याचालन करना साधारण कार्य्य नहीं है। (पं०) हे राजकुमार! यह पूर्वोक्त आपका यावत् कथन शास्त्रतत्त्वको न जानकरहै अतएव अविचारित रमणीयहै। सावधान होकर शास्त्रतत्त्वको श्रवणकर जो तेरेको निःसन्देह बोध होवे। प्रथम कर्म कर्म जो तुम पुकारतेहो उन कर्मोंका भेद श्रवणकर वह कर्म प्रथम संचित, क्रियमाण, प्रारब्ध भेदसे तीन प्रकारके हैं। उनमेंभी जो पूर्व अनेक जन्म जन्मान्तरमें करे वर्तमानकालमें फलके अननुमुखहैं वे संचित कहे जातेहैं। और जो वर्तमान जन्ममें कियेजावें वे क्रियमाण कर्महैं। एवं वर्तमान शरीरमें फलोन्मुख कर्मोंका नाम प्रारब्धहै। उनमेंभी संचितकर्म शुभाशुभ भेदसे दो प्रकारके हैं। और क्रियमाण कर्मभी विहित निषिद्ध भेदसे दो प्रकारकेहैं। पुरुषप्रवृत्तिके उद्देशसे वेदादि बोधितक्रिया विशेषका नाम विहित कर्महै ऐसेही पुरुषकी निवृत्तिबोधक वेदादि कथितक्रिया विशेषही निषिद्ध कर्महैं। उनमेंभी नित्य नैमित्तिक काम्य प्रायश्चित्तिक भेदसे विहित कर्म चार प्रकारके हैं। जिनके न करनेसे पापहो और करनेसे फलविशेष न होवे, वे नित्यकर्म हैं जैसे स्नान सन्ध्या वन्दनादि जिनका किसी निमित्त विशेषको लेकर विधान होवे वे कर्म नैमित्तिक हैं। जैसे दान श्राद्धादि अथवा अवस्थासे या जातिसे या आश्रमसे या विद्यासे या धर्मसे या ज्ञानसे वृद्धपुरुषके आगमनसे उत्थानादि। इनमें पूर्व पूर्वसे उत्तर उत्तरको अधिक उत्तम लिखाहै, एवं फलार्थविहित क्रियाविशेषका नाम काम्यकर्महै जैसे वृष्टिकामनावाले पुरुषके लिये शास्त्रविहितकारीरी यागादि हैं ऐसेही पापनिवृत्तिनिमित्त शास्त्रबोधित क्रियाविशेषका नाम प्रायश्चित्त कर्म हैं जैसे अभक्ष भक्षणसे वा अपेय पानसे द्विजको कृच्छ्रचान्द्रायणादि ऐसेही प्रायश्चित्त कर्म साधारणासाधारणभेदसे पुनः दो प्रकारका है। साधारण जैसे–यावत् पाप निवारणार्थ गंगास्नान ईश्वरोपासनादि। असाधारण जैसे·

कृच्छ्रचान्द्रायणादि । (राजकु०) पण्डितजी महाराज मेरे चित्तमें थोड़ीसी शंकाहै यदि कहो तो बीचहीमें पूँछलूं । (पं०) हे प्रिय! कैसी वह शंकाहै पूंछिये, (राजकु०) महाराज क्या गंगास्नानसे भी पाप दूरहोतेहैं (पं०) अवश्य होतेहैं क्यों कि, शास्त्रमें विधानहै। (राजकु०) महाराज क्या युक्तिशून्य शास्त्रको भी आप सत्यही माना करतेहैं । (पं०) कभी नहीं । (राजकु०) तो फिर सावयवगंगाजलसे निरवयवपापोंकी निवृत्ति कैसे ? सावयवपदार्थसे सावयवका तथा निरवयवसे निरवयवका विनाश लोकप्रसिद्ध है जैसे दण्डादिसे घटादिका या ईश्वर स्मरणसे पापोंका इत्यादि सावयव नाम हिस्सोंसे बनेहुए कार्य्यका है । तथा निरवयव नाम विभाग शून्यका है । (पं०) हे राजकुमार ! सावयवसे सावयवपदार्थकी ही निवृत्तिका नियम नहीं है; देखिये दण्डसे घट तथा उसके रूप दोनोंका विनाश होताहै तहां रूप निरवयव है, ऐसेही गंगाजलभी सावयव शरीरके मलको तथा निरवयव पाप इन दोनोंको निवारण करसकताहै । ऐसेही निरवयवसे भी निरवयवका तथा ~~निरवयव~~ सावयव दोनों का विनाश होसकताहै । जैसे स्वामीके निरवयव शब्दसे सेवककी निरवयव विपरीत क्रियाका अथवा मंत्रादि निरवयव शब्दोंसे निरवयवसर्पादि विष तथा सावयव शोथ इन दोनोंका विनाश देखनेमें आताहै । ऐसेही सावयवसे केवल निरवयवका विनाशभी हो सकताहै । जैसे—औषधी सेवनसे ज्वरादिका । इस रीतिसे अनेक प्रकारका नाश्य नाशक भाव इस विचित्र संसारमें प्रतीत होताहै । उसमें भी जिसमें शास्त्ररूप दृढ प्रमाण मिलसके उसका न मानना भूलके सिवाय और क्या कहसकतेहैं। (राजकु०) आपके उदाहरण कथनसे तो मंत्र यंत्रादि में भी कारणता प्रतीत होतीहै अर्थात् मंत्र यंत्रादिभी कार्य्यकर प्रतीत होतेहैं । (पं०) लोकप्रसिद्ध पदार्थ का किसी एकके न माननेसे अभाव नहीं होसकता, आर्य्यलोग कुरानको तथा यवनलोग पुराणको नहीं मानते क्या वे नहीं हैं ? (राजकु०) गंगा जलसे क्या सर्वसाधारणके पाप दूर होतेहैं या कि किसी अधिकारी विशेषके ? यदि सर्व

साधारणके कहो तो अति अन्यायकी वार्ता है, क्योंकि ऐसे तो धर्मद्वेषी यवनादि भी गंगास्नानादि करके अनायासही आर्य्य पदको लाभ करसकतेहैं। (पं०) हे प्रिय! संसारमें पदार्थ प्रायः दो प्रकारके प्रतीत होतेहैं । केचित् वस्तु शक्तिगम्य हैं । जैसे अपनी शक्तिसे अधिक विष भक्षणानन्तर प्रबल औषधी न मिलनेसे प्राणीमात्रका मरणही होताहै यथा जल वा अग्नि सबको शीत तथा उष्णही प्रतीत होतेहैं । अथवा सुखकी इच्छा प्रत्येक प्राणीके चित्तमें सदृश विराजमानहै इत्यादि । और केचित् आप्त उक्त विश्वास गम्य हैं । जैसे--पाप, पुण्य ईश्वरसत्त्व वेदादि पुस्तकोंमें प्रामाण्य इत्यादि, इनसे फलाफल सबको नहीं होता, किन्तु यथार्थ वक्ताके वचनपर जिसको विश्वासहै उसीको फल होसकताहै दूसरेको नहीं, जैसे–एकही शीत-उष्णसहनरूपा क्रियासे संयमीको सिद्धि आदि सामर्थ्य तथा शरीर त्यागानन्तर शुभगति प्राप्त होतीहै । और असंयमीको केवल शरीरक्लेश मात्रही होताहै । ऐसेही श्रद्धा विश्वासयुक्त पुरुषको गंगास्नानादिसे पापनिवृत्तिरूप फल अवश्य होताहै । तथा श्रद्धाहीन पुरुषभी शारीरिक मलापहरण कर स्वच्छताको लाभ करसकताहै । यदि कोई यवनभी कदाचित् आप्त उक्त उपदेशसे श्रद्धा भक्तियुक्त होय तो उसकेभी पाप अवश्य दूर होसकतेहैं । जिसकी श्रद्धा भक्ति नहीं है उसके नहीं होते। (राजकु०)आपने कहा सो मैंने जानलिया अब अकृतमें कहिये। (पं०) हे राजकुमार! पूर्वोक्त यावत् कर्मोका भेद पुरुष-प्रयत्नजन्यहै । संसारमात्रमें कोईभी ऐसी विहित वा निषिद्ध क्रिया नहीं हैं जो कि, पुरुषप्रयत्नसे विना होसकें । और प्रयत्नहीका नामान्तर उद्योग है । जिसको तुम कर्मवेग नामसे पुकारतेहो वहभी इसी जीवका पूर्वकृत उद्यो-ग है पूर्वउद्योगसे उत्पन्न हुए फलोन्मुख कर्मोंको तुम प्रबल प्रबल पुकारतेहो क्या कदापि सुयोग्य पिताके विद्यमान होते पुत्रको स्वाराज्य होसकताहै ? प्रारब्धकर्मउद्योगहीसे जन्मलाभकर किंचित् काल स्थायी होय सदा एक रस उद्योगको कदापि नहीं दबा सकते । प्रारब्धकर्मोंका भोगानन्तर

नाश होताहै इसलिये किंचित् काल स्थायी हैं और उद्योगजीवात्माका गुण जन्म जन्मान्तरमें भी तुल्यरूपसे विद्यमान रहताहै. याते प्रारब्धसे प्रबल है और पूर्व जो आपने कर्मवेगमें उदाहरणरूपसे महाराज नलका तथा पाण्डवोंका उपाख्यान सुनाया वहभी विचार करनेसे हमारेही पक्षका साधक प्रतीत होताहै, हमको वहां भी उद्योगही की न्यूनता प्रतीत होतीहै यदि और विद्याओंकी तरह महाराजा नलने द्यूतविद्यामें भी उद्योगसे अभ्यास किया होता तो विमातृज भ्रातासे द्यूत खेलकर पराजित कैसे होता किन्तु जैसे पीछे द्यूतविद्या को सीख कर उसी महाराज नलने फिर उस विमातृजको द्यूतहीमें पराजित किया, वैसे प्रथमही करलेता याते द्यूतविद्याअभाव प्रयुक्त उद्योगकी न्यूनता स्पष्टही प्रतीत होतीहै. ऐसेही महाराज युधिष्ठिरभी जैसे शस्त्रविद्यामें अग्रगण्यथे वैसेही द्यूतविद्यामें भी उद्योगी होते तो क्या दुर्योधनादिसे द्यूतविद्यामें पराजित होते? कदापि नहीं, याते हे राजकुमार! यह दृढ़ निश्चयकर कि जहां जहां यत्न करनेसे भी कार्य्यकी सिद्धि यथावत् नहीं होती वहां वहां उद्योगही की न्यूनताहै जिन अल्पबुद्धि पुरुषोंको स्वकार्य्यसिद्धिके लिये यथावत् प्रयत्न करना नहीं आता उन आलसी निर्लज्जोंका कार्य्य शेषमें यह उत्तर है कि (जो हमारी प्रारब्ध) वस्तुतः प्रारब्ध कुछ वस्तु नहीं उद्योगकी न्यूनताही को अशिक्षित लोग प्रारब्ध शब्दसे पुकारा करतेहैं ।

छप्पय ।

ध्रुव बालक उद्योगसाथ निश्चल पद पायो ।
कर उद्योग नृसिंह [illegible]ाद बचायो ॥
उद्यम कर गज ग्राह क[illegible] निज दास उबारयो ।
कर उद्यम किल कंस [illegible]श को मूल उखारयो ॥
इसी तौर केतक गिनों दासन हित हरि कीन जो ।
विन उद्यम नहिं कछु कियो आन जीवकी कथाको ॥ २ ॥

ऐसेही हे राजकुमार! यदि उद्योग कुछ वस्तु न होता तो पाँच वर्षका बालक ध्रुव अपने पिता उत्तानपाद राजाकी गोदसे विमाताके उठानेसे कैसे

क्रुद्ध होता और अपनी मातासे कैसे पूछताकि, हे मातः! बडं कैसे बनाजाताहै और उसको माता कैसे कहती कि, हेपुत्र! तपश्चर्य्यासे उच्चपद प्राप्त होताहै। औ वह कैसे मातृवचनपर विश्वासकर उच्च निश्चलपदको प्राप्त होता, यदि तुम्हारी तरह प्रारब्ध परही विश्वासी होतातो उसके भी यही कहने योग्यथा कि,बिमाताने हमको पिताकी गोदमेंसे उठादियाहै क्या करें हमारी प्रारब्ध, हे राजकुमार! उद्योगी पुरुषके मुखसे यह शब्द कदापि नहीं निकलता कि, हमारी प्रारब्ध किन्तु कार्य्यकी पूर्णरूपसे सिद्धि तक अपने उद्योगहीकी न्यूनता मानता चलाजाताहै. यदि प्रारब्धही मुख्य होती तो वैसेही परमात्माभी जानते कि, हमारा भक्त प्रह्लाद स्वपितासे नानाविध क्लेशको प्राप्त होरहाहै क्या करें उसकी प्रारब्ध तो कैसे अपने प्यारे भक्तकी नृसिंहरूप होके रक्षा करसकते याते परमात्माभी नृसिंहरूपसे उद्योगहीकी प्रधानता बोधन करते प्रतीत होते हैं. ऐसेही गजभक्तका ग्राह काटना तथा कंसादिका नाश करना भी भगवान्का उद्योगहीकी प्रबलताको बोधन कररहाहै. हे राजकुमार! उद्योगियोंकी पृथा कहांतक कहें, आपने एक टिट्टिभ पक्षीकी आख्यायिका नहींसुनी जो कि प्रतिदिन समुद्रके किनारेपर रहा करताथा और दैवात् उसके बच्चे समुद्रने बहालिये तो उसने प्रजा प्रेमाकुल होकर समुद्र शोषणकरनेकी प्रतिज्ञा करली तो वे दोनों पति पत्नी अपने पक्ष समुद्रमें वारंवार भिगोकर धूलिमें लोटनेलगे बहुतसे पक्षिगणके उपदेश करनेसे भी वारण न हुए तो कई एक पक्षी उसकी सहायताभी करने लगे पक्षी प्रजाका दुःखवृत्तान्त गरुड़ भगवान्कोभी श्रवण हुआ श्री[illegible]कर समुद्रकिनारे अनेक पक्षिगणको व्याकुल देखा गरुड़ने समुद्रको एक [illegible]क्षकी झपट लगाई तो पीडितहो मूर्तिमान् बन हाथजोड़ आगे, आन खड़ा[illegible]आ, कहा कि, आज्ञा कीजिये दासने कौन अपराध करा है, गरुड़ने कहा कि, हमारी प्रजा तुम्हारे सम्बन्धसे क्यों दुःख उठारहीहै तो उसी कालमें समुद्रने टिट्टिभ पक्षीके बच्चे लाकर दिये और अति दीनतासे गरुड़जीके आगे अपनी न्यूनता निवेदन करी. इसीरीतिसे हे राजकुमार! यदि उद्योगी पक्षीभी महान् भारी कार्य्यको करस-

कर्तेहैं तो पुरुष उद्योगीसे न होंगे? इसमें क्या कहनाहै । उद्योग पूर्ण तौरपर होना चाहिये कार्य्य अवश्यही होताहै । देखिये पाचक पुरुष प्रतिदिन उद्योगसे पाक बनाताहै, यदि कुछ बीचमें प्रमाद न करे तो कदापि मन्द तथा अभक्ष्य नहीं बनता. ऐसेही शिल्पविद्या कुशल पुरुष प्रतिदिन अनेक प्रकारके विचित्र कार्य्य बनाताहै । यदि बीचमें प्रमाद न करे तो सर्वथा सर्वांगपूर्णही उतरतेहैं । वैसेही कृषिकार प्रतिवर्ष कृषी पृथिवीमें बोतेहैं. प्रमाद न होय तो सदाही शुभ फला करतीहै. प्रमादका कारण अनुद्योगी पुरुषके अभ्यासकी न्यूनताहै । और उद्योगी अभ्यासी पुरुषको तो प्रमाद होना सम्भवही नहीं ।

इति कर्मविभागे चतुर्थो विश्रामः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमो विश्रामः ५.

(राजकु०) आपका कथन यथार्थ है परन्तु कई एक स्थलों में व्यभिचारभी है जैसे पाचक पुरुष प्रतिदिन सावधानीसे पाक बनाताहै परन्तु जिसदिन खानेवाले पुरुषकी प्रारब्धमें वह भोजन न होय उस दिन कुत्सित जीवादिके सम्बन्धसे अवश्य अभक्ष्य होही जाताहै ऐसेही शिल्पकारभी अनेक प्रकारके कार्य्य बनाताहै दैवात् किसी कार्य्यका विनाशभी होताहै. ऐसेही जब कृषिकारके भाग्य मन्द होतेहैं तो उसकी खेतीभी वर्षासे या (जलोपल) गड़ोंसे नष्ट होती है अथवा मन्द होतीहै इसलिये जीवोंकी प्रारब्धभी कुछ वस्तु अवश्य मानने योग्यहै ।(पं०) हे राजकुमार! तैंने हमारे पूर्वोक्त सिद्धान्तपर सम्यक् दृष्टि नहीं दी अन्यथा ऐसी शंका न होती हम जो यह कह चुके कि, जहां जहां कार्य्यका प्रतिरोध होताहै वहां वहां ही सम्यक् प्रयत्न नहीं किया जाता भोजनस्थलमें यदि पाचक पुरुष सर्वथा सावधान रहे तो काकादि कुत्सित जीवोंसे दूषित होनेकी कदापि सम्भावनाभी नहीं होसकती और शिल्पविद्याके उदाहरण शिल्पविद्यानिपुण यूरुपियन लोग साक्षीहैं उनसे पूछ देखो यदि वेह कहें कि आधे कार्य्य हमारे सुधर जातेहैं और आधे प्रारब्धके वेगसे विनष्ट होजाते हैं तो हमभी

मान लेंगे कि. प्रारब्ध बड़ी प्रबलहै, परन्तु यदि वे कहें कि एकही कार्य्यको हमने एक सहस्रवार किया तो अच्छाही होता रहा पर उसके पीछे एकबार फिर किया तो अच्छा न बना हम अमुक बातसे चूक गये इत्यादि तो ऐसे स्थलमें प्रारब्ध विचारीने क्या किया. वे तो अपनी चूक आपही मानलेतेहैं (और चूक होनेमें अभ्यासकी न्यूनताही कारणहै) और अभ्यास उद्योगहीसे होताहै इसलिये उसीको विजयी मानता उचित है । परन्तु शोकहै कि विदेशी लोग उसीको अपनी भूल मानकर आगेके लिये उस भूलसे बचतेहैं और हमारे देशी लोग उसीको अपनी प्रारब्ध मानकर वारंवार उसी मूर्खतामें पचतेहैं, विचारणा चाहिये कि. यदि कोई कुशल धानुष्कपुरुष एकही लक्ष्यको सहस्रबार भेदन करचुका होय उसके पीछे एकबार कदाचित् उसका निशाना चूकजाय तो उस चूकनेमें उसका प्रमादही कारण है किन्तु अति असम्भावित शशशृंगायमाण प्रारब्ध नहीं है शेष रहा वर्षादिसे कृषि आदिका प्रतिरोध सो वह भी विचारणीयहै कि वर्षाका अत्यन्त भावाभाव खेतीकी प्रारब्धसे है। (१) अथवा खेतीवालेकी प्रारब्धसे है (२) वा जिन जीवोंका वह कृषिजीवनहै उनकी प्रारब्धसेहै (३) वा जो जीव वर्षाके भावाभावसे प्राणरहित होजातेहैं उनकी प्रारब्धसे है (४) किंवा जिन जीवोंको वर्षा सत्त्वासत्वसे अत्यन्त सुख या दुःख हुआ है उनकी प्रारब्धसे है (५) अथवा राजाके पुण्य पापप्रयुक्त वर्षादिका अत्यन्त भावाभाव है (६) किंवा यावत् समुदायकी प्रारब्धसे है (७) यदि किसी एककी प्रारब्धसे कहो तो विनिगमनाविरहा[1] अर्थात् तुम जिसकी प्रारब्धसे कहो तो उससे दूसरेकी हम कहेंगे तो तुम्हारे पास अपने पक्षकी सिद्धिके लिये कोई प्रबल युक्ति नहीं है यदि कहो कि, यावत् प्राणियोंकी प्रारब्ध मिलकर वर्षादि कार्य्य होते है तो यह भी ठीक नहीं एक उपादानकारणसे वा निमित्तकारणसे एक कालमें विचित्र नानाकार्य्यका उद्भव शास्त्रसिद्धान्तसे विरुद्ध है। तथा लोकमें भी अदृष्टचरहै प्रकृतमें यावत्

---

१ निश्चित एक पक्षको कहनेवाली युक्तिका नाम विनिगमनाहै उसका विरह अर्थात् अभाव ।

जीवोंके अदृष्ट मिलकर वर्षादि द्वारा कतिपय जीवोंको सुख वा दुःखके हेतुहैं ऐसा कथन है परन्तु यह पूर्वोक्त विचारसे श्रद्धेय नहीं है। इसलिये हे प्रिय-दर्शन! आपको यह अवश्य निश्चय करना चाहिये कि उद्योगके आगे प्रारब्ध कुछ वस्तु नहीं है केवल आलसी अनभ्यासी लोगोंकी लज्जाका प्रतिरोधक कल्पित शब्द मात्रहै, शीत, उष्ण, वर्षा वायु आदि सर्वदा अपने समयके अनुसार परमेश्वरकी आज्ञा तथा इच्छा अनुरोधसे अनायास होते रहते हैं सामान्य रूपसे किसी २ शास्त्रकारने ऐसे स्थलमें जीवोंके अदृष्टभी सहकारी मानेहैं परन्तु उद्योगकी प्रधानता सर्वतंत्रसिद्धान्त है। (राजकु०) वर्षादिके करनेमें किसका उद्योग है। (पं०) इस देशमें तो हमारे "यज्ञाद्भवति पर्जन्यो" [गीता-श्लो० १४-अ ३] इत्यादि शास्त्रवचनोंसे पुरुषकाही उद्योगहै क्योंकि इसका नाम शास्त्रमें उद्योगभूमि है और देशान्तरोंमें सर्वत्र सर्वान्तर्यामी परमात्माका या तदधीन देवोंका उद्योगहै साधारणरूपसे उसमें जीवोंके अदृष्टभी कारणहैं। (राजकु०) यदि इस देशमेंभी ईश्वरहीका या तदधीन देवोंके प्रयत्न से वर्षादि मानलिये जायँ तो हानि क्याहै। (पं०) जिस वार्ताका शास्त्रने हितपूर्वक उपदेश कियाहै उसको देशान्तरोंके उदाहरणोंसे न मानना अपनी मूर्खताहै ऐसे तो पर्वतोंके स्वयं झरने झरते देखकर मरुभूमिके मनुष्योंको भी जलार्थ प्रयत्नशील नहीं होना चाहिये। और ऐसे विषयमें उनको किसीका कहना न मानना चाहिये। परन्तु ऐसा देखने में तो नहीं आता किन्तु जैसा जहां उचितहै वहां वैसा उपाय सब कोई करताहै इसरीतिसे बोधक शास्त्रभी व्यर्थ नहीं बनता क्योंकि वह इस देशकी आवश्यकताका बोधकहै। (राजकु०) पूर्व आपने प्रारब्धका भोगानन्तर नष्ट होना कहा और उद्योग आत्माका गुण सर्वदा विद्यमान रहनेवाला माना तो क्या उद्योगकी तरह प्रारब्ध आत्माका गुण नहीं है?। (पं०) हे प्रिय! प्रारब्ध नाम अदृष्ट का है उसको भी तंत्रकारोंने आत्माका गुणही मानाहै। (राजकु०) तो फिर निर्बल सबलमें प्रयोजक कौन रहा? (पं०) उनका स्वरूपही प्रयोजक है। देखिये प्रारब्धको कदापि कोई

किसी इन्द्रियसे प्रत्यक्ष नहीं करसकता. इसीलिये तंत्रकारोंने उसको सर्वथा अतीन्द्रिय पदार्थ मानाहै । और यत्नपुरुषकी प्रवृत्ति निवृत्ति तथा जीवन योनिभेदसे तीन प्रकारका है । रागबुद्धिवाले पदार्थमें पुरुषका प्रवृत्तिरूप प्रयत्न होताहै । और द्वेषबुद्धिवाले पदार्थमें निवृत्तिरूप पुरुषप्रयत्न होताहै । शेष रहा जीवन कारण सो वह पुरुषके श्वास प्रश्वासकी गतिसे अनुमेयहै अर्थात् जीवके श्वास प्रश्वासोंको भीतर बाहर खैंचने फेंकनेवाला कोई पुरुषप्रयत्न अवश्यहै । एवं प्रयत्नकी तीन अंशोंमें दो प्रत्यक्ष हैं और एक अनुमेय है और अदृष्टकी शुभाशुभ भेदसे दो अंशें हैं सो वे दोनोंही अनुमेय हैं याते निर्बलहैं । प्रत्यक्षप्रमाण, अनुमानप्रमाणसे ज्येष्ठ होनेसे प्रबलहै इसीलिये उसके विषयपदार्थभी अनुमित पदार्थोंसे प्रबलही हैं । (राजकु०) पूर्व आपने प्रयत्नको नित्य मानाहै और प्रारब्धका भोगानन्तर नाश मानाहै । सो यह मन्तव्य आपका यथार्थ नहीं प्रतीत होता, क्योंकि दोनों आत्माके विशेष गुणहैं । इसलिये प्रायः तुल्य स्वभाववाले होने चाहिये । (पं०) हमारा नित्यानित्य माननेसे यह तात्पर्य्य नहींहै कि, एकका विनाश होताहै और दूसरेका होताही नहीं किन्तु यह तात्पर्य्यहै कि, जैसे- भोगानन्तर प्रारब्धसे प्रारब्धका नाश होताहै वैसेही यद्यपि तत्तत् कार्य्यो- नन्तर तत्तत् पुरुषप्रयत्नकाभी विनाश होता है । तथापि प्रयत्नत्वेन प्रयत्न मात्रके विनाशका सम्भव नहीं है क्योंकि ईश्वर प्रयत्नको तंत्रका- रोंने नित्य मानाहै और प्रारब्ध ईश्वरकी किसी शास्त्रकारको अंगी- कार नहींहै । इसलिये प्रयत्न नित्य भी है । (राजकु०) महाराज हमारा तो जीवके प्रयत्न तथा प्रारब्धमे बिचारहै । आप ईश्वरको उदाहरणमें क्यों लातेहैं । (पं०) हे प्रिय ! विचार तो हमभी जीवमात्रमें ही करतेहैं यह तो केवल तेरेको प्रारब्धसे अधिक देश ईश्वरमें प्रयत्नका स्वाराज्यमात्र दिख- लायाहै । तात्पर्य्य यह कि अधिकदेशमें स्वाराज्यवाला राजा जैसे न्यून देशवर्ति राजासे निर्बल कदापि नहीं होता अर्थात् सर्वथा प्रबलही होताहै वैसेही अधिक देशवृत्ति प्रयत्नभी कदापि कल्पित प्रारब्धसे निर्बल नहीं होसकता किन्तु सर्वथा प्रबलही रहता है । (राजकु०) महाराज अनेक प्राणी जन्मान्ध जन्मपंगु जन्मबधिर जन्मकुष्ठी होतेहैं । और अनेक प्राणि-

योंको यही रोग जन्मान्तर कुछ काल पीछे ग्रस लेतेहैं, ऐसे स्थलमें विना पूर्वप्रारब्धसे उसमें कौन कारणान्तर होसकताहै। (पं०) हे प्रिय! दृढ होकर शास्त्रसिद्धान्तको श्रवण कर न्याय, मीमांसा, सांख्य, योग, वैशेषिक तथा वेदान्त ये छः शास्त्रहैं। उन छहों में से न्याय तथा वैशेषिककारने कार्य्यके उत्पादक कारण समवायि, असमवायि तथा निमित्त भेदसे तीन मानेहैं बाकी चारों शास्त्रवालोंने उपादान तथा निमित्त भेदसे दोही कारण मानेहैं। उपादानकारणही को न्याय वैशेषिक-कार समवायिकारण नामसे बोलतेहैं। केवल शास्त्रकी बोलीमात्रका भेदहै। जिससे जुदा होकर कार्य्य प्रतीत न होसके किन्तु कार्य्यमात्रमें अवयवरूपसे कारण अनुस्यूत होय वह उपादानकारण है। जैसे घटरूप कार्य्यका मृत्तिका है अथवा पट का तन्तु है, असमवायि, कारणके लक्षण तथा उदाहरणको प्रकृतानुपयोगी होनेसे तथा सर्वतंत्रसिद्धान्तसे असिद्ध होनेसे नहीं लिखाहै। कार्य्यसे जुदा रहकर कार्य्यजनकका नाम निमित्तकारण है. वह साधारणा-साधारण भेदसे दो प्रकारका है। यावत् कार्य्यके प्रति कारण का नाम साधा-रण कारणहै जैसे ईश्वर ईश्वरका ज्ञान ईश्वरका प्रयत्न इश्वरकी इच्छा काल जीवोंके अदृष्ट दिशा प्रागभाव प्रतिबन्धकाभाव ये नव कार्य्यमात्र के प्रति कारणहैं इसलिये साधारण कारण हैं। जो तत्तत् कार्य्यके प्रति जुदा जुदा कारण होय वह असाधारण कारण होताहै जैसे—घटादि कार्य्यके प्रति दण्ड-चक्रकुलालादिहैं तथा पटके प्रति तुरी वेम तन्तुवायादि हैं। अब प्रकृतमें विचार श्रवणकर अन्धता बधिरता मूकता पंगुता कुष्ठिपनादि अनन्त रोग स्थूल शरीरमें प्रतीत होनेवालेहैं। आत्माके धर्म तो देहात्मवादी मतके सिवाय बनही नहीं सकते। और न किसी शास्त्रकारने मानेही हैं। (राजकु०) मैं अन्ध हों। मैं बधिर हों। मैं पंगु हों। मैं कुष्ठि हों इत्यादि प्रत्य-यों से तो येह धर्म जीवात्माहीके प्रतीत होतेहैं। किन्तु शरीरके नहीं प्रतीत होते। (पं०) प्रत्ययोंकी क्या कथा हैं प्रत्यय तो यहभी होते हैं कि, मैं ब्राह्मण हूं—मैं क्षत्रिय हूं—मैं वैश्य हूं—मैं शूद्र हूं—क्या कदापि यह आत्माके धर्म

होसकतेहैं कभी नहीं, जिन प्रत्ययोंका शरीरही में सिवाय अपने मुखके वा सिवाय स्वकृतचिह्नके कोई विवेचक नहीं है, वे प्रत्यय आत्माके धर्म हैं यह कहना तो अतिही विचारशून्य है, हां मेरे नेत्रोंसे दीख नहीं पडता, मेरे कर्णसे सुनाई नहीं देता, मेरा शरीर पंगु है, मेरा शरीर कुष्ठीहै यह प्रत्यय यथावत् हैं, याते यह निर्णय हुआ कि अन्धता आदि यावत् धर्म शरीर के हैं आत्माके नही उसमें भी यह विचारणीय है कि, शरीरके उपादान कारणकी न्यूनतासे अन्धता आदि यावत रोग होतेहैं किम्वा निमितकारणकी न्यूनतासे. स्थूलशरीरका उपादानकारण मातापिताके रक्त वीर्य्य हैं. असाधारण निमित्तकारण माता पिता हैं साधारण निमित्त कारण पूर्वोक्त ईश्वरादि नव हैं परन्तु एक अंतिम प्रतिबन्धकाभावको त्याग कर सभी कल्पित हैं क्यों कि, कितने वादी ईश्वरको मानते हैं कितने नहीं मानते. वैसेही उसका ज्ञान यत्न इच्छा भी हैं, जो ईश्वरहीको नहीं मानते. वेह उसकी इच्छा तथा ज्ञानको क्या मानेंगे, वैसे ही कालको कितने वादी मानते हैं कितने नहीं मानते, वैसेही अदृष्टकोभी कितने वादी नहीं मानते, दिक्कोभी कितने वादी नहीं मानते, प्रागभावकोभी कितने नहीं मानते, प्रतिबन्धकाभावकी कारणतामें भी भारी विवाद है परन्तु जो आचार्य्य इन नवको कारण मानते हैं वेभी साधारणकारण सामान्यरूपसे मानते हैं इस कल्पितसमुदायको विशेषरूपसे कारणता कौन सुयोग्य पुरुष मान सकता है, जो पदार्थ आपही सत्त्वासत्त्व सन्देहसे विवादास्पद होवे उसको विशेषरूपसे कारणता कैसे बनसकती है ? उसमें भी जो केचित् विचारशून्य पुरुषोंका साधारणकारण समुदायके भी किसी एक अंशपर केवल ईश्वरपर या उसकी इच्छापर या अदृष्टादिपर निर्भर है कि, जो होताहै सब ईश्वरही करनेवाला है या उसकी इच्छासे ही होताहै या जो हुआ हमारे भाग्यसे हुआ उनकी क्या प्रशंसा करें। ऐसे शास्त्रशून्य अधम विचार पुरुषोंके तो चाहो कोई सावधान बैठेके वस्त्र उतारले तो वे कभी नहीं बोलेंगे. क्योंकि उन्हें प्रारब्धपर दृढ विश्वास होचुकाहै. और सुयोग्य शास्त्रीयपुरुषोंका तो यह सिद्धान्त है कि यदि कार्य्यमें किसी प्रकारकी

न्यूनता होय तो उपादानकारणका दोष है या असाधारण निमित्तकारणका दोष होवे है. प्रकृतमें अन्धतादिरोगोंमें उपादानका दोष भी है जो जीव जन्म अन्ध वा बधिर वा पंगु उत्पन्न हुआ है उसके शरीरका कारण रक्त वीर्य्य स्वच्छ नहीं हैं, स्वच्छ न होनेमें माता पिताकी मन्दप्रज्ञता है किंवा गर्भ-रक्षा यथाविधि नहीं हुई तो भी बालक अंग भंग उत्पन्न होताहै. हे प्रिय दर्शनराजकुमार ! अधिक क्या कहूं यदि आयुर्वेदविधिविहित संपूर्ण क्रिया होंय तो मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि, तेरेसेभी दश गुण अधिक सुंदरस्व-रूप सन्तति प्रादुर्भूत होसकती है. गर्भमें अन्धता बधिरतादि दोषोंका होना केवल गर्भाधानमें मातृपितृप्रमाद है किंवा माता पिताके कुपथ्यभक्षणसे रक्तवीर्यगत दोष हैं यह निश्चय करके चित्तमें धारण कर । (राजकु०) महाराज जो पुरुष जन्मसे पीछे रुग्ण होजाते हैं उनकी क्या व्यवस्था है । (पं०) हे प्रिय ! षोडश वर्षके अभ्यन्तर यदि अन्धतादि रोगाकुल होय तो प्रायः माता पिताका दोष है. क्योंकि, उन्होंने कुपथ्य कुछ भक्षणार्थ बालकको दिया उस भक्षणसे उसको रक्तविकार हुआ माता या खसरा (चेचक) शरीरमें व्याप्त हुआ उससे अन्धता या बधिरता प्रादुर्भूत हुई. षोडश वर्षसे ऊपर होय तो पुरुषका अपना प्रमाद है जो रोग चाहो करलेवो । (राजकु०) कितने लोग अतिप-थ्यभी करते हैं तो भी रुग्ण ही दीख पडतेहैं । (पं०) पथ्य भी रोगो-त्पत्तिसे पूर्वही अपेक्षित है अन्यथा प्रथम तो अतितिक्त वा अतिकटु भक्षण करके वा अतिभोगादि व्यसनोंसे अर्शादि रोगकी उत्पत्ति करली पीछे पथ्य करते रहें तो कौन कामका, हां पश्चात् पथ्यसे भी रोग वृद्धिको प्राप्त नहीं होता परन्तु निर्मूल यथावत् औषधी विना होता नहींहै. हे प्रिय ! यदि अकस्मात् रोगोंकी उत्पत्ति होय तो पतंजलि आदि महर्षियोंके चर्कादि पुस्तकोंके निदानप्रकरणही व्यर्थ होजावेंगे याते यह निश्चय कर जो कुपथ्य-के सिवाय रोगोत्पत्ति कदापि नहीं होती।(राजकु०) जो आजन्म संयमी हैं उनको भी रोग ग्रसेहै । (पं०) मैंने आजन्मसंयमी भी कुपथ्यके प्रभावसे विषूचिका की मृत्युसे मरते देखे हैं ।

इति कारणविचारे पञ्चम विश्रामः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठविश्राम ६.

(राजकु०) महाराज! शुभ कुलमें जन्म तो पूर्वप्रारब्धसेही होता है। (पं०) शुभ कुल तुम किसको मानतेहो। (राजकु०) जो वर्णसंकर-शून्य ब्राह्मण वा क्षत्रिय वा वैश्यकुलमें होय। (पं०) तो अनेक युगोंका संसार है यद्यपि पुरुष ऐसे कथंचित् मिल सकते हैं जो पर-स्त्रीगामी नहीं हैं तथापि स्त्री पतिव्रता दुर्लभ है यदि वंशपरंपरा में एकभी स्त्री दुष्टा होय तो वर्णसंकर तो होचुका। परन्तु संसारमें तो प्रायः स्त्री दुष्टा हैं तो फिर कौन किस वंश वा वर्णका है यह कैसे निश्चय होवे। जिस नाममात्र ब्राह्मण या क्षत्रिय कुलको तुम सबसे उत्तम मानते हो वेह हमारेही भ्रातृवर्ग अनेक संज्ञामात्रके ब्राह्मण बिचारे कायस्थों वा कलवारोंके हुक्के भरने पर वा बिछाई करनेपर वा रोटी बनाने पर भृत्य बने हैं, हे प्रियदर्शन! ऐसी उच्चकुलीनता ईश्वर किसीको न देवे यह तो परम अधिमता है। (राजकु०) तो फिर आप उच्चपदस्थिति कैसे मानते हैं। (पं०) हे प्रिय! उच्च नीच भाव तो कालके भेदसे होता है किसीकालमें किसी गुणसे मान्य होताहै और किसीकालमें किसीसे, पूर्वकालमें तो येह ब्राह्मणादि शब्द अन्वर्थसंज्ञाके बोधक थे अर्थात् यौगिकव्युत्पत्ति लभ्य शब्द थे जैसे 'ब्रह्म' वेदका नाम है उसको जो अध्ययनकरे वह ब्राह्मण कहाता था और 'क्षत्र' राष्ट्रका नाम है उसके पालनमें जो साधु हो वह क्षत्रिय कहाता था, विश—कृषिकारक वा पशुपालक वा क्रिय करनेवालेकी संज्ञा है उसीको ही वैश्य भी कहते हैं, शुच पवित्रताका नाम है उसको जो द्रवण करे अर्थात् त्यागे वह शूद्र कहाता था इस रीतिसे चारों वर्ण विभक्त थे, परन्तु वर्तमानकालमें तो चारों शब्द रूढी होगये हैं चाहो शूद्रोंकाभी उच्छिष्ट भक्षण करजावें परन्तु शिखा सूत्र मात्रके अपने मुखकेही ब्राह्मण बने रहते हैं वैसे ही क्षत्रियादि भी दूसरेकी रक्षा तो दूर रही आपही मूषकतक जीवसेभी भयभीत होतेहैं यह प्रताप सब वर्णसंकरताहीका है यदि कदाचित् शुद्धवंशावली देशमा-त्रमें एकभी होय तो उसी कुलका एकही ब्राह्मण वा एकही क्षत्रिय देशमात्रके

रक्षाकेवास्ते बहुत है । (राजकु०) महाराज ! वीर्य्यका हाल तो माताही जाने परन्तु प्रचलित जो ब्राह्मणादि जातियाँ हैं वे तो यथार्थ हैं उनका व्यत्यास तो नहीं दीखता । (पं०) हे प्रिय ! यदि तुम देशान्तर भ्रमण करो तो तुमको जातिव्यत्यासका मर्म मिले, देखिये प्राचीन लोगोंसे सुनाहै कि, श्रीकाशीजीमें प्रथम नवघर गंगापुत्रोंके थे जैसे २ यात्रीलोगोंसे उपलब्धि देखी वैसे २ वृद्धिको प्राप्तहोने लगे अर्थात् सहस्रों गोपालकभी गंगापुत्र बनगये,ब्राह्मणोंसे अधिक ब्राह्मण बनकर पुजवानेलगे. ऐसीही दशा यावत् तीर्थोंपर है, अंगरेज सरकारका राज्य है कोई अत्याचारका शासन देता नहीं जो चाहे सो ब्राह्मण तथा क्षत्रिय नाममात्रका बन सकता है ।(राजकु०) तो फिर वर्तमान समयमें उत्तम कौन है ? (पं०) द्रव्यबहुल पुरुष या विद्याबहुल पुरुष, सो विद्या व्यावहारिक विद्या तथा पारमार्थिक विद्या भेदसे दो प्रकारकी है--पारमार्थिक विद्याहीका नाम ब्रह्मविद्या है, उस विद्यावाला पुरुष सर्वोत्तम है. द्रव्य तथा विद्या उद्योग विना होते नहीं इसी वार्ताको आगे सविस्तर कहेंगे ।

इति शुभकुलजन्मविचारे षष्ठो विश्रामः ॥ ६ ॥

अथ सप्तम विश्राम ७.

(राजकु०)सुन्दर स्वरूपवाला शरीर तो पूर्वकृत शुभ कर्मसे ही मिलताहोगा । (पं०) इसका उत्तर तो हम पूर्व करचुके हैं कि, यदि आयुर्वेदकी शिक्षापूर्वक खानपानादि व्यवहार स्त्री पुरुष दोनोंका होय तो निश्चय ही ऐसी संततिको उत्पन्नकरेंगे कि, जिसके अवलोकनसे प्राणीमात्रके नेत्र तृप्त न होवें, तो फिर कल्पित अदृष्टोंके माननेका कौन काम है । (राजकु०) महाराज! अनेक पुरुष आयुर्वेदका नामभी नहीं जानते परन्तु उनकी संतति अतिसुन्दर उत्पन्न होती है, वहां पूर्व भाग्यविना कौन कारण बनसकता है । (पं०) यदि किसीकी घुणाक्षरन्यायसे संतति सुन्दरभी होय तोभी नियतकारण व्यर्थ नहीं होसकते, जैसे-यदि तुम किसी मित्रको अपने

गृहमें बुलाया चाहो परन्तु वह विनाही बुलाये अकस्मात् कालपर पहुँचे तो क्या वह अपने प्रयत्नसे विनाही आया है कदापि नहीं, उसने आनेके वास्ते यथायोग्य प्रयत्न अवश्य कियाहै, परन्तु न्यूनता इतनी है कि, उसको निश्चय नहीं है कि, मेरे प्रयत्नका यह फल होगा परन्तु स्पष्ट लोकमें यह व्यवहार होता है कि, आइये आप तो मेरी प्रारब्धसे आपही आयगये। वैसेही आयुर्वेदसे विनाभी यदि अकस्मात् उतनाही प्रयत्न होजाय तो कुछ बाधक नहीं संतति अवश्य ही शुद्ध सुन्दर होगी परन्तु भेद इतनाही शेष रहा कि विधिपूर्वक चलनेवालेकी संतान नियमसे स्वच्छ होगी, इतरकी कथंचित् होगी। (राजकु०) महाराज तत्तत देशमें जो तत्तत् शरीर अवयवकी न्यूनता वृद्धि वह किं प्रयुक्त हैं, जैसे--पंजाब देशमें अन्ध अधिकहैं, पूर्वदेशमें अंडकोशवृद्धिवाले अधिक हैं. नेपालमें निम्ननाकवाले अधिक हैं, चीनमें प्रायः श्मश्रु (दाढी) रहितपुरुष हैं. यूरूपमें गौरवर्ण प्रायः हैं इत्यादि । (पं०) इसका उत्तर प्रारब्धवादीके मतसे क्या है ? (राजकु०) वह तो यह कहेगा कि जिसको प्रारब्धने जैसा करना है वैसेही देशमें जन्म देगी। (पं०) तो फिर तत्तत् न्यूनतायुक्त उस उस देशके सर्व जन होने चाहिये अर्थात पंजाबमें सभी अंधे होने चाहिये, पूर्वदेशमें सबके अंडकोश वृद्ध होनेचाहिये इत्यादि और ऐसा तो है नहीं बहुतलोग नीरोगभी तत्तत् देशमें विद्यमान हैं। (राजकु०) जो लोग प्रसिद्ध तत् देशीयरोगसे रहित हैं । उनके पुण्यविशेष रोगकी अनुत्पत्तिमें सहकारी हैं याते उनको रोग नहीं हुआ । (पं०) ऐसे पुण्यविशेषोंने द्वितीय देशमें जन्मही क्यों न देदिया। (राजकु०) कुछ उस भूमिका भोगविशेष कल्पना करेंगे। (पं०) काहेको शास्त्रविरुद्ध और अनुभवविरुद्ध कल्पना करनी। (राजकु०) तो फिर आप किसका दोष मानते हैं। (पं०) हम तो पूर्व कहचुके कि,कुपथ्य यावत् रोगोंका मूलकारण है. जैसे—पंजाबमें रक्त (खून) विकारकी वस्तु अधिक खानेसे शरीरमें व्रणहोनेसे पुरुष अन्ध होता है, पूर्वमें जल वातुल है । और वस्तुभी यदि वातुलही सहकारी मिलजायँ तो अवश्य जल या वायुनाडीद्वारा

अंडकोशमें वा जाँघोंमें उतरजावेगा अंडकोशवृद्धि प्रायः अधिक विषयासक्त पुरुषहीकी होती है, परन्तु पूर्वेही इस रोगकी अनुत्पत्तिहित जो पुरुष दंड युद्धादि शरीरचेष्टा करा करते हैं उनको यह रोग कदापि नहीं होता ऐसे ही नेपालमें भी यद्यपि वैद्योंने निर्णय नहीं किया परन्तु कोई एक ऐसी औषधी अवश्य है जिसके भक्षणसे गर्भाधानकालहीमें नाक निम्न होजाताहै । किंवा कोई एक अन्न ऐसा अवश्य होगा, जिसकी माताने उस अनिर्णीत अन्न औषधीको नहीं खाया उनके नाक यथावत् सुन्दर हैं । चीनदेशमें श्मश्रूके अभावमें भी अन्न औषधीही कोई एक कारण है । ईश्वर अंगरेज सरकारका राज्य यथावत् स्थिर रक्खे थोडेही कालमें इन सभी बातोंका निर्णय होजावेगा और यूरोपदेशमें शीत अधिक है और खानेकी वस्तु चावलादि श्वेतपदार्थ हैं याते सब लोग गोरे हैं, दूर काहे जाते हो शीतप्रभाव हीसे काश्मीरनिवासी सभी गोरे हैं, इसी तौर उपादानकारण किंवा निमित्तकारणकी विचित्रतासे कार्य्य विचित्र स्वयंही होते हैं कतिपय तंत्रसिद्धान्तसिद्ध कल्पित प्रारब्धके माने विना कौन हानि है. प्रत्युत प्रारब्ध के मानने से देशकी इतनी हानि है कि, कितने सुयोग्य पुरुष प्रारब्धके भरोसे पर बैठे हैं और परिवारको उपार्जनकर खिलाना तो दूर रहा आपही प्रतिदिन क्षुधापीडित रहतेहैं । (राजकु०) कितने रोग औषधीकरनेसे भी शांत नहीं होते याते जानाजाताहै कि, कुछ प्रारब्धवेग भी प्रबलहै । (पं०) प्रियदर्शन ! यदि सुशिक्षित वैद्यके हाथसे औषधी खाई जाय तो शत् रोगोंमें से एक रोग चाहो न भी दूर होय तो भी एकोनशत् तो अवश्य ही दूर होंगे । उस एकके न दूर होनेमें भी वैद्य ही की न्यूनता है उसने निदान रोगका नहीं पहचाना याते औषधीने अपना बल नहीं दिखलाया तत्तत् रोगकी शास्त्रविहित तत्तत् औषधी अवश्य ही रोगनाशक हैं इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ।

इति सुन्दरस्वरूपादिविचारे सप्तमो विश्रामः ॥ ७ ॥

अथाष्टम विश्राम ८.

(राजकु०) कितने अकस्मात् जलमें डूबजातेहैं । कितने पृथिवीमें दब जातेहैं । कितनोंको अग्निदाह होता है कितनोंकी सर्पादिजीवोंसे मृत्युहोवे है । कितनोंको सिंहादि जीव भक्षण करतेहैं क्या यह विचित्रता प्रारब्ध से विना होसकती है । (पं०) जो जीव जलमें डूबतेहैं वहां भी उद्योगहीकी न्यूनता है । यदि कोई पुरुष तरण योग्य अल्पजलमें डूबाहै तो वहां उसका तरण-विद्याको न जाननाही उद्योग की न्यूनता है, यदि समुद्रादि दीर्घजलमें डूबाहै तो वहां जलयान वहन करनेवाले पुरुषोंके उद्योगकी न्यूनता है यदि वे सुशिक्षित होवें तो जलमे डूबने की सम्भावना ही नहीं होती । देखिये यदि यूरोपदेशनिवासियोंका कदाचित् समुद्रमें जहाज डूबजावे तो वेह लोग सूक्ष्मविचारसे उसके निमित्तका अन्वेषण करतेहैं । विचारकर ऐसा यत्न करतेहैं कि, फिर उस कारणसे कदापि नहीं डूबनापावे, परन्तु यदि हमारे देशके व्यापारी महात्माका जहाज डूबे तो वह सिवाय प्रारब्धसे कुछ दूसरी वार्ताही नहीं करता, केवल मन्तव्यही का भेद है। परन्तु किस मन्तव्यमें देशको अधिक लाभ होसकता है यह विद्वान्लोग कृपाकर सोचें और प्रकाशकरें जिससे देशका उपकार होय, हे प्रिय! ऐसेही जो पृथिवीके भागके नीचे कूपादि खननकालमें या गृह आदि रचनाकालमें या गृह आदि विनाश-कालमें दबजातहैं—यदि वह अधिक आयुः हैं तो उनकीही अल्प प्रज्ञताहै क्योंकि उन्होंने प्रथमनहीं सोचाकि यह गृह या कूपादि गिरनेवालेहैं । और यदि अल्प आयुहैं अर्थात् बालकहैं तो उनके रक्षकोंकी वा मातापिताकी मूढता है हमने तो सिद्धांत की वार्ता तुझे कहदी इस देशके मूढलोग अपनी मूढता से कार्य्य नाशकर प्रारब्धके शिर मलाकरते हैं । (राजकु०) एक पुरुषसे मैंने सुनाथा कि, कूपखननकालमें कूपके ऊपरसे मिलजानेसे एक पुरुष नीचेही दब गया तो दूसरे साथके पुरुषोंने उसके मरनेका निश्चय किया याते मृत्तिका दूर कर उसको न निकाला परन्तु षट्मास पीछे उसी भूमिमें समीपही जब उन्होंने द्वितीय कूप निकाला तो उसने नीचेसे उच्चस्वरसे कहा धीरे २ मट्टी

निकालो, लोग भयभीत हुए बहुत शब्द उसका सुना तो उससे प्रश्न उत्तर करने से निश्चय हुआ कि, अमुक पुरुष है धीरे से निकाला तो अति कोमल शरीर युक्त जीवित पुरुष निकला, लोगोंने उसे पूछा कि तुमने इतने दिन नीचे क्या भक्षण किया ? तो उसने कहा कि मेरे को यथार्थ ज्ञान तो नहीं परन्तु ऐसा प्रतीत होता था कि, जैसे प्रतिदिन दुग्ध का कटोरा पान करता हूं। कुछ दिन पीछे वही पुरुष फिर बलिष्ठ हुआ और यथावत् कार्य्य करने लगा तो कहिये ऐसे स्थलोंमें प्रारब्धविना कौन रक्षक होसकता है और कौन दुग्धके कटोरे पहुँचा सकता है। (पं) प्रथम तो यह वार्ता ही असम्भवसी प्रतीत होती है क्योंकि षट्मास भूमि नीचे दबने से कोई जीने को सिवाय योगीके समर्थ नहीं यदि कदाचित् आप्त पुरुष ने देखा है उसने ही आप को कहा है तो ऐसा होसकता है कि. जिस स्थलमें वह दबाथा वहां से श्वास बाहर जाने का छिद्र अवश्य होगा और विचारशून्य होकर उसने मृत्तिका भक्षण करी होगी, जिसकी धारणशाली प्रज्ञा न रहे उसको मृत्तिका क्या और दुग्ध क्या। (राजकु०) क्या मृत्तिका भक्षणसे पुरुष जीसकता है। (पं०) मृत्तिकाहीसे तो जीता है।(राजकु०) महाराज जीव तो अन्नोदकसे जीतेहैं। (पं०)हे प्रिय! उदक तो उसके पास भी बहुतथा और अन्न नाम तो खाने की वस्तुका है जिस जीव को जो खानेका अभ्यास पडजाय उसके वास्ते वही अन्न है । मृत्तिका भक्षणकरकेभी संसारमें सर्पादि अनेक जीव जीते हैं दुग्धके कटोरे की वार्ता को बुद्धि नहीं मान सकती । (राजकुमा०) मैंने सुना एक गर्भवती किसी यवनकी स्त्री मरगई प्रसूत होनेहीको थी परंतु यवनों ने पृथिवी में दबा दी रात्रिको उसी शव को शृगालने निकाला तो उसके पेटसे जीवित बालक निकला, प्रातः लोगोंने देखा बालकको उठा लाये यथावत् उस बालक ने अपनी आयु भोगी, कहिये ऐसे स्थलोंमें सिवाय प्रारब्धके उद्योग क्या कर सकता है । (पं०) हमारा यह सिद्धांत नहींहै कि. उसका उद्योग उसीहीके भोगके वास्ते है किन्तु जैसे एक पिताके उद्योगसे कितने पुत्रादि

खातेहैं वैसेही बालक के जीनेमें शृगालका उद्योगही कारणहै यदि वह न निकालता तो कदापि बालक न जीता प्रारब्धपापिनी तो उस अनाथ को दबा ही चुकी थी. परन्तु उद्योग की कृपासे उसकी जान बच गई । (राजकु०) प्रारब्धहीन शृगालसे उद्योग करादिया ऐसा मानें तो क्या क्षति है । (पं०) क्षति तो देशका सत्त्वनाश मात्रहै इससे अधिक क्या होगा परन्तु साक्षात् कारणता सम्भवे परंपरा कारणता कल्पितवस्तुमें माननी कुछ स्वच्छ प्रज्ञता नहीं है । घटकार्य्यके प्रति दण्डमें कारणता सबने मानी है किंतु उसमें रहनेवाले कल्पितधर्म विशेष दण्डत्वमें नहीं, एवं प्रारब्धवादी की मानी हुई कल्पित प्रारब्ध विना उद्योगसे संसार मात्र में किसी स्थलमेंभी भोग नहीं दे सकती और उद्योग तो देखिये प्रारब्धशून्य जो देहात्मवादी उनको अनेक विध भोग देरहा है । (राजकु०) न मानने की वार्ता भिन्न है परन्तु प्रारब्ध तो नास्तिक कीभी होतो ही है । (पं०) क्या जो उसको न माने उसको भी जा चिपटतीहै । अतिनिर्लज्ज है, देखिये सुशील कुलीन हमारा उद्योग कोई प्राणी ऐसा नहीं जो उसको न माने, और उसको न चाहे, और जिसके अभावसे लोग शव पुकारने लग जातेहैं जिसका प्राणी मात्रमे स्वाराज्य है ऐसे प्यारे उद्योग की तुलना यह अल्पकालोत्पन्ना अल्पदेशवर्तिनी अल्पगृह-भिखारिणी सरल स्वांतविडम्बिनी आर्य्यावर्तविषूचिका निद्राकी ज्येष्ठभगिनी उद्योगानुगामिनी बिचारी प्रारब्ध कहां लेसकतीहै । हे प्रिय-दर्शन ! ऐसेही अग्निदाह भी प्रायः मन्दबुद्धि पुरुषोंहीको होताहै । सिवाय प्रमादके दावानल की तरह ग्रामोंमें स्वयं अग्नि कदापि नहीं लगसकती अग्निदाह का मूलकारण केवल हुक्का है । यह भी एक आलसी पुरुषों का सर्वस्वहै प्रातः उठ कर मानों स्मरणीय ईश्वर है । संमुख बैठा कर मानो सुचारु उपदेशक गुरु है । उपदेशानभिज्ञ पुरुषको साथही फिट्ट फिट्ट शब्द भी पुकारे है । इस महात्मानेभी सूली सहार ईसासेभी अधिक चेले मूंडे हैं॥ इसने कितने ग्राम जलादिये कितने पशु

पक्षि जलादिये कितने पुरुष जलादिये और अल्प वस्तुका जलाना तो क्या कठिन है। हे प्रिय! ऐसेही सर्पादि जीवभी प्रथम पुरुषकी कुचेष्टा विना कुछ नहीं कहते, देखिये यह वार्ता लोकविदितहै कि, बालकको सर्प नहीं काटता सोते पुरुषको सर्प नहीं काटता। (राजकु०) हमने कितनोंको सुना सोतेको सर्पने काटा।(पं०) उस सोये पुरुष का कुछ अंग सर्पसाथ आघात हुआ होगा अन्यथा सर्प कदापि नहीं काटता. अपने हाथसे जो विष खाय कर प्राणत्याग उसको प्रारब्धने मारा यह कहना कौन बुद्धिमत्ता है। हे प्रिय! ऐसेही सिंहादि जीवोंकोभी जान प्रायः बिना कुचेष्टा से सिंहादिभी कुछ नहीं कहते हां इतना तो लोकमें देखते हैं कि. मूढता से लोक मृत्युके मुखमें पड जाते हैं परन्तु केचित् फिर उद्योग की कृपा से बचभी जाते हैं॥ (राजकु०) महाराज क्या मरणभी प्रारब्धसे विना बन सकताहै। कोई जन्मता ही मरजाता है कोई शतवर्षजीवी है। (पं०) हे प्रिय! जो वस्तु उत्पत्तिवाली है उसका नाशभी अवश्यही होताहै इस नियमको तो सर्वविज्ञजन मानतेही हैं। शरीर कार्य्य हैं याते अवश्य ही नाश होनेवाले हैं, शेष रहा काल का विचार सो यत्नसे अधिक न्यून होसकता है। देखिये साधारण आयुः वर्तमान काल में शतवर्षकी लोकमें विदित है॥ उसमें संयमी लोग उससे भी अधिक जीते हैं। और असंयमी मध्यपाती ही होते हैं। अति बालक के मरने में दोष माता पिता का और द्वादश वर्ष से ऊपर मरजाय तो प्रायः बालकका ही दोषहै, पथ्य आदि के अभावसे शरीर का नाश हो जाता है। और अष्टांगयोगयुक्त योगी अपनी इच्छा से शरीर त्याग कर सकता है चाहो सहस्र वर्ष आयु करलेवे परन्तु शरीर जर्जरीभूत होजाता है याते योगी लोग स्वयं त्याग देते हैं! यम, नियम, आसन, प्रत्याहार, प्राणायाम, धारणा, ध्यान, समाधि येह योगके आठ अंग हैं इन आठों मेंसे एक भी जिस प्राणी में विद्यमान है वह सुखपूर्वक दीर्घ आयु जीसकता है अन्यथा पेटपोषी पुरुष प्रति दिन जन्मो और मरो कौन वारण करे है। और जीव की मृत्यु प्रारब्धसे ही होतीहै यह निर्लज्जता का शब्द भी उनहीं के मुखसे शोभायमान होताहै।

देखिये 'माधवनिदान' नामक चिकित्सा के पुस्तक में लिखा है कि विषूचिका रोग अर्थात् हैजे की बीमारी उन महात्माओं को होती है जो खाने का संयम नहीं रखते ।

न तां परिमिताहारा लभन्ते विदितागमाः ॥
मूढास्तामजितात्मानो लभन्तेऽशनलोलुपाः ॥ १३ ॥ माधवनि० ।

अर्थात् परिमिताहार करनेवाले शास्त्रीपुरुषों को यह विषूचिका रोग कदापि नहीं होता किन्तु असंयमी मूर्खों को जो कि खानेमें लोलुप हैं उनही को अवश्य करके होता है इति ॥ १३ ॥

यदि पुरुष प्रारब्धके वेगसे विषूचिका से मरता तो उनको यह लिखने योग्यथा कि जो पुरुष अतिमन्दभागी है वह अति अल्पही आयु में विषूचिका की बीमारी से मरता है, याते जानाजाता है कि. चिकित्साशास्त्रवाले ऋषियोंकाभी यावत् प्राणियोंको यावत्रोगों का निदान बतला कर उस निदानसे उद्योगसे बचानेका तात्पर्य्यहै । (राजकु०) यह पुरुष अपने मरणकालसे विनाही प्रमादसे मरजाताहै ऐसा कहीं किसी प्राचीन महापुरुषने भी मानाहै । (पं०) हां महाराजा धृतराष्ट्रके प्रति सनत्सुजातिने प्रसंगसे कहा है कि. " प्रमादं वै मृत्युमहं ब्रवीमि " अर्थात प्रमादही इसजीव के मरण का मूल है इत्यादि । ऐसेही धृतराष्ट्रने विदुरसे भी पूछा है ।

धृतराष्ट्र उवाच ॥

शतायुरुक्तः पुरुषः सर्ववेदेषु वै यदा ।
नाप्नोत्यथ च तत्सर्वमायुः केनेह हेतुना ॥ ९ ॥

विदुर उवाच ॥

अतिमानोऽतिवादश्च तथाऽत्यागो नराधिप ।
क्रोधश्चात्मविधित्साच मित्रद्रोहाश्च तानि षट् ॥ १० ॥
एते एवासयस्तीक्ष्णाः कृतंत्यायूंषि देहिनाम् ॥
एतानि मानवान्घ्नन्ति न मृत्युर्भद्रमस्तुते ॥ ११ ॥

भा० उ० प० अ० ३७ ॥

कि. हेविदुर! वेदशास्त्रमें इस पुरुष की आयु सौवर्षकी लिखीहै परन्तु कोई पुरुष भी सौवर्ष जीता क्यों नहीं अर्थात् प्रथम ही मरजाते हैं ॥ ९ ॥ विदुरने कहा. हे राजन्! अतिअभिमान, अतिवाद, अतिकृपणता, अतिक्रोध, अतिआत्मप्रशंसा तथा मित्रद्रोह ये छः ॥ १० ॥ इस पुरुष की आयु काटनेकेलिये तीक्ष्ण तल्वारें हैं। ये छः ही पुरुषका विनाश करती हैं किन्तु मृत्यु नहीं करता ॥ ११ ॥

इत्यादि अनेक वचनों में प्रमादसे इसजीवका मरण लिखाहै। (राजकु०) अनक महापुरुष कि, जिनमें प्रमादके या अभिमान अतिवादादिके लेशकी भी सम्भावना न होसके ऐसे भी शतंजीवी नहीं हुए हैं। (पं०) हे प्रिय ! जो जिसके सन्मानके योग्यहै उसके लिये वही महात्माहै। मेरेको यहां किसी के अच्छे बुरे कहने का तात्पर्य्य नहीं किन्तु योगीके सिवाय जो अल्पायुमें मरता है वह अवश्य प्रमादहीसे मरता है। एक योगी पुरुष जब चाहे शरीर छोड़ सकता है चाहो सौवर्षसे भी अधिक जीवे या छोटेपनेमेंही देह छोड़े उसके अधीनहै, यह योग विद्याका प्रभावहै वह विद्या भी केवल उद्योगहीसे लाभहोतीहै, और मैं सच्चामहात्माभी उद्योगी योगी ही को समझताहूं अन्यथा इतरोंमें प्रमादादिकी भी सम्भावना होसकती है, और प्रमादी तथा अभिमानादि दोषयुक्त पुरुष को शिशुपाल की तरह मरना कौन दूरहै अर्थात् ऐसे पुरुषके श्रीकृष्णदेव परमेश्वर भी प्रतिकूलही होजाता है। (राजकु०) अनेक स्थानोंमें प्राचीन शास्त्रोंमें अल्पमृत्युभी तो इसजीवका लिखाहै। (पं०) उस प्रमाद ही का नामान्तर अल्पमृत्यु है, वह प्रमाद कोई आज उत्पन्न नहीं हुआ है किंतु अनादि है इसलिये उसका लेख प्राचीन ग्रन्थोंमें मिलेभी तो हानि क्याहै। (राजकु०) क्या अपनी इच्छासे विषादि खाके मरना भी प्रमादहै। (पं०) महाप्रमादहै जो पुरुष ऐसे मरता है वह प्राप्तसमय पर क्रोधादि वेगके रोकनेमें प्रमादके प्रभावसे असमर्थ होता है। ऐसे स्थलमें भी उद्योगी पुरुषके प्रयत्नसे सम्यक् उपाय औषधी आदि मिलने से अनेक बच भी जाते हैं।

(राज०) अनेक जीवोंके दूसरे के हाथसे प्राण निकलतेहैं । (पं०) हे प्रिय ! हरएक जीवके मरनेका विचार तो कठिनहै इसपरमेश्वर की विचित्र रचनामें विचित्रजीवोंके भेद तथा उनके जन्म मरणकी दशा भी विचित्र ही है, जैसे सर्प काकादि जीव सहस्रवर्ष तक भी जीसकतेहैं और उनके शरीर पर अवस्था का प्रभावभी बहुत कम प्रतीत होताहै परन्तु यही यदि अपनी नीचतासे किसी सुयोग्य पुरुषसे विरुद्धाचरण करें तो उसके हाथसे उसीसमय मरणलाभ करतेहैं, ऐसेही गौ भैंसादि जीवोंकी तीस पैंतीस वर्षकी आय है इससे प्रथम उनका मरणभी प्रमादसे या विरोधी जीवसे होताहै । एवं भेड़ी बकरी कुत्तेआदिकों की दश पंद्रह वर्षकी ऊमर है इतने ही कालमें ये बूढे होकर मरजाते हैं इत्यादि रीतिसे भिन्न भिन्न जीवों की जीवन मरण स्थिति भी भिन्न भिन्न प्रकारकीहै इस नरदेहीके विना यावत् जीव तो सर्वथा प्रमादके पुतलेही हैं इसलिये उनका विचार हमारे प्रकृत नहीं है किन्तु पुरुष का मरण दूसरे के हाथसे दो तरह का होता है । प्रथम धर्मयुद्धमें जैसा कि, कर्णभीष्मादिकोंका, अपने या अपने स्वामीके स्वत्वसंरक्षणार्थ रणभूमिमें सम्मुख होकर शत्रुके प्राण लेने या देनेका नाम धर्मयुद्ध है और दूसरा अपराधसे मरणहै जैसे सीताके साथ छलकर राम बाणसे मृत्युहोने वाले मारीचका, यहां प्रथम मृत्युकी शास्त्रमें प्रशंसा है इसलिये उत्तमहै और द्वितीय मृत्युका शास्त्रमें निषेध है इसलिये अधमहै परन्तु ये पूर्वोक्त सभीमरण उद्योगसाध्य हैं इसलिये उसीका विजय है, हे प्रिय ! यह आपही का प्रश्न एक समय ऋषिलोगोंने मिलकर भृगुजीके आगे कराथा तो उसका उत्तर उसने–

अनभ्यासेन वेदानामाचारस्य च वर्जनात् ॥
आलस्यादन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्राञ्जिघांसति ॥ ४ ॥

मनुः अ० ५ ॥

अर्थात् वेदोंके पठन पाठन छोड़ने से शौच स्नान सन्ध्यादि सदाचारके न करने से महाप्रमादी तथा आलसी होनेसे श्राद्ध या तेरहियें आदिका

अन्नखानेसे ब्राह्मणोंकी अकालमृत्यु होती है इत्यादि वचनोंसे दियाहै, स्पष्ट भाव इसका यहीहै कि, उद्योगहीन पुरुष अकालमृत्युसे भी मरजाताहै इत्यादि शेष रहा पूर्ण आयुपर मरना सो जैसे–तेलके अभाव से दीपक स्वयं शान्त होताहै अथवा जैसे परिपक्व होकर पेड़ से पत्रपुष्पादि समयपर स्वयं गिरजाते हैं किंवा जैसे वस्त्र जीर्ण होकर स्वयं फट जाताहै वैसेही यह शरीरभी जीर्ण हुआ अपने समयपर स्वयं गिरजाताहै।

इति मरणादिविचारेऽष्टमो विश्रामः ॥ ८ ॥

अथ नवम विश्राम ९.

(राजकु०) महाराज! राज्यादि ऐश्वर्य्य को प्राप्त होना तो विना भाग्य से कैसे होसकताहै। (पं०) हे प्रिय! यह तो तुम निश्चय करो कि, जो जो उच्च पदको प्राप्त होता है सो उद्योगहीसे होताहै शेष रहा राज्यप्राप्ति का विचार सो श्रवण कर. जिस पुरुष को राज्य की अपेक्षा होय धर्मशास्त्रोक्त गुणोंको सम्पादन करे वह अवश्य राजा होगा महर्षि याज्ञवल्क्यने अपने धर्मशास्त्रमें लिखा है–

महोत्साहः स्थूललक्षः कृतज्ञो वृद्धसेवकः।
विनीतः सत्त्वसम्पन्नः कुलीनः सत्यवाक्छुचिः॥ १ ॥
अदीर्घसूत्रः स्मृतिमानक्षुद्रोऽपरुषस्तथा।
धार्मिकोऽव्यसनश्चैव प्राज्ञः शूरो रहस्यवित् ॥ २ ॥
स्वरन्ध्रगोप्ताऽन्वीक्षिक्यां दण्डनीत्यां तथैव च।
विनीतस्त्वथ वार्तायां त्रय्यां चैव नराधिपः ॥ ३ ॥

राजधर्मप्रकरणे।

कि, जिसके चित्तमें अति उत्साह होय ॥ १ ॥ तथा जो अतिदाता होय ॥ २ ॥ परकृत उपकार अपकारको कभी न भूले ॥ ३ ॥ तपोवृद्ध तथा ज्ञानवृद्ध पुरुषोंका सेवक होय ॥ ४ ॥ अतिनम्र होय ॥ ५ ॥ सम्पत्ति-विषे तथा विपत्तिविषे हर्ष विषाद रहित को सत्त्वसम्पन्न कहते हैं ॥ ६ ॥

जिसके मातापिता शुद्धवंशके तथा शुभाचरण युक्त हों वह कुलीन कहलाता है ॥ ७ ॥ जो सदा सत्य बोले वह सत्यवाक् कहिये है ॥ ८ ॥ जो जला-दिसे शरीर को तथा ईश्वरस्मरणादिसे मनको शुद्ध रक्खे वह शुचि है ॥ ९ ॥ जो अवश्यकरणीय कार्य्यों के आरम्भ में तथा आरम्भकिये कर्मों की समाप्ति में विलम्ब न करे वह अदीर्घसूत्री है ॥ १० ॥ जो ज्ञात अर्थको न भूले वह स्मृतिमान् है ॥ ११ ॥ असद्गुणों के द्वेषी को अक्षुद्र कहते हैं ॥ १२ ॥ परदोषको न कीर्तन करनेवाले को अपरुष कहे हैं ॥ १३ ॥ वर्णाश्रम धर्मअन्वित को धार्मिक कहते हैं ॥ १४ ॥ व्यसन-शून्यको अव्यसन कहते हैं ॥ १५ ॥ वे व्यसन मनुके धर्मशास्त्र में अष्टा-दश प्रकार के लिखे हैं-

यथा ।

मृगयाऽक्षा दिवास्वप्नः परिवादः स्त्रियो मदः ।
तौर्यत्रिकं वृथाघातः कामजो दशको गणः ॥ १ ॥
पैशुन्यं साहसं द्रोह ईर्ष्यासूयाथ दूषणम् ।
वाग्दण्डजं च पारुष्यं क्रोधजोऽपि गणोऽष्टकः ॥ २ ॥

अर्थात् शिकारखेलना ॥ १ ॥ शतरंज चौपडादि खेलना ॥ २ ॥ दिनको सोना ॥ ३ ॥ परकी निन्दा करनी ॥ ४ ॥ स्त्रियाँ ॥ ५ ॥ शराब ॥ ६ ॥ अनेक विध नाच ॥ ७ ॥ गायन ॥ ८ ॥ तथावीणादि वाद्य ॥ ९ ॥ व्यर्थ दूसरेको पीडित करना ये कामसे उत्पन्न होनेवाले दश गण हैं ॥ १० ॥ चुगलीकरनी ॥ ११ ॥ अतिसाहस करना ॥ १२ ॥ द्रोह करना ॥ १३ ॥ ईर्ष्या ॥ १४ ॥ परगुणोंमें दोषारोपण करना ॥ १५ ॥ परको दूषित करना ॥ १६ ॥ मुखसे गारी निकालना ॥ १७ ॥ निर्दय चित्त होना ॥ १८ ॥ ये आठ गण क्रोधसे उत्पन्न होनेवाले हैं ॥ ये अष्टादश व्यसन हैं ॥ ये राजामें न होने चाहिये ।

वैसही गंभीर अर्थ धारण करनेवाले का नाम प्राज्ञ है ॥ १६ ॥ शूर नाम निर्भयका है ॥ १७ ॥ गुह्य राखने योग्य अर्थ को जो गुह्य रक्खे

उसका नाम रहस्यवित्है ॥ १८ ॥ शत्रुके प्रवेश करनेके मार्गको जो रोके उसका नाम स्वरन्ध्रगोप्ता है ॥ १९ ॥ वेदान्त विद्याको जाननेवाला ॥ २० ॥ तथा नीतिशास्त्र को जाननेवाला ॥ २१ ॥ अनेक प्रकार की धनोपार्जनकी वार्ताके जाननेवाला ॥ २२ ॥ तथा वेदत्रयके जाननेवाला ॥ २३ ॥ नराधिपहोताहै ॥ अर्थात् पूर्वोक्त तेईस गुणका उत्कर्ष जिस पुरुषमें है वही राजा है । और यह गुण यावत् उद्योगसाध्यहैं ॥ याते उद्योगी पुरुष राजा हो सकताहै । (राजकु०) तो महाराज ! उद्योगी पूरुष यथेष्ट उद्योग कर गुणसंपादन करके राज्यपदको क्यों नहीं प्राप्त होते । (पं०) प्रियदर्शन ! इसमें कारण दो हैं । एक तो यथावत् उद्योग करनेके मार्गको न जानना । दूसरे पुरुषान्तरके उद्योग से प्रतिबध्य प्रतिबन्धक भावको प्राप्त होना । जैसे-पाठशालामें एकश्रेणी के पचास लडके परीक्षार्थ नियुक्तकिये जावें उनमें से जो हरएक बातमें १०० नम्बर पावे वही सर्वाग्रणीयोत्तीर्ण होवेहै । बाकी सभी लडके नम्बरभी पातेहैं , परीक्षोत्तीर्णभी होतेहैं परन्तु जिस प्रतिष्ठा को सबसे अधिक नम्बर पानेवाला लाभ करताहै । उस प्रतिष्ठा को न्यून नम्बर पानेवाले लडके कदापि लाभकर नहीं सकते । अब उसकी प्रतिष्ठा में तथा अधिक नम्बर पाने में दत्तचित्त होकर उसका अभ्यासही कारण है, और अभ्यास उद्योग बिना होवे नहीं । वैसेही पूर्वोक्त गुणों में जो सबसे उत्तीर्णहै वही महाराजा है । जो न्यून गुणोंवाले हैं वह छोटे राजे हैं । (राजकु०) वर्तमान कालमें हमारे देशमें महाराजा कौन है । (पं०) सरकार गवर्नमेण्ट (राजकु०) तो फिर गवर्मेण्टमें तो पूर्वोक्त यावत् गुण नहीं घटते कैसे महाराजा हुए । (पं०) कौन गुण गवर्नमेण्टमें नहीं । (राजकु०) वर्णाश्रम धर्मअन्वित को धार्मिक कहतेहैं यह आपका चौदहवाँ गुणहै सो गवर्नमेण्टमें नहींहै क्योंकि गवर्नमेण्टका न कोई वर्ण है न आश्रम है । (पं०) प्रियदर्शन ! यह वार्ता तुम अपनी कल्पनासेही कहते हो कि. किसी शास्त्र को मानके । (राजकु०) लोग ऐसेही कहते हैं हमभी कहतेहैं । (पं०) लोग अशास्त्री पशुप्रायः हैं उनके कहने का कौन प्रमाणहै । (राजकु०)

तो फिर शास्त्रमें क्या व्यवस्था है। (पं०) शास्त्रमात्रमें गुणकर्मके अनुसार वर्णव्यवस्था है। (राजकु०) शास्त्रके एक द्वय वाक्य यदि कृपाकर सुनावें तो आनन्द होय। (पं०) हे प्रिय! पाण्डवोंके प्रसंगमें युधिष्ठिर ने जो सर्पको कहेथे उनको स्मरण करो तथा और भी श्रवण करो इसी श्रीभगवद्गीताजीके ४ अध्यायके १३ श्लोकमें भगवान् इसी वार्ताका परम प्रियभक्त अर्जुन को उपदेश करतेहैं।

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।

अर्थात् श्रीकृष्णदेव कहते हैं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, तथा शूद्र ये चार वर्ण हमने गुण कर्मोंके विभागसे रचे हैं। श्रीकृष्णदेव हमारे सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् सर्वसृष्टिके कर्ता हर्ता परमेश्वरका अवतार हैं उन्हों ने केवल भारतभूमि मात्रकोही बनाया देशांतरों को नहीं बनाया ऐसा तो हम भूलके भी मान नहीं सकते किंतु सर्वदेशोंको तथा खण्डब्रह्माण्डोंको उसी कृष्ण परमात्मा ने बनाया है यही सर्व आर्योंका मंतव्य है, तो फिर समदर्शी कृष्ण परमात्मा केवल भारतमात्र में वर्णव्यवस्था बनावें यूरोपादि देशोंमें तथा सूर्य्य चन्द्रादि लोकोंमें न बनावें इसमें क्या विनिगमक है। याते हे प्रियदर्शन ! उसी कृष्ण परमात्मा के बनाये गुणकर्मोंके अनुसार यूरोपादि देशोंमें भी ब्राह्मण क्षत्रियादि विद्यमान हैं, जैसे—ब्राह्मणोंके शमदमादिगुणों वाले अनेक ब्राह्मणहैं और क्षत्रियोंके शौर्यादि गुणोंवाले अनेक शूरवीरहैं इत्यादि। (राजकु०) ईश्वर स्वतंत्रहै क्या जाने उसने भारत मात्र में ही चार वर्ण बनाये हो। (पं०) भारत मात्रमें बनानेका ईश्वरको कौन प्रयोजन है। (राजकु०) महाराज ? यह कर्मभूमि है इस भूमि पर वर्णाश्रमके अनुसार कर्मों को करके पुरुष परम पदको लाभ करेहैं दूसरीमें नहीं याते वर्णविभाग इसी भूमि में परमात्माने किया। (पं०) तो क्या यूरोपादि देश फलभूमियाँ हैं वहां क्या किये पुण्य पाप का फल नहीं होता ? (राजकु०) क्या जाने महाराज कुछ पता नहीं लगता। (पं०) तो फिर हे प्रिय! शास्त्रके अनुसार तुम हमारे वचनपर विश्वास करो,

गुणकर्मो के अनुसार चारों वर्ण ईश्वर की सृष्टिमात्रमें हैं । स्वस्व-वर्णानुसार किये कर्मका फलभी यथावत् होवे है । (राजकु०) महाराज? कितने पुरुषों में पूर्वोक्त कतिपय गुणोंके अभावसे भी राज्यपदवी देखी. जैसे—महाराजा रणजीतसिंह पंजाब का राजा वेदको न जानताथा । (पं०) हे प्रिय ! पूर्वोक्त गुण चक्रवर्ति राजाके हैं । जिसमें जितने कम उतनाही वह कम राजा होगा परन्तु उनमें भी शूरता, दातृत्व. मैत्री. अव्यसनता इत्यादि गुण प्रधानहैं । इनके होनेसे वेदत्रयज्ञातृत्वादि गुण न भी होवें तो क्षति नहीं । देखिये महाराजा रणजीतसिंह यद्यपि वेदत्रयज्ञाता न था परन्तु स्वसत्त्वकालमें शूरतामें एकही था तथा दाता भी एकही था, मित्रभावनिर्वाहक भी एकही था इत्यादि अनेक गुणोंसे महाराजा पूर्णथा याते उसके सत्त्वकालमें यथावत् राज्यप्रबन्ध रहा तदनन्तर पूर्वोक्त गुणोंसे विपरीत गुणोंवाले तुच्छबुद्धि पुरुषों ने यावत् राज्य-कार्य्यों को नष्ट भ्रष्ट करा तो तौ गवर्नमेण्ट सरकारने कृपाकर आप नानाविध क्लेश उठाकर भी महाराजा की प्रजाको आगेसेभी आराममें बसाया, दूसरे राजाके राज्यमें राज्यांतरके पुरुषों का कुछ भी जोर नहीं होता यह वार्ता अत्यंत प्रसिद्धहै परन्तु महाराजा का एक लालसिंह नामक सरदार तीर्थ-यात्रार्थ श्रीकाशीजीमें एकसौ सिक्खोंके साथ आया तो देखा कि, विश्वनाथ के दरवाजे के सामने मुसलमान लोग हिंदुओंको दुःखी करने के निमित्त जोरसे गोमांस बेच रहे हैं, सरदारको देख कर अति रंज हुआ और सिक्खोंको हुकुम कतल करदेने का किया कोई पंदरह या बीस यवन मारडाले किसीने पूछा भी नहीं कि, किसने मारे और क्यों मारे परन्तु यह प्रताप सारा महाराजकी अंगरेज सरकारके साथ मैत्री का है अन्यथा सौका सौही पकडा जाता, याते हे प्रिय ! कोई भी शुभ गुण यावत्जीवोंसे अधिक होना चाहिये वहीगुण अवश्य राज्यपदको देगा राजा नाम सर्वोत्कृष्ट प्रतिष्ठित पुरुषका है । सो देखिये गृहमात्रमें अधिक गुणयुक्त पुरुषकी गृहमात्रमें प्रतिष्ठा, ग्राममात्र में अधिक गुणयुक्तपुरुष की ग्राममात्रमें प्रतिष्ठा, देश-मात्रमें अधिक गुणयुक्त पुरुष की देशमात्रमें पूजा, परन्तु राज्यके वास्ते

पूर्वोक्त गुण अपेक्षितहैं । (राजकु०) महाराज! अपने भाग्यसे कितने महा निर्गुण मूर्ख भी राजा बनजातेहैं । (पं०) हे प्रिय ! पूर्वोक्त गुणों में जिसमें एक भी न हो वह राजा कदापि नहीं होसकता और तुमने भी न देखाहोगा । (राजकु०) महाराज! जिसका बाप राजा होय उसको अपने पिता की गादी अवश्यही मिलजातीहै चाहो कुछ भी गुण न होय और पुरुषार्थ की तो क्या कथा है चाहो सोये को दिन भर होश न आवे परन्तु तौ भी अपने पिता के स्थान पर पुत्रही बैठेगा न कि, कोई और उद्योगी । (पं०)हे प्रिय ! एक उत्तर तो हम पूर्व देचुके हैं कि. यह नियम नहीं है जो दूसरेका उद्योग दूसरेके काम न आवे कई एक कार्य्योंमें एकका उद्योग कितनों के काम आसकता है, जैसे—भोजन का बनाना, एकके बनाने से एक सौ आदमी भोजन करसकते हैं, और कितनेकु स्थलोंमें उसका उद्योग उसी पुरुष को काम देता है दूसरे को नहीं. जैसे—भोजन का खाना. चैत्रके खाने से मैत्र को कुछ लाभ नहीं है उसको पृथक् भक्षणरूप उद्योग करनाही पडता है, तैसेही यदि पिता के उद्योग से कुछ पुत्रको मिल भी जाय तो उद्योग से विना ही पुत्र को मिला यह नहीं कह सकते उसका पिता उद्योग करचुका है, उसमे पुत्र यदि गुणज्ञ होय तो पिता के राज्यादि कार्य्योंको यथायोग्य करके उद्योगसे सुखलेवे अन्यथा निर्गुण व्यसनी राजकुमारको मंत्री लोग शीघ्रही मार डालते हैं याते हे प्रिय ! निश्चय कर पूर्वोक्त गुणयुक्त ही राजा होताहै अन्यथा कदापि नहीं । (राजकु०) महाराज ! यदि उद्योगही से राज्यादि प्राप्त होतेहैं तो आपभी किसी देशके राजे उद्योगसे क्यों नही बन जाते । (पं०) हे प्रिय ! प्रथम तुम यह बतावो गुरु बड़ा होता है कि. चेला । (राजकु०) महाराज ! गुरु बड़ा होता है ।(पं०) तो फिर हम उद्योगसे विद्या संपादन करके राजाओंके गुरु तो बन चुके अब राजा बननेको क्या अधःपतनका उद्योग करें। (राजकु०) महाराज ! कथन करने की वार्ता पृथक्है परन्तु विना भाग्य-से राज्यैश्वर्य्य का मिलना अतिदुर्घटहै क्या उद्योग से पुरुष आकाशमें उड़-सकता है वा चन्द्रको पकड़ सकता है किंवा समुद्र तर सकता है कदापि नहीं, जो कुछ भाग्यमें है वही होता है । (पं०) क्या प्रारब्धसे पूर्वोक्त

आकाशगमनादि कार्य्य करसकता है। (राजकु०) हां देखिये अपने भाग्य से पक्षी आकाशही में उड़ा करतेहैं तथा भूरिभाग्ययुक्त जीव चन्द्रलोकही में निवास करतेहैं और महामत्स्यादि अनायास समुद्र तरसकते हैं। यह रचना सारी प्रारब्धहीकी है। कदापि उद्योगी पुरुष समुद्रादितरणार्थ मत्स्यादि नहीं उद्योगसे बनसकता।(पं०) हे राजकुमार! हमारा तात्पर्य्य यह है जो सम्भव क्रिया ऐसी कोई नहीं जो पुरुषउद्योगसे न होवे, और असम्भव क्रिया को तो तुम्हारा प्रारब्धकर्म को प्रेरके फल देनेवाला ईश्वरभी नहीं करसकता जीवों की क्या कथा है। (राजकु०) कौन ऐसी क्रिया है जो ईश्वरभी न करसके।(पं०) क्या तुम्हारा ईश्वर दूसरा अपने जैसा ईश्वर बना सकता है कदापि नहीं, क्या यदि चाहे तो मरसकता है सोभी नहीं. क्या यदि चाहे तो अपवित्र हो सकता है सोभी नहीं, तो फिर पुरुष मात्र से असम्भव कार्य्यका निदर्शन देकर प्रारब्धको सिद्ध करना केवल हठमात्र है। और यदि बुद्धिपूर्वक यत्न होय तो पूर्वोक्त तुम्हारे कहे असम्भव कार्य्यभी पुरुष करसकता है। समुद्रतरणार्थ देखिये जहाज अग्निबोटादि जलयान मत्स्यादिजीवों से भी शीघ्र चलते हैं, सो केवल पुरुषप्रयत्न का प्रताप है। आकाशमें गमनार्थ भी यान विद्यमान हैं। अमेरिकादेशनिवासी उद्योगीपुरुषों ने बनाया है। और हे प्रिय! ईश्वर अंगरेज सरकारके राज्यको विधिपूर्वक रक्खे, आशा है कि, चन्द्रादिलोकों के गमनार्थ भी यन्त्र बनेंगे और लोग चन्द्रादिलोकोंमें आया जाया करेंगे। (राजकु०) महाराज! मैंने कितनों को देखा कि, अतिनीतिनिपुण भी प्रारब्धवेगसे राज्य भ्रष्ट हुये। और कितनोंको देखा कि, कुछभी जिनको ज्ञान नहीं उनको अकस्मात् राज्य मिला। (पं०) हे प्रिय! पूर्वोक्त गुणोंकी न्यूनता से राज्य भ्रष्ट होना सम्भवहै परन्तु पूर्वोक्त गुणयुक्त पुरुषको कोई भी राज्यभ्रष्ट करने की इच्छा नहीं करता, क्यों कि दातृत्वशक्ति से सर्व वशीभूत रहतेहैं। और शौर्य्य गुण से यावत् भयभीत रहते हैं तो फिर राज्य भ्रष्ट करनेकी किसकी सामर्थ्य है। और अकस्मात् अकाशसे गिरता राज्यपद मैंने तो किसीको

आज तक देखा नहीं जो जो राज्याधिकारी होगा उस पुरुष का प्रापणीय राज्यपदके साथ अवश्य कोई एक विशेष संबंध अपेक्षित है । अनेक पुरुषों में जिसका संबंध अधिक अंतरंग है और पूर्वोक्त गुणयुक्त भी है तो अवश्य वही राजा होगा. यदि अंतरंगसम्बन्धवाले पुरुषसे बहिरंग-संबन्धवाले पुरुषमें पूर्वोक्त गुणों का आधिक्य होय तो वही होगा गुणोंके आगे संबन्धकी अन्तरंगता अन्यथा सिद्धहै। उनमेंसे यद्यपि राज्यसम्बन्ध तो पुरुषप्रयत्नसाध्य नहीं तथापि पूर्वोक्त गुण तो यत्नसम्पाद्य हैं याते यत्नशाली पुरुष राज्यपदको प्राप्तहोवे है कुछ दोष नहीं। (राजकु०) महाराज क्या शूरतादि गुणभी यत्नसाध्य हैं। (पं०) हां अवश्य यत्नसाध्यहैं जिसका शस्त्रविद्या में अभ्यास है वह एकही युद्धकालमें एकसौ पुरुषके वास्ते बहुतहै । शस्त्रविद्याभ्यासी पुरुष सिंहके आगे अनभ्यासी सैंकडों शृगालों की तरह दौड़ते जाते हैं।और भेड़ियोंकी तरह गले कटालेते हैं ।(राजकु०) महाराज ! इस विचित्र संसारमें कितने पुरुष दत्तक होकर राज्याधिकारी होते हैं । और कितने अज्ञात कुल गोत्र अकस्मात् निर्वंश राजाको प्राप्त होकर राज्याधिकारी होते हैं याते यह रचना सारी प्रारब्धकीही प्रतीत होती है।(पं०)हे प्रिय! दत्तक या अज्ञात कुल, गोत्र पुरुष यदि राज्याधिकारी होय भी जाय तो भी पूर्वोक्त गुणशून्य राज्याधिकारी रह सकता है ? कदापि नहीं याते पूर्वोक्त गुणोंहीकी प्रधानतासे राज्याधिकारीहै यही यथार्थहै और गुण विना उद्योगसे सम्पादन होते नहीं।(राजकु०)तो भी प्रारब्धने तो अपना वेग दिखला दिया पीछे चाहो उद्योग की न्यूनता से भ्रष्ट ही होजाय । (पं०) तो फिर कल्पितशेष तुम्हारी प्रारब्ध मुख्य और प्रबल तो न रही । उद्योग विना अपनाभोग भी न देसकी।(राजकु०) हम कल्पनाकरेंगे कि.उसकी प्रारब्धमें उतनाकालही राज्यपद था सो होचुका पीछे से भ्रष्ट होगया (पं०) तुम तो कल्पना करोगे और हम स्पष्टदेखते हैं कि. दुराचार से राज्याधिकारी नष्ट भ्रष्ट होते हैं, यदि तुम मनसे रज्जुमें सर्पकी, ठूँठमें चोरकी कल्पना करो और दूसरा पुरुष स्पष्ट रज्जु, ठूँठ को ही देखे तो कौन यथार्थार्थावगाही

होगा ? (राजकु०) दृष्टान्तमें तो रज्जु, ठूँठ के देखनेवालाही यथार्थ देखता है परन्तु दृष्टान्त विषम है । (पं०) क्या विषमता है? (राज०) रज्जुसर्पादिकी तो केवल मिथ्या कल्पना है रज्जुमें सर्प तथा ठूँठमें चोर तो कालत्रय में कभी हुआही नहीं । और प्रारब्ध तो पूर्वकृत भोगोन्मुख कर्मों का नाम है याते दृष्टान्त विषम है । (पं०) क्या तुम स्मरण करसकते हो कि, हमने अमुक जन्ममें अमुक योनि में अमुक कालमें अमुक शुभ या अशुभ कार्य्य किया था जिस का यह फल है।(राजकु०) स्मरण यद्यपि नहीं करसकते तथापि वर्तमान फलभोगसे पूर्वकृत कर्मोंकी कल्पना कर सकते हैं । (पं०) तो बस कल्पितत्त्वधर्म दोनोंमें तुल्य है दृष्टान्त विषम नहीं।(राजकु०) महाराज जब प्रारब्ध ने भोग देना होताहै आप उद्योग करवालेती है । (पं०) तो फिर उद्योग स्वतंत्र तो न हुआ जैसा प्रारब्ध करवावेगी वैसाही होगा।(राजकु०) इसमें क्या सन्देह है । (पं०) तो फिर पूर्व जन्मजन्मांतरमें प्रारब्धसे किये पापकर्मका वर्तमान जन्ममें दुःखफल तथा पापान्तर करनेमें प्रवृत्ति बलात्कारसे होगी वैसेही पूर्व जन्म जन्मान्तर में प्रारब्धसे किये पुण्यकर्मका वर्तमानजन्ममें सुख तथा पुण्यान्तर करनेमें प्रवृत्तिभी बलात्कारसे होगी । (राजकु०) होवो दोष क्याहै । (पं०) दोष तो यही है कि, पापी जीव सदा पाप कर्मोंकोही करते तथा भोगते रहेंगे और पुण्यीपुरुष पुण्यों को ही करते तथा भोगते रहेंगे । अर्थात् पापी जीवका पापसे निःसरण तथा पुण्यात्मा पुरुषका पुण्यसे उद्धरण कल्पकोटि में भी होना दुर्घट होगा । (राजकु०) ऐसेही रहो विचित्र संसारहै अनेक पुण्यवान्भी हैं तथा पापी भी हैं । (पं०) तो फिर पुण्यों से उत्कृष्ट गतिकी तथा पापों से अधोगति की अवधि कहां तक रहेगी । (राजकु०) पुण्यों की अवधि स्वर्गहै और पापोंकी अवधि नरक है । (पं०) तो फिर अनन्तकोटि युगोंसे यह संसार है पापपुण्यको मूल सूद्वत् नित्य वृद्धि को प्राप्तहोने से अद्यावधि पुण्यवान् जीव स्वर्गहीमें होने चाहिये और पतित जीव नरकहीमें होने चाहिये, यह मध्यपाती कैसे प्रतीत होते हैं ?(राजकु०) महाराज ! पुण्य पाप की गति अतिसूक्ष्महै

अल्पज्ञ जीव यथावत् जान नहीं सकता परन्तु तथापि व्यवस्था लगाने के लिये कल्पना होसकतीहै. जैसे- कृषीकार अपने खेतमें ५ सेर अन्नका बीज बोवेहै और कितने मन अन्न को पैदा करेहै । अग्रिम सालको फिर उसी अन्नमेंसे पांच सात सेर बोवे है शेष भक्षण के काममें लावेहै वैसेही पुण्यवान् या पापी जीवभी पुण्य या पापरूपबीज को बोवेहै, जन्मांतरमें तत्प्रयुक्त बहुत सा सुख वा दुःखरूप फल भोग करेहै । और जन्मांतर में पुनः भोगार्थ बीजवत् पुण्यवान जीव पुण्यको बोवेहै और पापी पापको याते अतिशीघ्रता से स्वर्ग वा नरक को जीव जा नहीं सकता । (पं०) तो फिर कैसे स्वर्ग वा नरक को जीव जासकता है । (राजकु०) पुण्य अधिक से स्वर्ग को और पाप अधिक से नरक को । (पं०) तुम्हारी व्यवस्था से तो पुण्योंकी वा पापोंकी अधिकता होनेका कोई मार्ग नहीं है । (राजकु०) हम यह कल्पना करेंगे कि, पुण्यात्मा जीव प्रतिजन्म थोड़ा थोड़ा अपने पुण्योंको बढ़ाता है और ऐसेही पापीभी प्रति जन्म अपने पापको बढ़ाताहै । (पं०) हे प्रिय ? तुम्हारी इस कल्पना में तीन दोषहैं प्रथम तो यह कि, थोड़े २ पुण्य वा पाप के प्रति जन्म अधिक होने से भी अनन्त काल का संसारहै कोई एक काल अवश्य ऐसा आना चाहिये कि. जिस काल में यावत् जीव स्वर्ग वा नरकही में प्रविष्ट होंगे, स्वर्गी को स्वर्गसे निकलने का तथा नारकी को नरक से निकलने का पीछे कुछ उपाय नहीं रहेगा । द्वितीय तुमने कहा कि, जीव प्रतिजन्म अपने पुण्य वा पापको बढ़ाताहै सो प्रयत्नसे बढ़ाता है किंवा स्वयमेव बढ़तेहैं यदि यत्नसे बढ़ाता है तो तो हमारा ही मत सिद्ध हुआ विना यत्नसे पाप और पुण्यभी न बढ़सके, यदि कहो कि, स्वयमेव बढ़ते हैं तो उनका स्वयमेव बढ़ना स्वभाव है कि, किसी कारणान्तर की अपेक्षा करते हैं यदि स्वभाव कहो तो स्वभाववादी नास्तिकमत प्रवेशप्रसंग होगा । यदि कोई कारणान्तर कहो तो सो भी चेतन मानोंगे वा जड़मानोंगे यदि चेतन मानोंगे तो चेतनभी स्वाश्रित यत्नसे वृद्धिमें हेतुहै किंवा सत्तास्फूर्तिमात्रसे यदि यत्नसे कहो तो हमारे पूर्वोक्त उद्योगका स्वाराज्य सिद्ध हुआ क्यों कि. यत्न

ही का नामान्तर उद्योग है यदि सत्तास्फूर्ति मात्र से वृद्धिमें हेतु चेतन है ऐसा मानों तो चेतन को व्यापक होनेसे सर्वत्र विद्यमानता भीहै तथापि कारणान्तर सहकारता से विना केवल सत्तास्फूर्ति मात्र से चेतन किसीभी वस्तु का कारण लोकमें दृष्टिचर नहीं है और कल्पना का स्वभाव है कि, दृष्टानुसारिणी अदृष्ट वस्तुकी कल्पना होतीहै, यदि जड़ वृद्धि में कारणहै ऐसा मानों तो जड़ वस्तु भी चेतन आश्रित पुण्य पापादि धर्मोंकी न्यूनाधिकता में हेतु अदृष्टचरहै । तृतीये प्रति जन्म पापी पापको वा पुण्यात्मा पुण्यको बढ़ाता है सो क्या इच्छा-पूर्वक बढ़ाता है वा स्वभावसिद्ध ? यदि इच्छापूर्वक कहो तो संसारका यह नियम है कि, जीव मात्रकी प्रवृत्ति सुखके उद्देश्य से होतीहै तो फिर पुण्यवर्द्धक पुरुष तो स्वर्गरूप सुखके उद्देश्यसे प्रतिजन्म पुण्यका बर्द्धक भी होय, तथापि आपकी कल्पनामें पापी भी पापकी वृद्धि के लिये प्रतिजन्म इच्छा करता है और बढ़ाताहै यह भी महा अद्भुत है । । क्या पापी जीव भी अपनी इच्छासे नरक को जाना चाहते हैं कदापि नहीं । और इच्छा होभी जाय तो भी हमारे यत्नका स्वाराज्य तो सिद्धही रहा क्यों कि, यह शास्त्रका लोकानुसारी नियम है कि, 'जानाति, इच्छति, यतते, अर्थात् पूर्व जीव वस्तुको जानता है पीछे उसकी इच्छा करता है तदनन्तर उसकी प्राप्तिके निमित्त यत्न करता है यदि स्वभावसिद्ध कहो तो स्वभाववादी नास्तिकमत प्रवेशप्रसंग होगा और कोई काल ऐसा भी मानना पड़ेगा कि, जिस कालमें यावत् जीव स्वर्ग वा नरक को प्राप्त होंगे । (राजकु०) ऐसा काल मानभी लेवें तो क्या दोषहै । (पं०) विद्यमान संसारका उच्छेद ही दोषहै और शास्त्रविरुद्ध कल्पनाभीहै मीमांसा शास्त्रका सिद्धान्तहै कि, " नहि कदाचिदनीदृशं जगत् " अर्थात् ऐसा काल कोई भी नहीं है जो जगत इसीतरह विद्यमान प्रवाहरूपसे जिस कालमें न होय । (रा०) महाराज! यह मीमांसा शास्त्र का सिद्धान्त तो जगत्के अनन्त कालसे प्रवाहरूपकी दृष्टिसेहै अन्यथा अनेक श्रुति स्मृतियों में जगत् की

उत्पत्ति तथा प्रलय का वर्णनहै उन सभीसे मीमांसाकी परिभाषा का विरोध होगा देखिये "यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्मेति" अर्थात् जिस परमेश्वरसे यह प्राणी उत्पन्न होकर जीवन को लाभ करते हैं तथा प्रलय कालमें जिस परमेश्वर में प्रवेशको लाभ करते हैं उस परमेश्वर को तू जानने की इच्छा कर वही ब्रह्महै इत्यादि अर्थक अनेक श्रुति वचनोंमें जगत्की उत्पत्ति तथा प्रलयका कथन स्पष्ट है। ऐसेही और भी अनेक आर्ष ग्रन्थोंमें संसारकी उत्पत्ति प्रलय का प्रसंगहै याते सबसे विरुद्ध मीमांसासंकेत का अर्थही अनादि तात्पर्य्यसे दीर्घकाल परत्व मानना उचितहै, और प्रकृत में यह सिद्ध हुआ कि, यदि कोई काल ऐसा आभी जावे जो यावत् जीव स्वर्ग तथा नरक में चले जावें और संसार उच्छेद होजावे तो कुछ दोषरूप नहीं है प्रत्युत शास्त्रानुसारी उत्तम कल्पना है। (पं०) हे प्रिय ! मीमांसा के नियमका जैसा तुमने अर्थ कल्पना किया तथा श्रुति का जो तुमने अर्थ करा सो वैसे ही रहो अच्छाहै परन्तु प्रलयकालमें जीव स्वर्गमें वा नरक में पड़जाते हैं केवल इस मध्यवर्ती जगत् के उच्छेदही का नाम प्रलय है यह शास्त्रका सिद्धान्त नहीं है किन्तु स्वर्ग नरकादि यावत् लोक प्रलयकाल में विनाशको प्राप्त होते हैं ऐसा शास्त्र का सिद्धान्त है सो श्रवणकर प्रथम प्रलय नाम त्रैलोक्य विनाश का है सो नित्य प्राकृत नैमित्तिक आत्यन्तिक भेदसे चार प्रकारकाहै नित्य प्रलय नाम सुषुप्ति अवस्था का है। सुषुप्तिमें भी यावत् कार्य्य प्रपंच का प्रलय होवे है याते प्रलयव्यवहार शास्त्रमें है (१) द्वितीय प्रलयकार्य्य ब्रह्मविनाश निमित्तक है। कार्य्यब्रह्म नाम आदिसृष्टिकर्त्ता ब्रह्माका है उसके नाशसे यावत् कार्य्यजाति का नाश होवे है (२) तृतीय प्रलय ब्रह्माके दिन पूरे होने से होताहै। सत्ययुगादि युगों की एक सहस्र चौकड़ी बीतने से ब्रह्मा का एकदिन होवे है। ऐसेही सहस्र चौकडीयुगप्रमित कालतक ही रात्रि रहे है (३) चतुर्थ प्रलय ब्रह्मज्ञान से होवे है (४) इस रीतिसे चार

प्रकारका प्रलय शास्त्रमें कहाहै सो चारों प्रकारके प्रलयमें स्वर्गादिकोंका स्थिरपना सम्भवे नहीं। (राज०) प्रलयकी व्यवस्था जैसे आपने कही वैसेही होय तथापि पुण्योंका वेग स्वर्गावधि तथा पापों का वेग नरकावधि रहे तो दोष क्या है। (पं०) दोष तो कुछ नहीं परन्तु हम पूँछते हैं तुम्हारे सिद्धान्तमें पापी शुभगति को किसी प्रकारसे प्राप्त होसकता है कि, नहीं। (राज०) हो सकता है यदि पापी भी आगे को शुभ कर्म करें तो शुभ गति होगी। (पं०) शुभ कर्मको तो पूर्वले पाप करने ही नहीं देते यह तुम सिद्धान्त करचुके हो। (राज०) महाराज है तो वार्ता यही सत्य कि, पापकर्म सर्वथा शुभकर्म में प्रतिबन्धक होतेहैं क्योंकि, लिखा है [श्रेयांसि बहु विघ्नानि] अर्थात् कल्याण मार्ग बहुत विघ्नयुक्त होता है। तथापि कदाचित् दैवात् पूर्व जन्म जन्मान्तर के शुभ पुण्य लेश से पतित पुरुष को भी सत्यशास्त्र का श्रवण तथा साधु पुरुष का संग होय तो उसके अनेक जन्म जन्मांतर के पाप छूट जाते हैं और शीघ्रही वही पतित पुरुष उत्तम पदको लाभ करेहै। यही व्यवस्था मैंने कई एक आप जैसे महानुभाव महात्माओंके मुखारविन्दसे श्रवण करी है। (पं०) हे प्रिय! सत्यशास्त्र कौन है और साधु पुरुष कैसा होता है। (रा०) मैंने जितना श्रवण किया है सो आपकी सेवामें निवेदन किया सत्यशास्त्र कैसा होता है तथा साधु पुरुष कैसा होताहै, आप कृपाकर श्रवणकरावें मैं आयुपर्य्यन्त स्मरण रक्खूंगा। (पं०) हे प्रिय! श्रवणकर मैं तुमको संक्षेपपूर्वक सुनाता हूं सत्यशास्त्र नाम वेदान्तशास्त्र का है वेदान्त नाम उपनिषद् का तथा तदनुसारी शारीरक भाष्यादि ग्रन्थोंका है। यद्यपि अपने २ घरमें न्याय वैशेषिकादि सभी सत्यशास्त्र हैं तथापि यथावत् रीतिपूर्वक पक्षपात त्यागकर मतमतान्तर देखनेवाले पुरुषको वेदान्तशास्त्रही अधिक सत्य प्रतीति होवे है। यावत् शास्त्रोंके तात्पर्य्य का कथन संक्षेपसे आगे उत्तरार्द्ध में करेंगे। और साधु का लक्षण पद्मपुराण में लिखाहै–

"निर्वैरः सदयः शान्तो दम्भाऽहंकारवर्जितः।
निरपेक्षो मुनिर्वीतरागः साधुरिहोच्यते" ॥ १ ॥

अर्थात् जिसका किसीके साथ वैर न होय जो परदुःखसे दुःखी होनेवाला अति दयालु होय, जो अतिशान्तचित्त होय जिसमें दम्भका तथा अहंकार का लेश न होय जिसको कुछ किसीकी इच्छा न होय जो विचारशील होय जिसका किसीके साथ स्नेह विशेष न होय उसका नाम साधु शास्त्रकारोंने कहाहै॥१॥ येगुण जिस पुरुषमें या स्त्री में होवें वे ही साधु वा साध्वी हैं। कुछ कपड़े काषाय करलेने का तथा शिरोमुण्डन करालेने का नाम साधु नहीं है इत्यादि। और भी अनेक प्रकार के साधु के लक्षण पुराणोंमें लिखेहैं वे विस्तारभय से लिखे नहीं परन्तु पूर्वोक्तगुणयुक्त पुरुषमें ही ग्रन्थान्तरकथित गुणोंकाभी समावेश होता है याते पृथक् कथन करनेका प्रयोजनभी नहीं है, सोहे प्रिय ! ऐसे सज्जनों का संग तथा सत्यशास्त्र का श्रवणावलोकन बिना उद्योगी पुरुषसे होवे नहीं याते उद्योगही सर्वथा प्रबल है। (राजकु०) पूर्वकृत शुभकर्मलेशसे सत्संग तथा सत्यशास्त्र का श्रवण होजाय तो उद्योग व्यर्थहै। (पं०) तो फिर पूर्व शुभ कर्मभी किसी उसतेभी पूर्व शुभ कर्मने करवाया सो भी किसी उसते भी पूर्वने ऐसे पूर्व पूर्वसंचारिणी अनवस्था होगी, याते हे प्रिय ! निश्चय कर जो सत्यशास्त्रके श्रवणकी तथा साधुपुरुषके संगको तथा राज्यादि संपत् की प्राप्तिकी तो क्या कथाहै क्रिया मात्र उद्योग से विना होवे नहीं। (राजकु०) क्रिया तो परिच्छिन्न द्रव्यमें रहती है उसमें उद्योग का क्या काम है। (पं०) क्रिया परिच्छिन्न द्रव्यमें रहती है यह तो यथार्थ है परन्तु चेतन के यत्न विना किसी जड परिछिन्न पदार्थ में क्रिया होती नहीं यह शास्त्रका सिद्धान्त है। (राजकु०) विचित्र संसारहै कितने पदार्थ चेतन के संबंध से क्रियायुक्त होतेहैं, जैसे—घट पटादि और कितने स्वयमेव कियावान् हैं, जैसे—अग्नि; वायु आदि सूर्य्य चन्द्रादि,। (पं०) हे प्रिय! जिस परिच्छिन्न पदार्थ में क्रियार्थ पुरुषप्रयत्न का संभव होय वहां तो पुरुष प्रयत्नहीसे क्रिया होती हैं और जहां न सम्भव होय वहां वेदानुयायी वृद्धोंने सर्वान्तर्यामी परमात्मा के प्रयत्न से क्रिया मानीहै, जैसे—सूर्य्य,

चन्द्र, वायु, अग्नि यह महाभूत किसी मनुष्य विशेष की आज्ञासे किंवा प्रयत्नसे भ्रमण नहीं करते और क्रियावाले तो दृष्टि पडतेहैं याते ऐसे महाभूतों के प्रेरणेमें परमेश्वर का प्रयत्नही कारणहै. इसीलिये श्रुतिमें ऋषियों द्वारा श्रवण होता है [भीतोऽ स्माद्वायुर्वाति भीतोऽस्मात्सूर्य्य-स्तपति] इत्यादि याते हे प्रिय! यह निश्चय कर कि, क्रियामात्र विना उद्योग से होती नहीं याते उद्योगही परम गुरु सर्वकार्य्य का साधकहै मिथ्याकल्पित प्रारब्ध कुछभी नहीं करसकती।(राजकु०)महाराज! मैंने सुना कि, श्रीगंगाजी के किनारे पर एकछोटासा राजाथा उसकी प्रथम पत्नीमेंसे एक पुत्र हुआ कुछ काल पीछे द्वितीय राणीमें द्वितीय पुत्र हुआ तदनन्तर राजाका देह पात हुआ राज्याधिकार ज्येष्ठ पुत्रको हुआ कुछ काल पीछे उसी नूतन राजाकी विमाता अपने वैधव्यको न सह सकी किसी राज्यकार्य्याधिकारी पुरुषान्तर के साथ व्यभिचार करनेलगी. राजाने अतिदुःखित होकर विमाता को दासी द्वारा बहुधा शासना दी विमाता को दासीमुखसे राजाकी बातें सुन अति खेद हुआ और राजाके मारदेने का यत्न किया, सूपकार को कह कर भोजन में विष देदिया थोडेहा काल में राजा बेहोश होगया तो विमाता ने शीघ्रही उसके जलादेने का प्रयत्न किया गंगाकिनारे जलाने को लेगये चिता पर रख शीघ्रही अग्नि लगादी अंगरेज सरकार के भयसे वह जलनेभी नहीं पाया जबतक शरीरके वालादि जले तो शीघ्रही गंगामें प्रवाह करदिया दैवात् उसको श्रीगंगाजीकी कृपासे विषके असरके पीछे होशहुआ, हाथ पाँव हिलानेलगा किनारे पर एक साधु की कुटीथी उसने जीवित पुरुष जान कर निकाल लिया औषधी सेवन कराकर कुछकालमें साधुने उसके शरीर को यथावत् किया पूछा तो उसने सारा हाल अपना साधुसे कहा तो साधुने कहा तुम अब घर जाओ तो वह बहुत कहने से अपने ग्राममें गया वहांके लोगों ने उसको प्रेत समझा कुछ सन्मान न किया और जिन्होंने जानभी लिया कि, यह वही है वेहभी उसकी विमाता से डरते उसमें सत्ता न देवें राज्यपर तो तभीसे उसका विमातृज भ्राता नियत होचुकाथा बहुत

निर्णय हुआ कितने लोग कहे कि. वही है कितने कहें कि. वह नहो है इसी वार्ता का मुकदमा अंगरेज सरकार के गया तो भी कुछ निर्णय न हुआ उसने अपनी स्त्रीके गुह्यस्थल के कुछ पते दिये तो उनकी स्त्रीको देख ठीक मिले तो सरकार ने जाना कि,यह वही है तो मुकदमा जीतनेवालाही था कि, उसकी विमाता ने दो चार लाख रुपया जज्जसाहब को देदिया उसका मुकद्दमा खारिज होगया उस राजकुमारने सुना है कि, अति कठिनतासे अपना जीवन पूरा किया सो ऐसी २ अनेकविधकी जीवों की विचित्र दशा को देखकर बलात्कारसे हमारे मनमें आता है कि, प्रारब्धका वेग अतिप्रबल है जो कि,राजकुमार को भी अतिप्रयत्नसे भी राज्याधिकार नहीं मिला।

(पं०) हे प्रिय!उद्योगही का विजय होताहै यह तो तुम हमारे सिद्धान्तको अच्छी तरह जानतेही हो. शेष रहा यह विचार कि. अत्यन्त उद्योग करनेसे भी राजकुमारादिकोंको राज्यादि पदका न प्राप्तहोना सो ऐसे स्थलमें हम यह कहते हैं कि, यथावत् उद्योगका स्वभावहै कि, कार्य्यकी सिद्धदशाको दिखलाना जिस स्थलमें उद्योगी के उद्योगसे उलटा करनेवाले उद्योग उपस्थित हैं वहां कार्य्यसिद्धिकारक उद्योग के सिवाय विरोधी उद्योगों का विनाशक भी एक उद्योग अपेक्षित है यदि वह न होगा तो कार्य्यसिद्धिकारक उद्योग चाहो मुद्दत पडारहो अपने करणीय कार्य्यके अन्तको कदापि प्राप्त न होगा, प्रकृत में राजकुमार को पूरा उद्योग करने न आताथा यदि राजकुमार पूरा उद्योगी होता तो विमाता चाहो कैसी ही नष्टा भ्रष्टा थी परन्तु उसके साथ विरोध न करता, यदि विरोधभी करा तिसपरभी यदि उद्योगी होता तो धोखेसे विषको कदापि न खाता, तिसपर भी यदि उद्योगी होता तो मुकदमा के वख़्त चाहो करजाभी उठाता परन्तु रुपये का संकोच न करता अधिक उद्योग उसकी विमाताका था उसका विजय हुआ तो भी हमारे उद्योगही का विजय है कुछ दोष नहीं।

इति राज्यप्राप्तिविचारे नवमो विश्रामः ॥ ९ ॥

अथ दशम विश्राम १०.

(राजकु०) महाराज! कितने पुरुषों को जमीन में गडाहुआ धन मिलजाता है कितने पुरुष साधारण गुणयुक्त अपनी प्रारब्धसे खूब पुजवाते हैं । और कितनों के दश दश लडकी लडके होतेहैं कितने बिचारे एक २ को सहकते हैं क्या यह विचित्र रचना प्रारब्ध की नहीं तो कौन कर सकता है। (पं०) हे प्रिय! प्रारब्ध की विचित्रतासेही जीवोंको विचित्र लाभालाभ होवो, हम ईसाई तो नहीं जो प्रारब्ध ही को न माने परन्तु भेद इतना है कि, मुख्यता प्रारब्ध की नहीं किन्तु कार्य्यमात्रकी सिद्धि उद्योग हीसें होती है; यदि कोई पुरुष कुछ यत्न न करे खाली प्रारब्ध के भरोसेपर बैठे तो उसको चार दिन जीना भी कठिन पड़जाय और हमने जैसे अन्य पुरुषके उद्योगमें अन्यके विरोधी उद्योगको प्रतिबंधक मानाहै वैसेही अन्य पुरुष के उद्योगमे अन्यकी मूढता को सहकारी भी मानते हैं,जैसे-हमको रस्ते में चले जाते या अकस्मात् जमीन में गडा धन मिला तो हमको तो थोडे ही उद्योग से मिलगया वस्तुतः वह उतने उद्योग का फल नहीं है लोकमें कितने वर्ष उद्योग करने से उतना धन मिलता है जो कि, उठाने मात्रके उद्योग से मिलगया परन्तु ऐसे २ स्थलोंमें हम मार्गमें धन खोनेवाले पुरुष की वा जमीनमें दबानेवाले पुरुषकी मूर्खता को भी अपने उद्योग के सहकारी मानते हैं और अल्प गुण युक्त पुरुष जो पुजवाते हैं वे क्या सचमुच अपने गुणको दिखलाके पुजवातेहैं कि, दगे फरेबसे पुजवाते हैं यदि सच्चे गुणसे पुजवातें हैं तो वह थोडा गुणभी कुछ न कुछ जीवों को अवश्य उपकार पहुँचाता होगा सो ठीकही है उस पुरुषने यत्नकरके गुण सीखा है दुनियां का उपकार करता है और आपभी लाभ उठाता है इसमें प्रारब्धकी माईका क्या है और यदि वह दगे फरेब से पुजवाता है तो तौ भी हमारा मत तो सिद्धही रहा कि, उसने यत्नसे पुजवाया परन्तु तथापि ऐसी नीचता का उद्योग करना सभ्य-पुरुषों का काम नहीं है और संतति उत्पत्ति के विषय में हम पूर्व कह चुके हैं कि,यदि पुरुष का पुरुषत्व धर्म और स्त्री का स्त्रीत्व धर्म यथार्थ बना है तो

पुत्रादिके पैदाहोनेमें कुछभी संदेह नहींहै केवल परस्पर संसर्गमात्रका उद्योग अपेक्षित है और यदि दोनोंने मूढतासे अपने२ धर्मको नष्ट भ्रष्ट करलियाहै तो सम्भव नहीं है कि,प्रारब्धका पिताभी आयकर पुत्रादि उत्पन्न करलेवे। (राजकु०) महाराज! विद्या तो संसारमें अनेक प्रकारकी है सो तो प्रारब्धही से आती होगी देखाजाता है कि, एकही पाठशाला में एकही अध्यायक गुरुके पास अनेक छात्र पढ़ते हैं तथापि कोई शुभ प्रारब्धवाला ही विद्या के परंपार तत्त्व को पाताहै अन्यथा अनेक खाली श्रम उठाते हैं। (पं०) हे प्रिय! तुमने यह तो संसार में प्रायः देखाहोगा कि, जितने स्त्री पुरुष पैदा होते हैं कोई भी मातृगर्भसे साथ ही विद्याको लेकर आजतक न कोई पैदा हुआ है और न आगे होगा, शेषरहा न्यूनाधिक विद्या का होना सो इस का यह विचार है कि, ईश्वर की सृष्टिमें प्रायः यावत् प्राणी तीन विभाग से विभक्त हैं प्रथम उत्तम हैं, द्वितीय मध्यम हैं, तृतीय अधिम हैं, जो जीव स्वकीयारब्ध कार्य्यको अपरजीवोंकी अपेक्षा से शीघ्र करे और प्रतिष्ठित लोगोंकरके प्रशंसनीय करे वह जीव उत्तमकोटिका है (१) और जो जीव स्वकीय करणीय कार्य्यको कुछ विलम्बसे करे और कृतकार्य्य की कोई एक कलाभी ऐसी न्यूनरहे कि, जिसको सिवाय उत्तम कोटि जीवके कोई न जान सके ऐसे कार्य्यकर्ताको मध्यम कहतेहैं (२) और जिस जीवसे बुद्धिपूर्वक करणीय कार्य्य बहुत कालतक करनेसभी न होसके वे जीव अधिम कोटिके हैं (३) सो इस रीति से उत्तम पुरुष अति अल्पकालही में सुशिक्षित होकर सांसारिक प्रतिष्ठा को लाभ करते हैं। और मध्यम भी अपनी शक्तिके अनुसार कुछ अच्छेही स्थानको प्राप्त होते हैं परन्तु अधिमों को कुछभी नहीं आता खाली श्रम उठाते हैं, स्पष्टरूपसे उत्तम मध्यम अधिम की परीक्षा यह है कि, जिसको स्वकीय पाठकसे श्रवण कर के फिर उसी विषय को किसी सहकारी पुरुषान्तर से श्रवणकी अपेक्षा न होवे वह उत्तम है (१) और जो गुरुसे श्रवण करके पुरुषांतरसे श्रवण की अपेक्षा रखता है वह मध्यम है (२) और जिस पुरुष

को स्वकीय पठनीय विषय कई एक पुरुषों से श्रवणकरनेसे भी नहीं आता वह अधिमहै (३) सो उनमें उत्तम मध्यम कोटिके पुरुष विद्याके अधिकारी हैं, अधिमको विद्याका अधिकार नहीं है अधम को कार्य्यान्तर करना योग्यहै जो कि. बुद्धि से सम्बन्ध न रक्खे केवल शरीरायाससाध्यही होवे सो पूर्वोक्त रीतिसे प्रत्येक पुरुषको योग्यहै कि. प्रथम अपने दरजे को सोचे कि. मैं कौन दरजेका हूं अपने दरजे के अधिकार से प्रवृत्त हुआ पुरुष कदापि हानि को प्राप्त न होगा । (राजकु०) महाराज! आपने ईश्वरकी सृष्टिमात्रके जीवोंके तीन दरजे करदिये सो मेरी समझमे नहीं आते मेरे को तो केवल पुरुषोंहीमें अनेक प्रकारके प्रतीत होतेहैं । (पं०) हे प्रिय ! विचित्र संसारमें अनेक प्रकारके जीवहैं यह तुम्हारा कथन है तो सत्य परन्तु तथापि हम प्रत्येक पुरुष का दरजा जुदा जुदा तो रख नहीं कसते याते तीन भेद ही ठीकहैं. प्रायः स्पष्टरूपसे तीन विभागही प्रतीतभी होतेहैं । (राज०) यदि लोकमें तीनही कोटि के पुरुष हैं तो परीक्षा कालमें अनेकविध नंबर क्यों पाते हैं अर्थात् उत्तम श्रेणीवालोंको सबको एकही नंबर पाना चाहिये तैसेही मध्यम श्रेणीवालों को भी एक जैसाही सबको नंबर पाना योग्यहै अन्यथा एक दरजे की हानि होगी । (पं०) हे प्रिय ! एकश्रेणीके पाठकोंके प्रायः तुल्यही नंबर होने चाहिये परन्तु यदि कदाचित् एक उत्तम पाठक के द्वितीय उत्तम पाठक से चार पांच नंबर कमती भी होवें तो भी उस उत्तम पुरुष की उत्तमताको दूर नहीं कर सकते क्यों कि, भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा. तथा इन्द्रियापाटव यह चार जीवके दोष हैं सो जीवहीमें रहते हैं यदि भ्रमसे वा प्रमादसे किसी एक उत्तम पुरुषने विपरीत लिख पढ दिया और दूसरे उत्तमसे चार नंबर कमती पाये तो इतने से उसकी उत्तमता

---

१ भ्रम नाम वस्तु आन्तरमें वस्तुआंतरकी प्रतीतिका है जैसे शुक्तिमे रजतकी प्रतीतिहै । प्रमाद नाम भूलनेका है, विप्रलिप्सा नामलोभ का है । इन्द्रियापाटव नाम मन्दान्धतादिका है ।

की हानि नहीं होसकती परन्तु यदि वह अधिकही कम नम्बर को पावे तो वह अपनी उत्तमता को भी खोय लेता है और उत्तीर्ण भी नहीं होता और यह तो तुम्हारेको निश्चयही होगा कि, उत्तमकोटिवालों में भी सबसे प्रथम वह होगा कि जिसने अधिक अभ्यास कियाहोगा ऐसेही रीति मध्यमकोटिवालोंमें भी जानने योग्यहै और यह भी नीतिशास्त्रमें लिखा है कि, [विद्याभ्यासानुसारिणी] अर्थात् विद्या अभ्यास से होती है और अभ्यास उद्योगी पुरुषही करसकते हैं याते उद्योगही का सर्वथा विजय है । (राजकु०) यह भी तो नीतिशास्त्रही का कथन है कि. [बुद्धिः कर्मानुसारिणी] अर्थात जैसे जीवने पूर्व कर्म करे होवें उनके अनुसारही पुरुष की बुद्धि होती है । (पं०) हे प्रिय! यह तो तुमको भी निश्चय है कि, प्रथम उत्पन्न अवस्थामें जीवको किंचित् भी ज्ञान नहीं होता पश्चात् जैसे२ जिस कालमें जिस देशमें जिस वर्गमें जो जीव वृद्धिको प्राप्तहोताहै वही जीव उसी कालके अनुसार उसीदेशके अनुसार उसी अपने सजातिवर्गके अनुसार यथाक्रम ज्ञान बुद्धिशिक्षादिकोंको ग्रहण करताहै अर्थात् जिस कालमें जिस देशमें जो जीव पैदा होयकर वृद्धिको प्राप्त होय उस कालके अनुसार उसीदेशकी भाषा उस जीवको अनायास-से ही प्राप्तहोती है तथा अपने बन्धुवर्ग की विद्या भी उसको अल्प श्रमसे ही प्राप्तहोतीहै । यह वार्ता लोकविदित है कि. स्वर्णकी पूरी बुद्धि स्वर्णकारही को होतीहै, रत्नों की पूरी बुद्धि रत्नविक्रेताहीको होतीहै ऐसे ही जिस २ व्यवहारमें जो जो प्रवृत्त है उस २ कार्य्यकी पूरी बुद्धि उसी जीवकी होतीहै दूसरेको नहीं, तो फिर बुद्धि कर्मों के अनुसार होतीहै यह तो हमभी मानतेही हैं क्यों कि लोकमें यही वार्ता दिखाई देतीहै परन्तु तुमने कर्मों के साथ पूर्व शब्द कहां से जोड़ दिया श्लोक में तो खाली कर्म शब्द है पूर्व पर का नामही नहीं सो लौकिकानुभव से देखा जाताहै कि, जैसे जीव कर्म करे वैसीही बुद्धि होजाती है कदापि हलालखोर की दयावाली बुद्धि नहीं होती तथा रंकके पुत्रको राज्यऐश्वर्य्यका स्वप्नभी

नहीं आता, एवं धार्मिक पुरुष की बुद्धि कदापि परस्वत्वापहरणवाली नहीं होती इत्यादि अनेक उदाहरण संसारमें विद्यमान हैं जिनसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि. जीवकी बुद्धि वर्तमानकर्मानुसारिणी ही होतीहै, पूर्व कर्म केवल दीपप्रकाशवत् पूर्वोक्त रीति से सहकारीमात्रहैं मुख्यता उद्योग हीकी है। (राजकु०) आपने कहा तीन प्रकारके पुरुष का विभाग सो तो पूर्व कर्मके ही अधीन है अपनी इच्छा से कदापि कोई उत्तम, मध्यम, अधम नहीं बन सकता। (पं०) हे प्रिय ! उत्तमसे उत्तम तथा नीचसे नीच जैसा जिसने बनना होय अपनी इच्छाहीसे बनसकता है, तात्पर्य्य यह जिसने उत्तम बनना होय वह पुरुष दृढ यत्नसे सत्पुरुषों के संगद्वारा उनके सत्य भाषण सद्उद्योग सत्प्रेमादि सद्गुणोंको धारणकरे, और जिस ने अधम बनना होय वह पुरुष नीचों के संगद्वारा उनके असत्य भाषण आलस्य अकारण द्वेषादि गुणों को यत्नसे सम्पादन करे। (राजकु०) जिस पुरुष को सत्पुरुषों के संग करने मात्र की बुद्धि नहीं है वह पुरुष कैसे उत्तम हो सकता है और उसका उद्योगभी क्या कर सकता है। (पं०) हे प्रिय! हमारा यह तात्पर्य्य नहीं है कि, घृत, चीनी. मैदा से मिठाई बनतीहैं परन्तु उद्योगी पुरुष चाहे तो बालू. जलको मिलाकरभी मिठाई बना सकता है, हमारा तो यह सिद्धान्त है कि, [वस्तुसत्वे हि क्रिया प्रसीदति] अर्थात कार्य्ययोग्य वस्तु में क्रिया लाभदायक होती है यदि जिस पुरुषमें किंचित् भी विचारशक्ति नहीं तो वह सत्पुरुषों के संगसे कुछ लाभ भी नहीं उठा सकता। (राजकु०) उसके विचारशक्तिशून्य होने में तो पूर्व प्रारब्धही कारण है। (पं०) यह तो हम पूर्व कह ही चुके हैं कि, एक पुरुष की कार्य्यसिद्धिमें उसी के उद्योग की अपेक्षा होय यह नियम नहीं है. देखिये राजा की स्वाराज्यसिद्धि में राजा को तथा उसके सहकारी सुशिक्षित सेना मंत्री आदिकोंके उद्योगकी अपेक्षा है. ऐसे २ स्थलों में एक के अभाव से वस्तु-सिद्धि में दूसरे का प्रयत्न व्यर्थ होजाता है। ऐसेही पुरुष के विचारशक्ति

के अभावमें हम सामान्यरूपसे प्रारब्धको कारणभी मानते हैं परन्तु मुख्य रूपसे माता पिता के उद्योगाभावही को कारण मानते हैं, हम पूर्व कह चुके कि, चिकित्साशास्त्रानुसार आहार विहारादि करनेवाले पुरुष की संतति कदापि विचारशक्तिशून्य नहीं होती परन्तु कुपुरुषसंगति सत्पुरुष संगति का यह स्वभाव है कि. विचारशक्तिको न्यूनाधिककरसकती है। (राजकु०) यदि प्रारब्ध से विद्या न आती होय तो पशु पक्षिआदिकोंके तो कहीं कालेज स्कूल विद्या सीखने के बने दीखते नहीं परन्तु देखिये कैसे २ अपने रहने के स्थान बनाते हैं। (पं०) तुमको यह कैसे निश्चय हुआ कि, वह शिक्षापाते हैं कि. नहीं हम तो पुरुषों की शिक्षा को देख कर अनुमान करते हैं कि. विचित्र कार्य्यरचना की शिक्षा पशुपक्षियों में भी होती होगी और यदि पुरुषों को प्रारब्धसे विद्या आती होय तो पाठशाला कालेजादि बनाने का कौन कामहै जिसको चाहे तुम्हारी प्रारब्ध घर बैठकोही तालीम देजायगी, परन्तु ऐसा आजतक कोई देखा तो नहीं याते यत्नही की मुख्यता है जिसने यत्न किया उसीने अभिलषित अर्थ को पाया इसमें रंचक भी संदेह नहीं है।

इति विद्याप्राप्तिविचारे दशमो विश्रामः ॥ १० ॥

अथ एकादश विश्राम ११.

(राजकु०) महाराज! इस विचित्र संसार में कितने जीव विद्युत्पातसे मरजाते हैं तथा कितने प्राणी परस्पर रेलादि यानोंके टक्कर खाजानेसे मरजाते हैं और कितने जीव अकस्मात् विषादि भक्षण से मरजाते हैं। ऐसी विचित्र-रचना प्रारब्धके मुख्यरूपसे माने बिना नहीं बनसकती। (पं०) हे प्रिय! मर-जातेहैं इस वार्ता का तो उत्तर हमारे पास कोई नूतन नहीं. हम कहचुके कि. जो बनावट है सबका विनाश होगा-किसी का चार रोज पीछे और किसी का दो रोज आगे, यह दोष केवल हमारे उद्योगपरही नहीहै बिचारो तो तुम्हारी प्रारब्धपरभी तुल्यही है यदि कोई मरनेवाला होय और हम तुमको कहें कि, तुम तो प्रारब्धको अधिक माननेवालेहो जरा इसकी

प्रारब्ध आगे प्रार्थनापूर्वक कह दो कि, दो चार दिन और जीता रहनेदेवे तो क्या तुम्हारा कहा उस मरनेवाले की प्रारब्ध मानेगी या नहीं यदि मानलेवे तो हम उसीको प्रबल मान लेवें। (राजकु०) महाराज ! क्या प्रारब्ध के कहीं कान आंख हैं जो हमारी प्रार्थना को सुनले प्रारब्ध तो जन्म जन्मान्तर कृत भोगोन्मुख कर्मोंका नाम है जबतक उनकी भोगोन्मुखता रहती है तबतक शरीर नहीं छूटता जब भोगोन्मुखता नहीं रहती तब शरीर छूटजाता है । (पं०) कहीं ऐसा तो नहीं होता जो एकही शरीर में रहनेवाले इन्द्रिय प्राणादि तुम्हारी प्रारब्ध के साथ लडजाते होवें और प्रारब्ध बिचारी अकेली शीघ्रही उस शरीर को छोडना चाहती होवे । (राजकु०) नहीं महाराज! प्रारब्ध तो इन्द्रियादि समुदायकी भी पोषक है उसका विवाद उनके साथ काहेको होगा । (पं०) सो ठीक परन्तु जहां तहां उद्योग पति की क्यों अपेक्षा करती है रॉड कह क्यों नहीं देती जो इतना चिर यह बीमार रहेगा या अवश्य मर जायगा तुमलोग मेरे से विरुद्ध परिश्रम मतकरो। (राजकु०) महाराज! क्या प्रारब्ध का कहीं मुखहै जो कहदेवे परन्तु हां दुःख सुख भोग की वार्ता तथा शरीरत्याग की वार्ता यदि प्रारब्धके वेगको जाननेवाले दैवज्ञों से यथेष्ट दक्षिणा देकर पूछी जावे तो वे सभी बतला सकतेहैं फिर चाहो कोई श्रम करे चाहो न करे। (पं०) ऐसे पूरे २ भूत, भावी, वर्तमान हालको कहनेवाले ज्योतिषी क्या इस संसारसे निःशेष होचुके हैं कि,कोई वर्तमान कालमें भी विद्यमान हैं । (राजकु०) महाराज ! इस अनादिप्रवाहाकार संसार में कदापि किसीविद्या का निर्मूल होसकता है? (पं०) तो फिर ऐसा एक कोई दैवज्ञ इस राजसभामें बुलवाईये जो परीक्षा करीजावे । (राज०) बहुत अच्छा मैं वर्तमान राजदैवज्ञों को बुलवा देता हूं ऐसा कह कर भृत्य को आज्ञा दी कि, श्रीयुत पण्डित गणपति ज्योतिषीजीको तथा पण्डित रामनाथ दैवज्ञजीको और पण्डित काशीनाथ शास्त्रीजीको शीघ्र राजसभा में बुलालावो भृत्य शीघ्र ही जाकर बुला लाया राजसभा में यथायोग्य

स्थानोंपर बैठके पण्डित गणपतिशास्त्रीजीने उच्चस्वरसे राजकुमारको आशीर्वाद देकर कहा हे राजकुमार मनोहरसिंह! ईश्वर तेरेको मनोहर बनाया रक्खे जो हमलोग प्रतिक्षण देखकर आनन्दलाभकरें और कुछ विशेष जो होय सो आज्ञा कीजिये।(राजकु०)व्यासजीने ज्योतिषी लोगोंको स्मरण किया था इस लिये मैंने आपलोगोंको श्रम दिया । (ज्योतिषी) पण्डित जी क्या आज्ञाहै।(पं०)आपलोगोंका नाम दैवज्ञ है क्या आप दैव का हाल सब कह सकतेहैं ? (ज्योतिषी) हां यथाशक्ति कहसकते हैं । (पं०) आपके यथाशक्ति शब्दका अर्थ तो हम नहीं समझ सकते परन्तु हम पूछते हैं कि, आप ग्रहादि शोध कर जीव मात्र का आयु, नाश, हानि,लाभ कह सकते हैं या नहीं (ज्योतिषी) क्यों नहीं अपनी विद्या के अनुसार हम कहही सकते हैं । (पं०) तो फिर शीघ्र ग्रहादि शोध कर बतलावो कि, यह जो पिंजरे के भीतर सारिका है सो कितना काल और जीवेगी(ज्योतिषी जी मनमें) हे दैव ! यदि हमने ग्रहादि शोध शाध के कुछ मन माना काल कह भी दिया तो यह पण्डित इसी काल में सारिका को मरवा देवेगा क्यों कि, राजकुमार इसकालमें इसके हाथमें है । और यदि हम कहें कि, यह अभी मरेगी तो सो भी ठीक नहीं कौन जाने कब मरेगी (ज्योतिषी ऊपरसे) महाराज ! पशुपक्षियोंकी वार्ता भिन्न है परन्तु जन्मकालमें यदि हम किसी पुरुष के पूर्णरूपसे ग्रह शोधें तो मिथ्या नहीं होगा । (पं०) बहुत अच्छा यह कह कर उसी काल में राजकुमार को कहकर एक ऐसी स्त्री बुलाई जो कि, कलहीको प्रसूता होनेवाली थी वह निर्द्धना थी एक सौ रुपये पर उसका गर्भ मोल लेलिया और ज्योतिषीजीके सामने करदी कहा कि, कहिये दैवज्ञजी यह गर्भस्थ बालक बाहर आकर कितना काल जीवेगा (ज्योतिषी मनमें) हे ईश्वर! यह तो वैसीही फँसावटकी बात अबभी है जिसको हमने पूर्व टालाथा (ऊपरसे) ऐसी फँसावट के स्थान पर हम कुछ नहीं कह सकते क्यों कि,उभयथा हमको झूठाही होना पड़ेगा। (पं०) तो फिर आप कैसे बतलाया करतेहैं । (ज्योति०) जहां कोई श्रद्धा

भक्ति से पूछे और यादि कोई एक आध बात झूठीभी होय तो भी हमारा दोष तो मानें परन्तु हमारे शास्त्रको सच्चाही मानें ऐसे भक्तों को हम बतला देतेहैं । (पं०) जैसे चाहो बतलावो हमने तो केवल राजकुमार को शिक्षा देनी है प्रसंगसे तुमलोगोंकोभी बुलालिया है । (राजकु०) महाराज ! क्या ज्योतिषशास्त्र सर्वथा मिथ्याही है । (पं०) हे प्रिय! इस शास्त्र के दो भाग हैं एक गणित, द्वितीय फलित. उसमें प्रथम भागमें तो किसी को सन्देह ही नहीं है अर्थात् सर्वसाधारणको माननीय है और सत्यहै और द्वितीय भागको तर्कनिपुणलोग यथावत् नहीं मानते घुणाक्षरन्याय से कितनी बातें सत्य भी होजाती हैं और कितनी बातें सर्वथा मिथ्या ही होती हैं । परन्तु बुद्धिमान ज्योतिषीकी बताई बातें अधिक सत्यही होती हैं क्यों कि,वह सोच समझ के मनका ढंग लगाता है। (राजकु०) महाराज! जो शास्त्रके अनु-सार शोधके बतलाया जाय उसमें मनके ढंगेका कोन काम है । (पं०) हे प्रिय! मूढ ज्योतिषी का शास्त्रके अनुसार बतलाना भी दुःखहीका कारण होता है इसपर मैं तेरेको एक लोकप्रसिद्ध आख्यायिका कहताहूं, श्रीकाशी जीसे पढ कर चार पण्डितोंने देशान्तर भ्रमण करने की इच्छा करी उनमें एक आयुर्वेद जानता था द्वितीय वैयाकरण था तृतीय नैयायिक था चतुर्थ ज्योतिषी था चारों ही शास्त्रतो जानते थे परन्तु विचारशक्तिशून्य थे चारोंने मिलकर मताकिया कि, किसी राजधानी में चलना चाहिये श्रीकाशीजीसे सिद्धयोग शुभमुहूर्त शोधकर चले मार्गमें कुछ दूरपर छोटीसी राजधानी मिली चारोंने चाहा कि, राजासे भेट होय परन्तु भोजन प्रथम करलेना चाहिये तो आयुर्वेदी को तीनोंने कहा कि, आप जाकर निरोग्यसा शाक चार पैसे का लेआवें तो ठीकहै तो आयुर्वेदी निघण्टु को हाथमें लेकर शाक खरीदने गया अनेक शाक देखे परन्तु गुण पाठमिलानेसे निर्दोष कोई भी दिखाई न दिया, शेष नीम के पत्ते चार पैसे के ले आया मट्टीकी हंडिया में डाल अग्नि पर रक्खा जब उसका पाक होनेलगा तो वैय्याकरणने कहा यह हंडिया क्या अशुद्ध शब्द बोलती है लकडी की चोटसे तोड़डाली शेष नैयायिकको घृत-

लेने भेजा तो वह मार्गमें घृतपात्र का आधाराधेय भाव सोचने लगा घृत गिर गया शेष जैसे तैसे भोजन किया और तीनोंने मिलकर ज्योतिषी-जीसे कहा कि, आप राजा के मिलने का मुहूर्त शोधें तो ज्योतिषीजीने बहुत सोच कर रात्रि को१२ बजे का मुहूर्त निकाला निदान वार्तालाप करते मुहूर्तकाल आयपहुंचा चारों उठकर राजमन्दिर को चले देखा तो चारों ओर किले के दरवाजे बन्द पाये निदान एक जलनिर्गम मार्गसे भीतर चारों ने प्रवेश किया सिपाहियोंने चोर जान चारों को पकड़ा प्रातःकाल राजदर्बारमें चारों पेश कियेगये राजाने शकलदेख कर जानलिया कि, यह बिचारे हमारे देशके भोले भाले पण्डितहैं राजाने पूछा आपलोग रात्रिको कहांजाते थे उन्होंने कहा हजूर की मुलाकातके वास्ते जाते थे आपके सिपा-हियों ने नहीं जाने दिया राजाने कहा हमारी मुलाकात दिनको करलेते उन्होंने कहा हम शास्त्री लोगहैं चाहो प्राणान्त क्यों न होजावें परन्तु शास्त्रविरुद्ध क्रिया नहीं करसकते हमारे शास्त्रसे जिसकालमें मिलने का मुहूर्त निकला हम चलदिये आपके सिपाहियोंने न मिलने दिया सो आपको दोष हमको क्या हमने तो शास्त्रानुसार चेष्टा करनी चाहो भलीहोय चाहो बुरीहोय राजाने मनमें सोचा कि, यह बिचारे अतिमूर्ख हैं जो हमको ही दोषभागी बनातेहैं अपनी बुद्धिपर दोष नहीं लाते, निदान राजाने चारों को कुछ दक्षिणा देकर बिदा किया और ईश्वर से प्रार्थना की कि, हे पूर्णपरमात्मन्! यदि ऐसेही हमारे देशके लिखे पढे लोग होंगे तो हमारे देश का क्या हाल होगा. याते हे प्रिय मनोहरसिंह! तुम हमारे सदुपदेश पर निश्चय करो कि, जो संसार में विद्याहै सबका बुद्धिसे सम्बन्धहै जो बुद्धिमान् है वह थोडा पढाभी बुद्धिपूर्वक काम करताहै और जो विचारशक्तिशून्य पुरुषहै उसके ज्योतिषशास्त्रकी तो क्या कथाहै यदि सिद्धि भी उसके पास होय तो वह काम में नहीं लासकता ।

इति ज्योतिषशास्त्रतः प्रारब्धविचारे एकादशो विश्रामः ॥ ११ ॥

अथ द्वादश विश्राम १२.

(राज०) महाराज! विद्युत्पातसे मरणादि कितने प्रश्न मेरे शेष हैं उनका उत्तर कृपाकर कहें । (पं०) हे प्रिय ! मेघस्थित संघर्षोत्पन्न अग्निविशेष का नाम विद्युत् है सो प्रायः मेघमण्डलमें ही रहती है यदि अकस्मात् उसका भूमिपर पतनभी होय और उससे किसी मन्दिर को वा वृक्षको वा किसी प्राणीको हानि पहुंचे तो तुम प्रारब्धमुख्यवादी तो साफ यही कहोगे कि, इसकी प्रारब्ध विद्युत्पातहीसे मरनेकी थी परन्तु उसमें मैं यह पूछता हूं कि. क्या विद्युत्पात तुम्हारी प्रारब्ध पिशानीका जीवोंकी हिंसाकेलिये शस्त्रहै यदि है तो फिर यावत् जीवों का उसीसे विनाश क्यों नहीं करती। (राज०) महाराज! क्या शस्त्रधारी के पास एकही शस्त्र होताहै जो एकही से यावत् जीवोंका वध करे नानाविध शस्त्रोंसे नानाविध प्रहार होताहै जिसकी जैसी प्रारब्ध उसका उसी शस्त्रप्रहारसे मरण होताहै । (पं०) हे प्रिय ! सत्यहै परन्तु सोचना चाहिये कि, जैसे-शस्त्री पुरुष का शस्त्र किसी स्थलमें निष्फल होजाताहै अर्थात् बाध्य वस्तुका बाधक नहीं होता क्या वैसेही आपकी प्रारब्ध के शस्त्र भी किसी स्थल में निष्फल होतेहैं या नहीं यदि होतेहैं तो प्रारब्ध का वेग प्रबल कदापि नहीं होसकता अर्थात् जैसे एक वीर अपने शत्रुके वधार्थ शस्त्रको छोडे परन्तु उस शस्त्रको मार्गही में शत्रु अपने शस्त्रसे दो टुकडे करदेवे अर्थात् उस शस्त्रके बलको रोक देवे तो वह शस्त्र अबाध शस्त्र नहीं कहलाता वैसेही यदि प्रारब्ध के वेगसे चले विद्युत् आदि शस्त्र किसी न किसी का वध नहीं करें तो निष्फलही कहना होगा और हम तो सहस्रों स्थलों में विद्युत्पात को निष्फल देखतेहैं ।(राज०) महाराज! यह तो नियम नहीं है कि, पुरुष पशु आदि के मरनेसे ही विद्युत्पात सफल होताहै अन्यथा निष्फलहोगा देखिये भूमण्डल में चौरासी लक्ष जीवयोनि पुराण-प्रख्यात हैं विद्युत्पात से अवश्य किसी न किसी को हानि पहुंचती है । (पं०) उद्योग से विद्युत्पात से रक्षा भी होसकती है कि, नहीं।(राज०) कदापि नहीं।(पं०) तो हे प्रिय ! यही उपदेश वर्तमान कालके युरोपदेशके

विद्वानों को मनादेवो तो हमभी मानलेवें .परन्तु देखिये वह लोग अपने मकानों में विद्युन्निवारक ताम्रपत्र लगाते हैं इस वार्ताका निर्णय उनही लोगोंने किया है कि, ताम्रधातु, में विद्युत् बाध नहीं होता अर्थात् ताम्रधातु में विद्युत् अधिक है उससे विद्युत् आन्तर के बलका बाध होताहै ॥

इति विद्युत्पातविचारे द्वादशो विश्रामः ॥ १२ ॥

अथ त्रयोदश विश्राम १३.

(राजकु०) महाराज ! रेलादियानों के टक्कर खाने से जीव मरजातेहैं सो तो प्रारब्धही से है। (पं०) हे प्रिय! इस प्रारब्ध शब्दमें इतनी बड़ी गुंजायश है कि, पुरुष चाहो अपनी मन्दबुद्धिसे वा प्रमादसे वा नीचता से कितनी भी हानि करदेवे परन्तु सबका उत्तर कहसकता है कि, इन जीवों की प्रारब्ध परन्तु रेलों के टक्कर खाने से साफ प्रतीत होता है कि, प्रमाद तारबाबूका है यदि प्रमाद न करके परस्पर तारदेकर लायन साफ रक्खें तो कदापि रेलोंकी टक्कर नहीं लगती । (राजकु०) महाराज ! उन जीवों की मृत्युने तारबाबू से प्रमाद करवाया होगा । (पं०) तो फिर सरकार रेलों की टक्करमें तारबाबूको सजा क्यों देती है तुम्हारे मतसे तो तारबाबू का दोषही नहीं । (राजकु०) महाराज! उसकी प्रारब्धमें भी तो सजा पानी लिखी ही होगी। (पं०) वाहवा यह तो व्यवस्था आपने उत्तम लगादी है, हे प्रिय! तुम्हारे उत्तरपर मेरेको एक आख्यायिका स्मरण हुई है सो मैं तेरेको सुनाताहूं एक तुम्हारे जैसा दृढप्रारब्धवादी कोई काजीथा एक उसका अतिचंचलसा लडका था वह एक दिन किसी नबाबके घरमें गया उसके घरमें एक पिंजरे में तोता रक्खा था उसके साथ खेलने लगा गरज उसने तोतेको मारडाला नबाबके नौकरने उसे खूब पीटा वह रोतार अपने बाप के पास आया काजी साहब बेटको साथलेकर नौकरपर शिकायत करने आये नबाब साहबने नौकर को बुलाकर पूछा तो नौकरने काजीके लडके का कसूर बतलाया तो काजीने नौकर से कहा कि, अरेभाई

तोते की तकदीरमें तो मेरे बच्चेके हाथसे मरनाही लिखाथा पर तैंने मेरे बेटेको बेगुनाह माशूम को क्यों माराहै, तो नौकर ने कहा कि, काजी साहब जीवोंकी तकदीरों का दफ्तर आपही के घरमें होवे यह बात तो है ही नहीं जैसे तुमने कहा कि, तोतेकी किसमतमें मरनाही लिखाथा वैसे मैंभी कहता हूं कि, आपके बेटे की किसमत में मेरे हाथसे थोड़ा पीटाजाना भी लिखाही था नौकरका माकूल जबाब सुनके नबाबने थोडा हँस दिया और काजी साहब निरुत्तर होकर घरको चले आये, सो हे प्रिय! पूर्वोक्त तुम्हारा उत्तर तो तुम्हारे जैसे प्रारब्धवादियोंके वास्ते ही है जो उद्योग को मुख्य मानते हैं उनकेवास्ते ऐसा उत्तर हास्यका स्थानहै और थोडासा यहां यहभी विचारणीय है कि, तारबाबू की प्रारब्ध ने रेलमें मरनेवाले जीवों की प्रारब्ध द्वारा तारबाबूको फल दियाहै (१) किंवा मिलके दिया है (२) किंवा स्वतंत्र दियाहै (३) यदि द्वारा कहो तो सो भी ठीक नहीं यदि उनकी प्रारब्ध उसके फलमें द्वार होगी तो उन जीवों के फलमें उस तारबाबू कीभी प्रारब्धको द्वार होनाचाहिये, यदि मानो तो परस्पराश्रय दोष होगा सो दोष कार्य्यका प्रतिबन्धकहै याते दोनों का निरोध होना चाहिये यदि मिलके कहो तो सो भी ठीक नहीं प्रारब्ध नाम पूर्वकृत धर्माधर्मका है सो जिसके अंतःकरण में रहतेहैं उसीको फल होता है यह शास्त्रका सिद्धान्त है याते प्रत्येक अंतःकरणमें होनेवाले पूर्व कर्म जीवोंको कदापि संभूय फल नहीं देसकते और यदि मिलके फल देते भी होवें तो सबको एकसा फल होना चाहिये। (राज०) महाराज! कर्मफल तो मिलहीके देतेहैं परन्तु भेद इतनाही है कि, जिस स्थलमें यावत् जीवों को सम भोगहोता है तहां सबकी सम प्रारब्ध की कल्पना होतीहै जैसे कतिपय ब्राह्मणोंको एक पंक्ति भोजन किंवा सम दक्षिणा अथवा सम दंड, और जहां न्यूनाधिक भोग होवें वहां प्रारब्धभी न्यूनाधिक ही मिली तो भोग वैसा हुआ यही कल्पना कीजातीहै प्रकृत में कितने रेलके नीचे आतेही मरगये कितनों के अधिक चोट लगी कितनोंको कम चोट लगी कितनों को कुछभी नहीं हुआ याते जाना जाताहै

कि, इन जीवों की प्रारब्ध न्यूनाधिक थी यदि तुल्य होती तो तुल्य भोग होता। (पं०) हे प्रिय! तुमने व्यवस्था तो उत्तम लगाई है परन्तु विचारणे योग्य है कि, प्रत्येक जीवके अंतःकरणमें या जीवमें रहनेवाले पाप पुण्य सम वा न्यूनाधिक कदापि मिलसकते हों ऐसा संभव नहीं यदि मिलभी सकते हैं तो क्या एक किसी अंतःकरणया आत्मामें एकत्र सब होजाते हैं वा जुदा जुदा ही मिलेरहतेहैं यदि एकमें कहो तो शास्त्रविरुद्धहै किसी शास्त्रकार ने ऐसा माना नहीं जो एक आत्माके गुण दूसरे में चले जावें यदि कहो कि, जुदा जुदा ही मिलेरहते हैं तो भी बने नहीं प्रथम तो जुदा जुदा और मिले-रहते हैं यह शब्द ही परस्पर विरुद्धहैं कितने जीवोंका कर्मसमुदाय यदि जुदा जुदा है तो मिल नहीं सकता यदि मिलाहै तो जुदा जुदा नहीं रहसकता। (राज०) महाराज! यह वार्ता तो लोकप्रसिद्धहै जैसे तीन सौदागरों ने मिलकर छःलाख रुपये का व्यापार करा उसमेंसे एकका १ लाखहै दूसरेका दो लाख है तीसरेका तीन लाखहै तीनोंने मिलकर व्यापार में लगादिया साल पीछे हिसाब किया तो उनको छःलाख रुपया व्यापार में बचगया तो उन्होंने रुपये के, हिसाब से एक लाखवालेको बचतकाभी एक ही लाख दिया वैसेही दो लाखवालेको वा तीन लाखवालेको उनके रुपयेके मुताबिक हिस्सा दिया इस दृष्टान्त में जैसे रुपया जुदा जुदा भी है और जैसे मिलके काम करदेता है वैसेही जीवों के प्रारब्धकर्म जुदा भी रहें और मिलके कार्य्यो-रम्भ भी करें तो हानि नहीं। (पं०) हे प्रिय ! व्यवस्था तुमने अच्छी कही परन्तु विचारणीय है कि. जैसे तीन सौदागरोंने रुपयों को मिलाकर काम किया तो मुनाफेमें रुपया मिला वैसेही प्रत्येक जीवके आत्मामें वा अंतःक-रणमें रहनेवाले पाप पुण्य कदापि एकत्र नहीं होसकते याते दृष्टान्त विषम है, और वार्ता भी है यदि जीवों के पाप वा पुण्य ही हानि वृद्धिके देनेवाले हैं तो सजादेनेवाले हाकिम को वा इनाम देनेवाले हाकिम को भी उलटा पाप और पुण्य मानना चाहिये अर्थात् तारबाबूकी प्रारब्ध ने तथा रेलमें मरनेवालों की प्रारब्धने तो मिलके रेलको टकरादिया और इसबात के विना बूझे जिस हाकिमने तारबाबूको सजादीहै वह पीपा हागो।

(राजकु०) महाराज! इन्साफ करनेवाले को पाप नहीं होता यह वार्ता धर्मशास्त्रके पद पदसें प्रसिद्ध है और यदि उसको सजा न कोई देवे तो उसकी प्रारब्ध का भोगभी तो पूर्ण नहीं होता याते सजादेनेवाले को पाप नहीं है और प्रसन्न होकर इनाम देनेवाले को पुण्यभी नहीं है। (पं०) हे प्रिय ! तुमने अच्छा कहा परन्तु तुम्हारे देशमें जो लोग साधु ब्राह्मणों को खिलाते पिलाते हैं उनको पुण्य होता है कि, नहीं! (राजकु०) यह सब लोग श्रद्धा भक्ति से तथा पुण्यबुद्धि से खिलाते हैं याते पुण्यही अवश्य होता है। (पं०) यहां उलटी व्यवस्था कैसे खानेवाले तो सभी कहतेहैं हमने अपनी प्रारब्ध का भोग खाया है । (राजकु०) दोनोंका कहना यथार्थ है जितने जीव पैदा हुएहैं पूर्वजन्मवादी के मतसे खान पानादि प्रारब्ध से शून्य तो कोई कह ही नहीं सकते. शेष रहा खिलानेवाले का विचार सो उसको ईश्वर उसकी शुभ क्रिया का फल देगा । (पं०) शुभ क्रिया का क्या फलहै ।(राज०) सो तो आपभी जानते ही हैं कि, शुभ कर्म करने से उस कालमें प्रसन्नचित्त होताहै और आगेको शुभ वासना उत्पन्न होतीहै और शुभ अदृष्ट उत्पन्न होताहै ऐसेही अशुभ कर्म से अव्यवहित उत्तरकाल मे दुःख तथा आगे को बुरी वासना तथा मलिन अदृष्ट उत्पन्न होताहै । (पं०) हे प्रिय ! तुम्हारी कही व्यवस्थाहीसे तारबाबू को सजा देनेवालेको पाप वा पुण्य अवश्य होना चाहिये देखिये क्रिया संसारमें तीन प्रकार की हैं एक शुभहै. दूसरी अशुभहै. तीसरी निरर्थकहै, शास्त्रविहित क्रिया शुभ होतीहै, जैसे–अग्निहोत्रादि उससे अवश्य पुण्य होताहै, शास्त्रनिषिद्ध क्रिया अशुभ होती है.जैसे–परद्रव्यापहरणादि उससे अवश्य पाप होताहै, जो शास्त्रसे प्राप्ताप्राप्त न होवे सो निष्फल क्रियाहै जैसे जलताड़नादि सो इन क्रियाओंमें सजादेनेवाले हाकिमकी कौन क्रिया है ।(राज०)क्रिया तो उसकी शास्त्रविहितहै क्यों कि, शास्त्रमें अनेक स्थलोंमें प्रमादी को दण्ड लिखा है । (पं०) तो फिर शास्त्रानुसार क्रियाकारी हाकिम को पुण्य होना चाहिये । (राज०)अवश्य पुण्यही होगा ।(पं०) हे प्रिय!तुम तो प्रारब्धवादी हो तुम्हारे

मतसे तो जो कुछ रेलके परस्पर टक्कर खानेसे नुकसान हुआ सब प्रारब्धने किया यहांतक कि, तारबाबूका प्रमादभी प्रारब्धने अपना भोगदेनेकेलिये करवादिया तो फिर उससे उलटा समझ कर दण्ड देनेवाले हाकिम को तुम्हारे मतसे पुण्य कैसे होगा उलटा पाप होना चाहिये, और हमारे मतसे तो पुण्य होताहै क्यों कि, तारबाबू ने प्रमाद करा उससे बहुत जीवों का अपकार हुआ उसको शासन कहनेवाला शास्त्र हमारे तो अनुकूलहीहै यदि उसको दण्ड न दिया जाय तो आगेको फिरवह ऐसाही करेगा इसलिये दण्ड देकर उसको पूरा उद्योगी करना हमारे शास्त्रका मुख्य तात्पर्य्यहै याते हे प्रिय ! तुम निश्चय करो कि, जिस२ कुकर्मका दण्ड शास्त्रने विधान कराहै तहां शास्त्रका केवल जीवको शुभ उद्योगमें प्रवृत्तकरने में तात्पर्य्य है। (राजकु०) महाराज ! कितने खोटी प्रारब्धवाले विषादि भक्षणसे मरजातेहैं सो प्रबल प्रारब्धसे विना अपना आप बुरा कौन करसकता है। (पं०) हेप्रिय ! जिस स्थलमें विष दूसरे पुरुषने दूसरेको शत्रु समझ के दी है वहां तो यदि शत्रु उस विषसे मरा तो हमारे उद्योगही का विजयहै, और जहां जिसने विषादि आपही भक्षण कराहै वहांभी जिस दुःखसे दुःखित होकर उसने विष भक्षण कियाहै उस दुःखको उसने मरणदुःखसे अधिक समझाहोगा याते अपने मरण को आप विष खाया इसमें हमारे उद्योगकी हानि नहीं है। (राजकु०) महाराज ! भला तीव्र प्रारब्ध विना कोई आप मरा चाहता है ? (पं०) हे प्रिय ! यदि प्रारब्ध तुम्हारी सच्ची हो तो विना यत्न विना खरीदे विना मुख में पाये विष उसके पेटमें चलीजाय और उसको मारडाले तो हम तुम्हारी प्रारब्ध को मानें कि, इसने काम किया और यदि वह अपने मरणकेवास्ते बडे यत्न से छिपाके विष लाता है और उद्योगसे दुःखी होकर खाता है तो प्रत्यक्षप्रमाणसिद्ध उद्योग से विष भक्षण छोडकर कल्पितप्रारब्धको साथ मानलेना कौन बुद्धिमत्ता है ॥

इति रेलादियानाघातविचारे त्रयोदशो विश्रामः ॥ १३ ॥

अथ चतुर्दश विश्राम १४.

(राज०) महाराज! इस विचित्र संसार में प्रारब्ध के वेगहीसे मैंने कुत्ते गाड़ी पीनसोंमें बैठते देखे तथा वानर दूध मलाई खाते देखे क्या वर्तमान कालका उनका उद्योग कुछभी करसकताहै ? (पं०) हे प्रिय ! हम पूर्व सिद्धान्त करचुके कि, संसार में कोई भी जीव सिवाय किसी एक असाधारण गुणके कदापि प्रतिष्ठा पानहीं सकता अब तुम यह सोचो कि, जो कुत्ते गाड़ियों पर बैठते हैं वा वानर मलाई खातेहैं वेह कुछ गुण रखतेहैं या नहीं मेरी बुद्धि में तो उनकी योग्यताहै मैंने कुत्तों का अपने स्वामीके साथ ऐसा प्रेम देखा कि, वह यदि अपनी छड़ी आदि गहरे पानी में भी फैंकदेवे तो कुत्ता प्रेमसे लेआवे स्वामी सोवे तो कुत्ता पासही रातभर जागे पास चिड़ीतक न फटकनेदेवे चौर आदिकों की तो क्या कथाहै, फिर ऐसे प्यारे जीवको जो कि, असाधारण काम करता है यदि कोई मलाई भी खिलावे तो कोई बुराई नहीं कुत्ता अपने गुणोंसे तथा उद्योग से खाता है । देखिये मैंने सुना है कि, एक धनिक ने किसी उत्तम जाति का एक कुत्ता पाला धनिक उसकी बहुत खातरी रखता था और कुत्ताभी रात्रि भर जागकर अपने स्वामी का हक्क अदा करता था एक दिन दैवात् रात्रि को दो चोर आये जो कि, दिनकोभी कभी २ उसी धनिक के घर आया करतेथे और घरके भेदको जानते थे कुत्ताभी उन्हें पुराने पुरुष जानकर न चौंका परन्तु उन्होंने आतेही पहले कुत्ते को पकड़ कर एक छोटे बेग में बन्द करलिया पीछे जो कुछ माल मिला लेकर चल दिये परन्तु धनीको कुछ खबर नहीं, क्यों कि, वह तो कुत्तेही के भरोसे पर सुख नींदसे सोता था दोनों चोरों का ग्राम १.२ कोस पर था प्रातःकाल वहां पहुंचते ही प्रथम कुत्तेको बेगसे निकाल रखदिया कुत्ता निकलता ही उन दोनों के साथ लाड़ करने लगा फिर थोड़ी देर पीछे उन्होंने चोरी का माल कुत्तेके सामने ही अपने घरमें जमीन में दबादिया पीछे थोड़ी देर बाद कुत्ते को कुछ खाने को दिया कुत्तेने शोकातुर होकर थोड़ासा खाया परन्तु चिन्ता कररहाहै कि, कैसे निज स्वामीके घर जावों इधर उध

खोजता है परन्तु मार्ग मिलना कठिनहै क्यों कि, वह तो विचारा बगमें बन्द होकर १२ कोस आयाहै क्या जाने कौन मार्ग है थोड़ीदेर इधर उधर घूमने के बाद उन्होंने कुत्तको बांधदिया रात्रिको छोडा तो कुत्ता उनकी दृष्टि बचाकर ऐसे अपने स्वामीके घरके मार्गको सूधा चला कि, जैसे दृष्टपूर्व मार्ग होताहै कुछ रात्रि शेष ही थी जो वह अपने स्वामीके दर्वाजे पर आखड़ा हुआ सबेर हुआ स्वामीको मिल चौंक कर पांव चूमने लगा और जिधर से आयाहै उधरही को चलना चाहता है परन्तु गृह के लोग उसका भाव नहीं समझते थोड़ी दूर जाता है पीछे कोई नहीं लगता तो फिर लौट आता है धनिकने कुत्ते को ऐसी चेष्टा देखकर शीघ्र घोड़ा कसवाया दो आदमी साथ लिये और कुत्तेके पीछे घोड़ा चलाया कुत्ता मार्गको त्याग उसी ग्रामको सीधा चला जिससे रात्रि को आयाथा चोरी की खोज करनेवाले खोजी भी तो चोरों के पांवचिह्नको देखते २ चोरोंके ग्रामसे दो तीन कोसही फरक में थे परन्तु उससे आगे उन्हें खोज न मिलता था वहां एक जलाशय था वेह खोजी लोग हारकर रात्रि को वहां सोगएथे । तबतक कुत्ताभी स्वामी को ले वहां पहुंचा परस्पर मेल हुआ बातचीत करके सब लोग कुत्ते के पीछे चले वह कुत्ता उन सबों को दिनके आठ बजे के कालमें उन्हीं चोरों के घर लेगया दोनों चोर घरहीमे थे१० आदमी को देखकर चोरोंके मुखमें तेजीआगई और सेवा में उपस्थित हुए क्योंकि उसी धनी की वेह आसामी थे बैठ गये परन्तु कुत्ता स्वामी पास जाकर फिर २ चोरोंके घरभितर ही जाना चाहता है धनीने एक आदमीको भेज कर ग्राम के चौकीदार को बुलालिया उसके सामने कुत्तेके पीछे उनके घरमें घुसे तो कुत्तेहीने वेगसे अपने पौंचे मारके मट्टी खोद चोरी का माल प्रसिद्ध करदिया सब लोग देखकर हैरान हुए वह सारा माल चौकीदार के हाथमें देकर उन दोनों को बांध थाने में पहुँचाया आखिर वेह दोनों कारागार में गये और धनी को कुत्ते की बदौलत माल मिला इत्यादि अनेक आख्यायिका कुत्ते बन्दर शुकसारिकादिकों की स्वामी का हित दिखलानेवाली लोक

में प्रसिद्धहैं यदि लिखें तो पृथक् इनहीं का ग्रन्थ होसकताहै, याते हे प्रिय ! पुरुषनौकरसे भी विना नौकरी के रोटी मात्र से स्वामीका हित करने वाले यह कुत्ते आदिक जीवहैं इनको गाड़ीपर साथ बिठलाना तथा दूध पिलाना कुछ उनकी प्रारब्ध नहीं वह बिचारे पूर्वोक्त रीतिसे पुरुषार्थ से लेतेहैं जो नीच नौकर अपने धर्मसे जीविका भी पातेहैं और चोरोंके साथ मिलकर अपने स्वामी का भेद बतलाके चोरीभी करवा देतेहैं उन नीचों से तो कुत्ते आदिक जीव सहस्र गुण अच्छे हैं।

इति पश्वादिप्र० विचारे चतुर्दशो विश्रामः ॥ १४ ॥

अथ पंचदश विश्राम १५.

(राजकु०) महाराज! अनेक लोग व्यापारी व्यापारमें उद्योग तो सभी करतेहैं परंतु जिनकी प्रारब्ध अच्छी होतीहै उनको लाभ होताहै।जिनकी प्रारब्ध अच्छी नहीं होती लाभ नहीं होता। (पं०) हे प्रिय ! यही क्यों नहीं कहता कि, जिनका उद्योग सम्यक् होताहै उनको लाभ होता है। और जो पूरा उद्योग नहीं करसकते उनको नुकसान होता है। (राजकु०) महाराज! व्यापारमें पूरा उद्योग क्या करसकता है व्यापारी लोग प्रारब्ध के भरोसे पर लाखों रुपये का माल खरीद रखते हैं जो कुछ प्रारब्ध से मिलना होता है मिलताहै।(पं०) हे प्रिय! व्यापार में उद्योगी पुरुष किसी व्यापारमें कदापि घाटा नहीं खासकता व्यापारमें मुख्य उद्योग यह है कि, समयपर वस्तुको जुटाना और नौकरोंपर चौकस रहना.जो व्यापारी नौकरों के भरोसे माल छोड़देगा उसका दिवाला निकलने का भी सम्भवहै। (राजकु०) महाराज! अनेक मन्दभागी व्यापारियोंके माल पानीमें डूब जातेहैं, अग्निमें जल जातेहैं वहां किसी के उद्योगकी पेश नहीं जाती। (पं०)हे प्रिय ! इन सबका उत्तर हम पूर्व देचुके कि, प्रमादी की कौन दुर्दशा है जो न हो अर्थात् जलसे वा अग्निसे वा चोरोंसे प्रमादी ही की दुर्दशा होती है दूसरे की नहीं। (राजकु०) महाराज ! क्या कोई जानबूझ के प्रमाद करताहै सब प्रारब्ध के वेगसे होजाता है।(पं०) हे प्रिय! तुम सोचो कि, जितने व्यापारी व्यापार

करते हैं उन सबपर प्रारब्धका वेग कभी न कभी आता है वा किसी एक पर आताहै किंवा आधों पर आताहै अथवा देशविशेष की कौमों पर नियत है यदि सबपर कहो तो सो ठीक नहीं कितने व्यापारी मैंने व्यापार-ही से कई पुश्तों से कोटयाधिपति देखे हैं यदि कहो कि, किसी एकपर आताहै तो हमने माना परन्तु हम उसको मूढबुद्धि प्रमादी कहेंगे और तुम मन्द प्रारब्धवाला कहोगे नाम मात्र का भेदहै परन्तु सोचना चाहिये कि, किसकी संज्ञा यथार्थ है तुमने उसका नुकसान देखकर मन्द प्रारब्ध का अनुमान कराहै और हमने जिस कारणविशेषसे उसका नुकसान हुआहै उसको प्रत्यक्ष देखकर उसका अप्रतिकार करनेवाले को मूर्ख प्रमादी कहाहै तुम्हारी संज्ञा आनुमानिकहै याते निर्बलहै और हमारी प्रत्यक्षहेतुक है याते प्रबल है, इससे यह सिद्ध हुआकि जहां किसी को व्यापार से नुकसान हुआ वह मूर्खहै उसको व्यापार करना नहीं आता यदि आधों पर कहो तो नियम से आधे व्यापार से लाभ उठानेवाले तथा आधे हानि उठानेवाले होने चाहिये ऐसा तो दीख नहीं पड़ता यदि देशविशेष की कौमों पर कहो तो सोभी ठीक नहीं सब देशके व्यापारीलोग अपनी कुशलबुद्धिसे हजारों रुपये पैदा करते हैं और कितनेक मूर्ख इन्द्रियारामी केवल नौकर-विश्वासी दिवाला निकाल बैठते हैं, कार्य्यमात्रमें दीपवत् प्रकाशनेवाली प्रारब्ध बिचारी का केवल उद्योगजन्य व्यापार में कौन संबन्धहै प्रत्युत मारवाड़ देशकी वैश्यकौम केवल व्यापारसे आर्य्यावर्तमात्र में बढी चढी देखलेवो। (राजकु०) हम कल्पना करेंगे कि, वे सभी अच्छी प्रारब्धवाले हैं।(पं०) हे प्रिय! प्रसिद्ध पितृसत्त्वकाल में अज्ञात कुल बालक की कल्पना करनी बुद्धिमत्ता का काम नहीं है हमको स्पष्ट प्रतीत होता है कि,मारवाड़ी, वैश्यलोग व्यापार में अतिकुशल और उद्योगी हैं इसी से उसी काम से उनका प्रतिदिन अभ्युदय भी है और [वाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्] अर्थात् व्यापार करना वैश्य का मुख्य काम है इस शास्त्रविहित क्रिया भी उनकी है,हे प्रिय! अधिक क्या कहूं आर्य्यावर्तमात्रमें सिवाय इसवैश्यकौमके कोई

कौम भी अपने धर्मको वा कर्मको पालनकरनेवाली नहीं है सभी कौमें स्वधर्मसे नष्ट भ्रष्ट आलसी प्रमादी होरही हैं, शीशमहलगत श्वानवत् स्वइतर धर्मोंमें प्रविष्ट होय बुकबुका रहीहैं केवल प्रारब्ध शब्द मात्रसे ही संतुष्ट होय सुख नींद से सोरहीहैं, हे प्रिय! मैं प्रतिज्ञा करके कहता हूं जैसे यह वैश्यकौम प्रारब्ध शब्दका तथा परधर्म का निरादर कर स्वधर्म में तत्परहै और अभ्युदय को प्राप्तहोरही है वैसेही यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्रभी प्रारब्ध माता को त्याग कर केवल उद्योग पिता की शरण लेवें और शास्त्रविहित स्वधर्मका पालन करें तो आशाहै कि, फिर देशका उज्जीवन होसके अन्यथा कोई काल हमारे वैश्यभाइयोंपर भी ऐसा आवेगा कि, जिसमें वह स्वउन्नति न कर सकेंगे, हे प्रिय! सोचो जिस गृहमें चार भाईमें से दो बड़े बड़े हीं नालायक होवें और सबसे छोटा भी नालायक होवे उनमें तृतीय लायकभी हो तो भी क्या करसकताहै कार्य्यका बिगाड़ना तो ऐसा सहलहै कि, यदि तीन अच्छा करतेहोवें तो एकही बिगाड़ सकता है परन्तु यहां तो तीन भाई बिगाड़नेपर तत्परहैं खाली एकभाई अच्छा चाहता और करता है कहांतक चलेगा याते हे प्रिय! निश्चयकर मारवाड़ देशके वैश्यों की तरह दृढचित्त होकर व्यापार करनेवालेको कदापि घाटा नहीं होता सो यावत् उद्योग साध्य है याते उद्योगहीका विजयहै।

इति व्यापारविचारे पंचदशो विश्रामः ॥ १५ ॥

अथ षोडश विश्राम १६.

(राज०) महाराज! मैंने सुना कि, किसी गृहस्थीने किसी साधु महात्माके आगे अपनी संतान की प्रार्थना की, उस महात्माने योगबलसे उसकी पूर्वसंतान की प्रारब्ध देखी तो कहा कि, तुम्हारे पुत्र न होगा, वह बिचारा निराश होकर घरमें आपड़ा साधुलोगोंपर विश्वासीथा साधुकी बात सुनकर अतिखेद हुआ शोकमें दो चार रोज गुजरे तो रात्रिके १२ बजे एक साधु मांगता २ आया और इस शब्दको कहताहै कि, 'जो जितनी रोटी इस कालमें देवे वह उतने पुत्र पावे' इस चालकी टेर उस धनीके कानतक पहुंची शीघ्र उठा और स्व-

स्त्रीसे कहा कि, कोई रोटी है उसने कहा हां सात हैं धनी बोला सातों साधुको देदेवो स्त्रीने वैसेही किया तदनंतर सात सालमें उसी धनीके सात बेटे हुए, उसमें मैं यह पूछताहुं कि, यदि प्रारब्ध कुछ चीज न हो तो पहला साधु कैसे कहता कि, तुम्हारी किसमत में नहीं है। (पं०) हे प्रिय! प्रारब्ध कुछ चीज नहीं है ऐसा तो मेरा मत नहीं, खाली यह कहताहूं कि, मुख्य उद्योग है प्रारब्ध दीपकी तरह क्रिया मात्रकी प्रकाशिका है और पूर्वोक्त साधुओं के विषयमें जो तुमने कथा कही सो ठीक परन्तु उससे प्रारब्धकी सिद्धि नहीं होती ऐसा प्रतीत होता है कि, किसी साधुसे किसी धनिकने पूछाहोगा कि, महाराज मेरे पुत्रहोगा या नहीं तो साधुने अपने मानसिक बलसे उसकी तथा उसकी स्त्री की शरीरारोग्यता देखी तो ठीक न होगी इसीसे उसने कहदिया होगा कि, तुम्हारी प्रारब्ध में संतति नहींहै, तदनंतर रोटी लेनेवाले साधुने अपने मानसिक बलसे उनकी बीमारी दूर कर पुत्र उत्पत्ति की योग्यता करदी होगी इससे प्रारब्ध की सिद्धि नहीं, प्रत्युत उद्योगका विजयहै देखिये साधुने अभ्यास कर मानसिक बल सम्पादन किया और उसने कितनो को लाभ पहुँचाया।(राजकु०) महाराज! बीमारी तो औषधी से दूर होतीहै कभी मानसिक शक्तिसेभी रोग दूर होसकताहै (पं०) हे प्रिय! इस वार्ता में तो लिखे पढे किसीको भी सन्देह नहींहै अर्थात् बहुत महात्मा अबभी विद्यमानहैं जिनकी दृष्टिमात्र से रोग दूर होजाते हैं।

इति प्रारब्धविचारे आख्यायिका कथनंनाम षोडशो विश्रामः ॥ १६ ॥

अथ सप्तदश विश्राम १७.

(राजकु०) महाराज! आपने अनेक वार उद्योग की मुख्यता तथा प्रारब्ध की गौणता दिखलाई परन्तु प्राचीन महात्माओंसे तथा नीतिनिपुणों से तो उद्योग का तथा प्रारब्ध का बहुधा समबल श्रवण कराहै जैसे कहते हैं कि, एकसमय राजा विक्रमाजितके पास दो मनुष्य परस्पर विवाद करते २ पहुँचे उनमें एक प्रारब्धको बलिष्ठ मानता था और दूसरा उद्योगको बलिष्ठ मानता था, राजा दोनोंके तात्पर्य्यको सुनकर चुप रहा और

उन दोनों के उत्तरार्थ एक गाढ अन्धेरे मकानमें एक कोने के आलेमें एक सेर का लड्डू बना कर रखदिया और उस लड्डू में एक रत्न भी बाँध दिया उसी मकान में उनदोनों को ४ दिन तक कैद कर-दिया उनमें प्रारब्धवादी तो शान्त होकर बैठरहा सोचा कि, यहां हमारी प्रारब्धमें कुछ नहीं है परन्तु उद्योगवादी ने सोचा कि, विना दोष राजाने हम दोनों को कैद किया है सो कुछ मारदेनेके तात्पर्य्यसे न होगा ऐसा विचार तीसरे दिन इधर उधर हाथ मारा तो उद्योगी को वही मोदक मिल गया जो राजाने बनवा कर रखवाया था उद्योगी ने उतार तोड़ कर आधा प्रारब्धवादी को दिया दोनों खायकर फिर प्रफुल्लित हुए परन्तु रत्न प्रारब्धवादीके भागमें गया उसने उद्योगी को कहभी दिया कि, यह रत्न बीचसे निकला है आप लीजिये परन्तु उद्योगी ने नहीं लिया कहा कि, यदि हमको मिलना होता तो हमारे भागमें निकलता फिर पीछे चौथे दिन राजाने दोनों को कारागार से निकाल कर पूछा कि, तुमलोगोंको तुम्हारे प्रश्नोंका कुछ उत्तर मिला उन्होंने कहा स्पष्ट समझा नहीं राजाने कहा तुम चार दिन पीछे भूखे प्रसन्नवदन कैसे निकले तो दोनोंने एक दम उत्तर दिया कि, मेरी प्रारब्धसे मेरे उद्योगसे एक मोदक मिला उसके भक्षणसे फिर स्वास्थ्य हुआ तो राजाने उन दोनोंको कहा कि, तुम सोचो यदि प्रारब्धवादी की प्रारब्ध कुछ वस्तु न होती तो उसको दूसरे के उद्योग-द्वाराभी रत्नलाभरूप अधिक फल कैसे देती तथा उद्योगी का उद्योगभी कुछ वस्तु न होता तो उसके उद्योग विना प्रारब्धवादी को एक तृण भी मिलना कठिन था याते हे भाई! प्रारब्ध उद्योग दोनों ओत प्रोत सम बल हैं इसरीति से दोनों को तुल्यबलता का राजा विक्रमादित्य का मत है आप उद्योगको अधिक कैसे मानते हो । (पं०) हे प्रिय ! इस आख्यायिका से भी तो उद्योगहीका विजय है यह सिद्धान्त तो हम पूर्व बहुधा कह चुके कि, विना उद्योग से प्रारब्ध भी फल नहीं देसकती शेष रहा कि,प्रारब्धवादी को रत्न-लाभरूप अधिक फल हुआ सो कुछ वार्ता नहीं है यह केवल उद्योगी की

सभ्यता है कि, उसने अधा बाँट दिया और उसके भागमें रत्न निकला भी न लिया यदि उद्योगी उसको आधा न देता अकेला ही खाय जाता तो उस प्रारब्धवादी का कुछ जोर न था और वह रत्न दे ही रहा था यदि वह लेलेता तो प्रारब्धवादी का कुछ उजर न था याते हे प्रिय ! तुम निश्चय करो उद्योगही मुख्यहै।(राज०) यदि ऐसा है तो राजा विक्रमने क्यों दोनों के सम बल का उपदेश दोनों को करा । (पं०) हे प्रिय ! लोगों के तुम्हारी तरह दृढ संस्कार प्रारब्धके ही देखकर राजानेभी वैसाही उपदेश करा परन्तु राजा स्वयं प्रारब्धवादी न था यदि प्रारब्धवादी होता तो अति उद्योगसे अपना यश भूतलमें कैसे फैलाता उसके उद्योग की बातें सिंहासनबत्तीसी नामक पुस्तक में प्रख्यात हैं । (राज०) महाराज! मैंने अनेक महात्माओंके मुखसे सुना कि. प्रारब्ध उद्योग दोनों समबल हैं दृष्टांत जैसे–किसी एक धनीके उपवनमें एक पंगु और एक अन्ध रहते थे परन्तु धनीको विश्वास था कि ये दोनों फलोंका नुकसान नहीं करसकते क्योंकि, एक उनमें चल नहीं सकता दूसरे को दीखताही नहीं कितने दिन बागमें रहते रहे तो एक दिन पंगुने अंधे को बुलाकर कहा कि, मित्र! यदि तू मेरे को अपने काँधे पर उठा कर जिधर को मैं कहूं चले तो तुम्हारे को सुंदर फल खाने को तोड़देवूं इस बागमें विचित्र नानाविध अनन्त फलहैं उस अन्धने मान कर वैसेही किया और आनन्द से अनेक प्रकार के फलोंसे जीवन बिताया वैसेही संसाररूपी गहन बागमें प्रारब्ध पंगुलीहै और उद्योग अन्धहै पृथक् होकर संसाररूपी बागका सुख दुःखरूप फल कोई भी दोनोंमें नहीं खाय सकता यदि मिलें तो खाय सकतेहैं । (पं) हे प्रिय ! जो वस्तु जिस पुरुष के मंतव्य के विषय होती है उसको वह अनेक दृष्टांतो से सिद्ध करताहै चाहो वह वस्तु कैसीही प्रमाणशून्य होय परन्तु कहनेवाला अपनी इष्टसिद्धि अर्थ अपने तात्पर्य्यको नानाविध दृष्टान्तोंसे कहता ही है अब प्रकृत दृष्टान्त को सोचना चाहिये कि, जैसे प्रारब्ध के स्थानापन्न पंगु पुरुष उद्योग स्थानापन्न अन्धके काँधे पर

सवार होकरभी उद्योगसे नानाविध फलको तोड़ता है क्या वैसेही प्रारब्ध भी उद्योगकी सहायता से उद्योगरूप होजातीहै या नहीं यदि होतीहै तो नामान्तर से उद्योगही कहना चाहिये यदि नहीं होती तो दृष्टान्त विषमहै याते हे प्रिय ! तुम निश्चय करो कि, कतिपय तंत्रसिद्धान्त सिद्ध तुम्हारी प्रारब्ध सर्वतंत्रसिद्धान्तसिद्ध हमारे उद्योग की तुलना कदापि नहीं लेसकती ।

इति प्रारब्ध विचारे उदाहरणकथनं नाम सप्तदशो विश्रामः ॥ १७ ॥

अथ अष्टादश विश्राम १८.

(राज०) महाराज! मैंने इतिहास से सुना कि,किसी एक कालमें राजा जनमेजय व्यासदेवजीके पास बैठा था तो उसने प्रश्न किया कि. महाराज! हमारे पूर्वज महाराज युधिष्ठिरादि तथा दुर्योधनादि परस्पर रागद्वेषसे तथा द्यूतादि अपकर्मों से विध्वस्त हुए आपने उनको सुशिक्षा क्यों न दई तो व्यासदेव बोले, हे राजन् ! भावी प्रबल है किसी की शिक्षा की पेश नहीं जाती जनमेजयने कहा महाराज यदि प्रथम विदित होय तो भावी क्या करसकती है उसके सहस्र प्रतिकार (उपाय) होसकते हैं व्यासजीने कहा. राजन् ! जो तुमने कहा सो सत्य परन्तु भावी वेग अति प्रबल होना है जैसे देखिये तुम्हारे पर ही आनेवालाहै तुमने यत्नसे टार देना हम तुझे कहते हैं कि, एक सौदागर घोडी बेचने आवेगा वह तुमने न खरीदनी यदि खरीदो तो उसपर आप सवार कदापि न होना यदि होवो तो सवारहोकर दक्षिण दिशा को न जाना अन्यथा तुम्हारा भला न होगा राजाने उस कालमें तो व्यासदेवजीका कथन स्वीकार किया घोडामात्र खरीदने से बन्द करदिया परन्तु कुछ काल के पीछे राजा व्यासवचन को भूलगया वैसेही एक घोडोंका सौदागर आया और राज्यभृत्योंने भी आय कर निवेदन किया कि, दीनबन्धो! घोडा सरकारमें कामका कोई नहीं रहा यदि आज्ञाहोय तो खरीदे जावें राजाने खरीदने की आज्ञा दी कितने घोडे और एक अति सुंदरी घोडी खरीदीगई लोग उस घोडी की अति प्रशंसा

करने लगे उस प्रशंसा को सुनकर राजा उसपर सवार हुआ और शिकार खेलने गया मृगके शिकार के पीछे घोडी छोड़ी वह दूर देश में दक्षिणदिशा को लेगया आगे जाय कर शिकार तो दृष्टि से चूक गया और राजा अकेलाही था विश्रान्त होकर एक सरोवर के किनारे घोडी को पेड़से बाँधकर सोगया उसके सोते ही एक घोड़ा सरोवर से निकला उसने घोड़ी के साथ भोग किया और फिर जलमें प्रवेश करगया राजा उठकर सवार होकर शहर में आया कुछ काल पीछे उसी घोडीके एक ऐसा बच्चा पैदा हुआ कि, जिसके चिह्न सारे यज्ञके घोडे के थे तो ब्राह्मणोंने राजा को प्रेर कर यज्ञ करवाना चाहा राजाने स्वीकार किया १८ ब्राह्मण यज्ञक-रने को नियत किये यज्ञसमाप्ति के पीछे राजा और उसकी राणी दोनों अति श्रद्धा से भोजन उन ब्राह्मणोंको करवातेहीथे जो राणीका वस्त्रवायुवेगके साथ शरीरसे उड़ा उसी कालमें ब्राह्मण सबके सब एकदम हँसे राणीको इस वार्ताका अतिक्रोध हुआ और भोजन बर्ताने से बन्द होगई और राजा को कहा कि, येह ब्राह्मण काम के नहीं हैं वधके योग्यहैं राणी सुंदरी थी राजा उसके वशीभूत था राणी की आज्ञासे राजाने भोजनकालही में १८ ही खड्ग लेकर काटदिये जिनकी परम हत्यासे राजा जनमेजय को उसीही जन्म में १८ कुष्ठ हुए फिर उन कुष्ठों की शान्तिके वास्ते व्यासदेवजीके शिष्य जैमिनिने राजा को १८ पर्व महाभारत सुनाया सो ऐसेही हे महाराज ! यदि प्रारब्धवेग प्रबल न होता तो व्यासजी जनमेजय को ऐसा उपदेश कैसे करते । (पं०) हे प्रिय! उपदेश तो बडे लोगों का जैसे को तैसा होताहै जैसे कोई विषयलंपट भिक्षु को कहे कि, देखो हम तुझे भावी बतलाते हैं जबही कहीं एकान्तमें स्त्री मिलेगी तुम्हारा धैर्य्य नहीं रहेगा अथवा जैसे कोई सुन्दर स्वरूप दर्शनाभिलाषी पुरुषको भावी बत-लावे कि, जहां तुमको सुंदर स्वरूप मिलेगा तुम दृष्टि देने से नहीं रुकोगे अथवा गायनविद्यानुरागी पुरुष को यदि कोई भावी बतलावे कि, जहां तुम सुशब्द को सुनोगे आगे चल न सकोगे और तालभी अवश्यही देवोगे तो

यह क्या भावी बतलानाहै कदापि नहीं केवल वस्तुस्थिति का बतलाना है तैसे ही जो हम पूर्व भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा तथा, इन्द्रियापाटव यह चार दोष पुरुष मात्रके कह चुके इन दोषोंमेंसे किसी पुरुष में कोई प्रबल होवेहै और किसी पुरुषमें कोई, इन दोषों से शून्य पुरुषसंज्ञावाला कोई भी नहीं जब ऐसी स्थिति है तो व्यासदेवजी भी राजा जनमेजय को जानतेथे कि, यह प्रमादी है स्त्रीसेवीहै चाहो हम कितना उपदेश करें सबको भुलाकर यथेष्ट चलेगा इसीसे ऐसा उपदेश सुनादिया अन्यथा व्यासदेवजीके मतमें यदि भावी प्रबल है तो केवल उद्योग के कहनेवाले कृष्णवाक्यों को श्लोकबद्ध व्यासजीने क्यों किया ? तथा केवल उद्योग प्रतिपादक पतंजलि महर्षि के योगसूत्रों पर भाष्य क्यों बनाया ? तथा महाभारत में एक पर्वका पर्व उद्योगके विषयमें क्यों लिखा ? तथा अतिश्रमसे नाना विध सुशिक्षा के कल्पद्रुमरूप १८ पुराण क्यों लिखे ? यदि कुछ लिखने को चित्तभी करता तो केवल इतनाही लिखते कि. जो होताहै भावीसे होता है उनका यही लेख मानों सर्व वेदशास्त्रका साररूप होता और ऐसा तो नहीं लिखा याते जाना जाता है कि. व्यासजी उद्योगहीको मुख्यमानते हैं इति।

इति प्रारब्धविचारे अष्टादशो विश्रामः॥ १८ ॥

अथ एकोनविंश विश्राम १९.

(राज०) महाराज ! स्वरूपा सुशीला स्त्री या सुबोध स्वरूपवान् आज्ञाकारी पुत्र या अकारणिक शुभचिन्तक मित्र इत्यादि सुखसाधनसामग्रीका मिलना तो विना प्रारब्धसे कैसे बन सकता है। (पं०) हे प्रिय ! आपके कहे दोनों गुण एक स्त्री में मिलने कठिनहैं यदि दैवात् कोई होय भी तो वह जिस पुरुषके साथ संबन्धवती है उसमें भी उसको योग्यता की आवश्यकता है अर्थात् पुरुषको अपनी स्त्री के गुणोंकी कदर होनी चाहिये अन्यथा कुत्तेके गलेमें हीरा हो या हँडी उसका उसको हानि लाभ हर्ष शोक कुछ नहीं है केवल आप जैसे विचारशील पुरुष देखकर कहदेते हैं कि, यह कुत्ता भाग्यशील या दुर्भाग्य है परन्तु उसका भोग कुत्तेको नहीं किन्तु दर्शकों

को है, वैसेही परीक्षक पुरुषके पास प्राप्तहुई हरएक वस्तु उचित सत्कारको लाभकरतीहीहै तथा परीक्षक पुरुषको उसमें भोगभी यथोचित होता है एवं संसार मात्रमें जितने पदार्थ हैं उनके पूर्णरूपसे परीक्षक होना पूर्ण प्रयत्न साध्य है इसलिये प्रयत्नही का विजय प्रतीत होता है. और सुयोग्य पुत्रके मिलनेका प्रकार तो हम पीछे कहचुकेहैं कि, यदि चिकित्साशास्त्रके अनुसार स्त्री पुरुष दोनों बर्ताव करतेहुए पुत्र सम्पादन का प्रयत्न करें तो अवश्यही अनेकसद्गुणगण सम्पन्न सन्तान होने की सम्भावना होसकती है अन्यथा यथेष्ट पशुवत् चेष्टा करनेसे तो आप जानतेही हैं कि, घुणकीटवत कदाचित् ही 'रा.म' लिखा जासकता है सर्वथा नहीं शेष रहा सुयोग्य मित्रका मिलना सो उसका विचार ऐसा है कि आप संसार मात्रके जनस-मुदायमें सूक्ष्मदृष्टिसे देखें तो प्रायः ऐसेही देखनेमें आताहै कि. जैसे का तैसा मित्र बनता है अर्थात् विद्वान्, का विद्वान् धनीका धनी, चोरका चोर, व्यसनीका व्यसनी इत्यादि, संसार मात्रमें स्वार्थ मित्रताका मूलकारण है वह जहां परस्पर सिद्धहोनेकी अपेक्षा रखताहोय वहां परस्पर समानरूप से मित्रता होती है जैसे सुयोग्य स्वामिसेवककी परस्पर समान स्वार्थ की मैत्रीहै सुयोग्य स्वामी सदा यही चाहता है कि, हम सेवकको हरतरहसे प्रसन्नरखें ताकि प्रसन्न होकर काम अच्छादेवे और सुयोग्य सेवकके चित्तमें सदा यही रहता है कि, मैं अपने स्वामीको सदा प्रसन्न रक्खुं ताकि, अधिक लाभहोवे, एवं परस्पर मैत्री बढतीही जाती है यद्यपि यह उदाहरण मित्र-ताका नहीं है तथापि इससे परस्पर स्वार्थलाभकी सूचना स्पष्टही होसकती है। ऐसे ही धनी धनी या चोर चोर इत्यादि जहां परस्पर मित्रता करते हैं वह भी अवश्य किसी एक सूक्ष्म स्वार्थही को लेकर होतीहै एवं जहां परस्पर न्यूनाधिक स्वार्थ होय वहां मैत्री भी न्यूनाधिक ही होती है जैसे किसीएक विद्याके विद्वान् की मूर्ख धनी पुरुषसे यहां धनीके साथ मित्रता करके विद्वान् पुरुष अपना यथाकथञ्चित् स्वार्थ सिद्ध करलेता है परन्तु मूर्ख धनीको विद्याकी कदर नहीं इसलिये उसको लाभ कुछ नहीं होता, एवं

स्वार्थसिद्धि या स्वार्थसिद्धिके लिये मित्रता या मित्रताके लिये उद्दिष्ट मित्रके सदृश गुण कर्म स्वभावका सम्पादन उद्योगहीसे हो सकता है इस लिये उद्योगही इस पुरुषकी सुखसम्पत्तिकामूल है । (राज०) महाराज ? किसी एक कविने प्रारब्धकी मुख्यता दिखलाते हुए प्रसङ्गसे ।

किन्न करोति विधिर्यदि रुष्टः किन्न ददाति स एव हि तुष्टः ।
उष्ट्रे लुम्पति रम्बा षम्बा तस्मै दत्ता विपुलनितम्बा ॥ १ ॥

यह श्लोक कहा है भाव इसका यह है कि, कोई लिखी पढी युवती किसी एक अव्युत्पन्न पुरुषके साथ विवाहित हुई मार्गमें एक यानारूढ होकर गमन कालमें युवतीने अपरिचित पतिसे प्रेमपूर्वक वार्तालाप करना चाहा तो अकस्मात् पाससे उष्ट्र (ऊँट) जारहाथा युवतीने पतिसे पूछा 'किमिदम्' तो पतिने उत्तरदिया कि, ' उष्ट्रोऽयम् ' युवतीने पतिके उच्चारणको अशुद्धजान कर फिर पूछा कि, ' किमिति ' पतिने फिर जवाब दिया कि, ' उद्रोऽयमिति ' तब तो युवतीने अपने पतिको अव्युत्पन्न जानकर शोकातुर होय अपने भाग्यकी निर्बलताका सूचक तथा अव्युत्पन्न पतिके भाग्यकी प्रबलताका सूचक यह ऊपरका श्लोक पढा अर्थात् विधाता (दैव) यदि रुष्टहोजाय तो क्या अनुपकार नहीं करसकता एवं वही यदि प्रसन्न होजाय तो कौन संसारकी अच्छीसे अच्छी वस्तु नहीं देसकता क्यों कि, प्रबलविधाताका कर्तव्य प्रत्यक्षही देखनेमें आताहै कि. 'उष्ट्र' शब्दमें कभी 'र्' के कभी 'ष्' के लोपकरके उच्चारणकरनेवाले 'इस' अव्युत्पन्नपुरुषको मैं लिखी पढी सुन्दरी बलात् देदी इति, एवं इस उदाहरणसे प्रारब्धहीकी प्रबलता प्रतीत होती है।(पं०)हे प्रिय! हम इसका उत्तर तो देचुके हैं कि, यदि वह पुरुष उस सुन्दरीकी कदर जानता है तो अवश्य उद्योगीहै क्यों कि, उत्तम वस्तुकी पहचान विना उद्योगसे नहीं आती और यदि वह उसकी कदर नहीं जानता तो उसका उसको सुखही क्या ? संसारमात्रके पदार्थोंकी कदरजाननेवाले पुरुष यथा योग्य उन उन पदार्थोंको प्रयत्नपूर्वक्त लाभकरलेते हैं, क्या आपको यह कदापि सम्भावना है कि, कोहनूरका हीरा यदि अकस्मात् किसी ग्रामीणको मिलजाय तो

उसके पास कितने दिन रहसकताहै भाव यह कि, जिस २ पदार्थकी जिस २ जीवको परीक्षाहै उस २ पदार्थसे वह २ जीव उचितलाभ उठासकता है परन्तु परीक्षाशून्यपुरुषको हीराभी पत्थरकी, कंकर बुझाताहै और परीक्षक तथा उचित प्रयत्नशीलपुरुषको संसारमात्रमें ऐसा कोई पदार्थ ही नहीं जो प्राप्त न होय। (राजकु०) महाराज! परीक्षामें भी भेदहै एक साधारणपरीक्षाहै दूसरी असाधारणहै, प्रथम जैसे गुड कौनको नहीं मीठालगता ? अपनी प्रशंसा सुनकर कौन प्रसन्न नहीं होता ? इत्यादि द्वितीय जैसे रसायनज्ञान, रत्नज्ञान, औषधीज्ञान इत्यादि इनमें द्वितीयपरीक्षा यद्यपि उद्योगसाध्यहै तथापि प्रथमपरीक्षा तो आपशु साधारणहै। (पं०) हे प्रिय ! आपने कहा सो उचितहै परन्तु उसमेंभी सूक्ष्मदृष्टिसे देखाजाय तो गुडभी सभीको मीठा नहीं लगता रोगीको या जिस पुरुषकी मीठाखानेपर रुचि न होय ऐसे पुरुषोंको गुडादि पदार्थभी रुचिपूर्वक ग्राह्य नहीं होते और जिसकी रुचिहै वह यदि उचित यत्नकरे तो उसको वही पदार्थ जो उसके जैसा दूसरा अवश्य प्राप्तहोता है और जिस पुरुष के पास खाली रुचिही रुचि है उद्योग बाप दादाके किये-परही परितुष्ट है ऐसे आलसी पुरुषको संसारका कोईभी अच्छा पदार्थ मिलना कठिनहै प्रत्युत पिता पितामहके एकत्रितकियेभी उस ऐसे मूँजीसे खिसल-पिसल जायँगे । (राजकु०) महाराज! दूसरे पुरुषकी अच्छी वस्तु देखकर क्या उद्योगीपुरुष छीनसकताहै ? । (पं०) प्रथम तो यह वार्ताहै कि, इस परमात्माकी सृष्टिमें कोई एकही वस्तु नहीं है किन्तु परमात्माकी इच्छामात्रसे एक २ पेड़के साथ सहस्रों एकही जातिके फल लगकर तैयार होते हैं वे यथा योग्य उद्योग करनेसे राजा महाराजासे लेकर गरीब अमीर सभीके खानेमें आतेहैं केवल इतनाही भेदहै कि, अच्छे२ फलों को वही पुरुष खाताहै कि, जो अधिक प्रयत्नशीलहै भाव यह कि, एक जातिके अनेक पदार्थ इस संसारमें सदा विद्यमान रहते हैं उनमें अनुरागी पुरुष किसीके पास अच्छी वस्तु देखे तो तत्सजातिको लाभकर अपने चित्तकी अभिलाषाको पूर्ण करसकता है और यदि अपने चित्तकी दुर्बलताके कारण

नही रहाजाय किंतु दूसरेके पास जो वस्तुहै उसीही के लेनेसे संतोष माने तो अधिक प्रयत्नशील मूर्ख ऐसाभी करलेते हैं आप इतिहासोंको देखो कि, यवनोंने कैसे इस अनाथ आर्य्यजातिके स्त्री धन पुत्रादि उत्तम २ पदार्थोंको बलात् हरण किया है, यद्यपि यह नीच उद्योगहै महानुभावोंमें यह कदापि होता ही नहीं तथापि हमारा कहनेका भाव यह है कि, उद्योगसे कोई वस्तु दुर्लभ नहीं है उचित उद्योग होना चाहिये । (राज०) पुत्रका सुन्दर उत्पन्न होना यद्यपि आपके कथनानुसार आयुर्विद्याके अनुसार बर्तावकरने से होसकताहै तथापि उसका गुणवान् सुशील आज्ञाकारी होना आयुर्वेदके अनुसार बर्तावके अधीन नहीं है। (पं०) हे प्रिय ! शरीरका स्वरूप सुन्दर होना आयुर्वेदोक्त आचारके अधीनहै विद्यादि गुणोंका होना उचित शिक्षाके अधीनहै सुशीलतादि गुणोंका होना वीर्य्यके अधीनहै अर्थात् शान्त सुशील विद्वान् पुरुषके वीर्य्यसे उत्पन्न हुआ पुत्र कदापि दुराचारी न होगा किन्तु प्रायः पितावत् गुणस्वभाववालाही होगा इसलिये विचारशील माता पिताको अपनी सुयोग्य सन्तान सम्पादन करनेके लिये प्रथम आप सुयोग्य होना आवश्यकहै अन्यथा जैसेका तैसा पुत्र उत्पन्न होगा तो वह सुशील बुद्धिमान् तथा आज्ञाकारी कहां से होगा । (राज०) महाराज ! संसारमें अनेक पुरुषोंकी अकारणिक मित्रता भी देखनेमें आती है। (पं०) हे प्रिय ! मित्रता तथा शत्रुता यह अकारणिक कभी कहीं नहीं होती किन्तु सकारणिक ही होती है तथा प्रायः सजातियोंहीकी होती है वेह साजात्यभी किसी एक असाधारण धर्मको लेकर समझना चाहिये अर्थात् प्रायः राजाही राजासे शत्रुता या मित्रता तथा भिक्षुही भिक्षुसे शत्रुता या मित्रता करताहै परन्तु राजा भिक्षुसे या भिक्षु राजासे शत्रुता या मित्रता कदापि नहीं करता यदि कदाचित् होगी तो वह किसी एक साधारण कारणको लेकर अत्यन्त साधारणही होगी ऐसीका चिरस्थायी होना दुर्घटहै । (राज०) महाराज! मैंने अनेक पुरुष देखे तथा सुने कि, जिन्होंने अपने मित्रके प्रेम में सर्वस्व तक लुटादिया तथा समयपर प्राणतक देदिये। (पं०) हे प्रिये ! मेरा यह

कहना नहीं है कि, ऐसे पुरुष संसारमें नहीं हैं केवल भेद इतनाही है कि, ऐसे पुरुषोंकी सत्पुरुषोंमें गणनाहै क्योंकि, वे उपकारी मित्रके उपकारका बोझा उसकी विपत्तिके समय नहीं सहारसकते इसलिये उनको सर्वस्व लुटाना या प्राण देनेपड़ते हैं और जो नीचपुरुषहैं वे तो अपने मतलबके समय मित्र बनजाते हैं पीछे उसका उपकार अनुपकार कुछ नहीं समझते इतनेही भेदसे प्रथम पुरुष सत्पुरुष कहेजाते हैं तथा द्वितीय पुरुष स्वार्थी मतलबी नीच कहे-जाते हैं परन्तु स्वार्थका संचार उभयत्र समानहै। (राजकु०) महाराज ! जो पुरुष अपने प्रेमपात्र मित्रके देखनेके सिवाय दूसरा कदापि कुछ नहीं उससे चाहता उसका उससे क्या स्वार्थ है? (पं०) हे प्रिय ! ऐसे पुरुषका नाम मित्र नहीं है किन्तु उसको विद्वान् लोग आसक्त (आशक)कहते हैं यह आसक्ति एकतरहकी लाइलाज बीमारी है प्रायः यह अशिक्षित कच्चेहृदय-वाले पुरुषोंको ही होती है इलाज इसका सिवाय प्रेमपात्रमिलनेके दूसरा कोईभी किताबोंमें नहीं लिखा है आसक्त रोगीको अपने प्रेमपात्रके यथेष्ट मिलनेसे थोड़ेही दिन पीछे यह बीमारी दूरभी होजाती है और यदि प्रेमपात्र रोगीको कदापि न मिले किन्तु उसका देखनामात्रभी दुर्लभरहे तो यह बीमारी बढती २ उस मूर्ख आसक्त के प्राण लेडालती है यह बीमारी प्रायः उसी देशमें विशेषकर होतीहै कि, जहां पर्देका प्रचार अधिक हो तथा परस्पर मेलका संचार न्यूनहो. अनेक किस्से कहानियाँ तथा इतिहासों से देखनेमें आताहै कि, इस भारत वर्षके पंजाब प्रान्तमें इस बीमारीका पूर्णरूपसे प्रचार होचुका है तथा है, और प्रान्तोंमें बहुतही कम है उसमेंभी दक्षिण देशके महाराष्ट्र प्रान्तमें या द्रविड तैलङ्गादि प्रान्तोंमें तो इस बीमारीका नामभी नहीं है कारण इसका यही है कि. इन प्रान्तोंमें पर्दे पोशीकाभी नामभी नहीं है किन्तु नई विवाही बहुभी अपने श्वशुर के सामने खुलेमुख साधारण लड़कियोंकी तरह बैठती हैं, पोशीद वस्तुके देखनेकी सहजही पुरुषमें अभि-लाषा उत्पन्न होती है उसी अभिलाषासे आकर्षित होकर कम दिल पुरुष उस वस्तुके देखनेमें प्रयत्नभी करता है कहीं एक ही बार देखनेसे तृप्त हो जाता

है बीमारी दूर होजाती है, और कहीं देखताही फटक जाता है बीमारी प्रतिक्षण बढ़नेलगती है, इसलिये ऐसी अवस्थाका नाम मित्रता नहीं है किन्तु बीमारी है क्यों कि, मित्रताका स्वरूप हम पीछे यह कहचुके हैं कि, उसका संचार सजातियों ही में होता है। और यह बीमारी तो कुछभी नहीं देखती किन्तु आचार, विचार, मान, प्रतिष्ठा' जाति, कुल, गोत्र, धन, धाम तथा बडाई इन सबको एकसाथही धूलिमें मिलादेती है कारण इसका यहीहै कि, प्रेमीपुरुषके चित्तकी दशाको प्रेमपात्र कुछ भी नहीं जानता क्यों कि, वह बिचारा उस कालमें अत्यन्त अबुद्ध होता है यदि कहीं शतमें एक चतुर प्रेमपात्र अपने प्रेमीकी हालत पर आकर्षितहो उसके संतोषक उपायमें चेष्टित भी होताहै तो वह बिचारा मूर्ख जनसमुदायसे बाधित होकर अनेकतरह के क्लेशहीको उठाताहै, यह आसक्तिकी बीमारी कहीं एक तरफीही चित्तको बेचैनी रखती है कहीं २ दोतरफी भी चोट करने लगतीहै। कहीं २ दुतरफी अभिलाषा की अपूर्तिसे परस्पर प्राणभी लेडालतीहै और कहीं परस्पर मिलापप्रयुक्त प्रेमपूर्वक वार्तोलाप करनेसे कुछ दिनमें शान्तभी होजातीहै विचित्र यह बीमारी है प्रायः लिखे पढ़े तथा बुद्धिमानों मूर्खोंही को होतीहै. इस बीमारीके बीमार पुरुष संसारके किसी भी कामके नहीं रहते दैवात् सौमें एक अच्छा भी होजाताहै और बाकी सभी इस बीमारीसे मरही जातेहैं इसलिये विचारशील पुरुषको एसी बीमारीसे बचनेके लिये अपने विचारोंको परम दृढ रखना चाहिये परन्तु विचारों का दृढरखना सिवाय उद्योगी पुरुषके सम्भव नहीं इस लिये हमारे उद्योगहीका सर्वथा विजयहै। (राज०) महाराज ! ऐसे कौन विचार हैं जो जिनके करनेसे इस बीमारीसे पुरुष बचारहे। (पं०) हे प्रिय ! वे विचार अनेक तरहके हैं और विचारशील पुरुषके चित्तमें उनका स्वयं ही प्रादुर्भाव होताहै तथापि उन सबका मूलभूत यह व्यासदेवप्रणीत श्लोकहै-

सर्वे विनाशिनो भावाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं हि जीवितम् ॥ १ ॥

अर्थात यावत् भाव पदार्थ विनाशवान् हैं यावत् उन्नत पदार्थ पतनशील

हैं यावत् संयुक्त पदार्थोंका वियोग होनेवाला है तथा यावत् जीवों का मरण होगा ॥ १ ॥

एवं यावत् भाव कार्य्य क्षणपरिणामी हैं, यावत् भावकार्य्य न्यूनाधिकहैं इत्यादि विचारकरनेसे विचारशील पुरुष का किसी भी पदार्थ में दृढ राग नही होता, रागके न होनेसे दुःखभी नहीं होता, किन्तु अपेक्षितो पदार्थोंके लिये उचित प्रयत्न करता हुआ प्रयत्नशील पुरुष उनपदार्थोंके संसर्गसे यथा योग्य लाभ उठाकर सदैव संतुष्टही रहताहै ।

इति सुशीलस्त्रीमित्रादिलाभविचारे एकोनविंशो विश्रामः ॥१९॥

अथ विंशः विश्राम २०.

(राज०) महाराज! यह जीव क्या स्वाधीनहै कि, पराधीनहै। (पं०) हे प्रिय! यह विचार ऐसा गाढहै कि, जिसके विषे दर्शनकार महर्षि लोगोंकी बुद्धि भी एक मत नहीं होसकी भाव यह कि, सभीका परस्पर अभिप्रायहै जैसे-कणाद तथा गौतम जीवको सदाही कर्मोंका कर्ता तथा ईश्वरद्वारा स्वकृत कर्मोंके फलका भोक्ता मानतेहैं ऐसेही जैमिनिभी इस जीवको कर्मके अधीनही मानताहै परन्तु कपिल पतंजलि तथा व्यास इस जीवका स्वरूप वास्तवसे स्वतन्त्र मानते हैं केवल अज्ञानसे कर्मबन्ध तथा ईश्वरके पराधीन मानते हैं भाव इसका यही हुआ कि, वास्तवसे जीव स्वतन्त्र है किन्तु अज्ञानसे परतन्त्र है । (राज०) इनमें आपका सिद्धान्त क्या है । (पं०) हे प्रिय! मैं तो यही मानता हूं कि, यह जीव वास्तवमें स्वतन्त्रहै किन्तु अज्ञान से परतन्त्रहै क्यों कि, इस पक्षमें युक्ति तथा प्रमाण बहुत मिलते हैं। (राज०) वे युक्ति प्रमाण कौनहैं । (पं०) हे प्रिय! प्रथम युक्ति तो यह है कि, संसारमात्र के जीवोंमें ऐसाही देखनेमें आताहै कि, जहां २ अज्ञान अधिकहै वहां २ पराधीनताहै जैसे २ ज्ञानसम्पन्न होता जाताहै इसको स्वतन्त्रताभी धीरेः २ मिलती जातीहै और प्रमाण तो ।

कर्मणा बद्धयते जन्तुर्विद्यया च विमुच्यते ।
तस्मात्कर्म्म न कुर्वन्ति यतयः पारदर्शिनः ॥ १ ॥

इत्यादि शुकानुशासनरूप शास्त्रको जानना चाहिये अथवा 'जीवः स्वतन्त्रः चेतनत्वात् ईश्वरवत्' इत्यादि अनुमान को जानलेना चाहिये। (राज०) महाराज! मेरेको तो विचारदृष्टिसे देखनेसे जीवमात्र सर्वथा पराधीन प्रतीत होताहै। (पं०) हे प्रिय! वह विचारदृष्टि कैसी है। (राजकु०) ऐसे प्रतीत होता है कि यह जीव प्रथम कर्म्मके अधीन होकर ही माताके गर्भमें आताहै वहां भी पूर्णरूपसे पराधीनता है फिर जन्म लेनेके पीछे जबतक बालपन रहता है अपने माता पिताकी वशवर्तिता रहती है फिर यौवनकालमें तो विचित्र ही दशा होती है अर्थात् मातापिता जाति बन्धु स्वामी राज्य स्त्री पुत्र इत्यादिकों के पराधीन हुआ वस्तुतः अपने अनेक तरहके संकल्प विकल्पोंके अधीन हुआ यह जीव एकक्षणभरभी सुखको लाभ नहीं करसकता उसके पीछे वृद्धपनमें तो औरभी तृष्णा चमक आतीहै शरीर अशक्त होजाताहै शारीरिक क्रियाभी पराधिन होजाती है तो इसकी स्वतन्त्रताका वस्तुतः निर्मूल देखनेमें आताहै। (पं०) हे प्रिय! हमने पूर्व यह सिद्धान्त स्थिरकिया है कि, यह जीव वस्तुतः स्वतंत्रहै इसका पराधीन होनाअज्ञानपूर्वक तथा अन्यायपूर्वक है इसमें आपके कथन से हमारे सिद्धान्तरूप काँटेकी किसी तरफ अधिक झुकाविट नहीं होसकती क्यों कि, प्रथम तो यह बात है कि, आप पक्षकोटिमें तो जीवमात्र को लेतेहैं और साध्यकी सिद्धि केवल मनुष्यहीमें करते हैं यदि विचार करके देखाजाय तो यह जीव सिवाय अज्ञानके सर्वथा स्वतंत्र है गर्भवासदशाभी इसकी अज्ञानदशाहीहै बालपनभी इसकी अज्ञानदशा हीहै उसके पश्चात् यौवनावस्था होनेपर इस मनुष्यके सिवाय यावत् योनियोंके जीव प्रायः आजन्म स्वतन्त्रही रहतेहैं। विशेष केवल इतनाहै कि, उनको न्यूनाधिक बलवाले होनेसे परस्पर एक दूसरेसे भीतिमात्र बनी रहती है परन्तु उनमें एक दूसरेकी पराधीनताका लेशभी नहीं है यह वार्ता जंगलके जीवों में स्पष्टही देखने में आतीहै जीवोंमें एक दूसरेसे भीति या परस्पर प्रेमका होना उनके असाधारण धर्म राग द्वेषादि प्रयुक्त है उसमें कुछ स्वतन्त्रता परतन्त्रताका सम्बन्ध नहीं है, नानजातिका बखेडा भी

जंगलके पशुपक्षियोंमें नहीं है । स्वामी सेवकभाव या राज्यशासनाका लेश भी पशुपक्षियोंमें नहीं है, स्त्री पुत्रादिकों की पराधीनता या उनपर विशेष-रूपसे स्वत्व कि,ये मेरेही स्त्री पुत्रहैं दूसरा इनसे काम नहीं लेसकता, यह वार्ता भी पशुपक्षिगणमें नहीं है और अपने संकल्प विकल्पके अनुसार व्यवहरणका नाम पराधीनता नहीं है किन्तु स्वतन्त्रताहै इसलिये जंगल के पशुपक्षीगण वास्तवसे स्वतन्त्रहैं शेष रही मनुष्यजाति इसकी पराधीनता कृत्रिम अज्ञानपूर्वक तथा अन्यायपूर्वक है वास्तवसे जीवमात्रका स्वरूप स्वतन्त्र है । (राजकु०) जङ्गलके जीव तो मनुष्य जातिसेभी अज्ञान-बहुल हैं आपके सिद्धान्तानुसार तो उनमें स्वतन्त्रताका लेशभी होना नहीं चाहिये । (पं०) हे प्रिय ! उनमें अज्ञानकी बहुलता ही उनके स्वतन्त्रपनका कारण है क्यों कि, हमारे शास्त्रका यह सिद्धान्त है, कि–

सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम ।
एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः ॥ १६० ॥
मनुः अ० ॥ ४ ॥

अर्थात् पराधीन जीवको सम्पूर्ण रूपका दुःख रहता है तथा स्वाधीन जीवको सर्वतरहका सुख रहता है यह संक्षेपमात्रसे सुख तथा दुःखका ल क्षणजानलेना चाहिये इस मनु वचनसें स्वाधीनहीको पूर्ण सुख लिखा है दूसरेको नहीं, एवं दूसरे नीतिवचन में ऐसाभी लिखा है, कि–

यश्च मूढतमो लोके यश्च बुद्धेः परंगतः ।
तावुभौ सुखमेधेते क्लिश्यन्त्यन्तरितो जनाः ॥ १ ॥

अर्थात् जो जीव इस लोकमें मूढतम है अथवा जो जीव इस लोकमें परम विद्वान् है वेही दो इससंसारमें सुखीहैं बाकी मध्यपाति यावज्जीव सदाक्लेशाक्रान्तही रहतेहैं इन दोनों वचनोंकी एक वाक्यता करनेसे हमारा सिद्धान्तपूर्ण रूपसे स्फुट होताहै । जंगलके जीव मूढतमहैं इसलिये स्वतन्त्र भी हैं (राजकु०) महाराज ! जंगलके जीव भी तो अनेक परवश होकर असीमदुःखको उठाते दीखपडतेहैं ।(पं०) हे प्रिय ! विचारदृष्टि सामान्य-

रूपसे पदार्थों के आंदोलनमें प्रवृत्त होतीहै किन्तु किसी एक व्यक्तिविशेष को लेकर प्रवृत्त नहीं होती है । एवं यदि सामान्यरूपसे देखा जाय तो जंगलके यावत्जीव स्वतन्त्रही देखने में आते हैं । और यदि कहीं सिंह व्याघ्रादि विशेष व्यक्ति पराधीन देखने में आती हैं तो वेह किसी राजामहाराजादि विशेषजीवके विशेष स्वार्थवशसे देखनेमें आतीहैं एवं किसी एक व्यक्तिविशेषके पराधीन होनेसे जंगली जीव जातिमात्रको पराधीन कहना या मानना युक्तियुक्त नहीं है (राजकु०) जंगली जीवोंका विचार जैसा हो वैसाही रहो परन्तु मनुष्य जाति तो सर्वथा पराधीनही देखनेमें आतीहै । (पं०) हेप्रिय ! मनुष्य जाति भी स्वार्थवशसें परस्पर पराधीन है वस्तुतः पराधीन नहीं है। (राजकु०) मनुष्य जातिमें कोई भी स्वतंत्र देखनेमें तो नहीं आता । (पं०) सहस्रों राजा महाराजा तथा सहस्रों सिद्ध.यती योगी लोग सर्वथा स्वतन्त्र प्रकृतिके होचुके वर्तमानमें हैं तथा आगेभी होंगे। (राजकु०) महाराज ! आपहीके कथनानुसार किसी विशेष व्यक्तिके उदाहरणसे उस जातिमात्रको स्वतन्त्र कहना भी तो उचित नहीं। (पं०) हे प्रिय ! वस्तुतः इस जीवको कोई भी पराधीन नहीं कर सकताहै किन्तु स्वस्वस्वार्थके वशीभूत प्राणीमात्र आपही एकदूसरेकी पराधीनता स्वीकार करलेतेहैं चौरासी लक्ष जीवयोनिमें यह मनुष्य योनि बुद्धिबलमें सबसे अग्रगण्यहै जैसेही इसमें बुद्धिबलकी प्रधानताहै वैसेही इसमें काम. क्रोध.लोभ,मोह,मत्सर, राग,द्वेष, ईर्षा,द्रोह इत्यादि अवगुणोंकी भी प्रधानता है अर्थात् ऊपर कहे दुर्गुण मनुष्य योनि जैसे प्रबल और योनियोंमें नहीं हैं यही मूलकारण इस मनुष्य योनिके अधिकतर पराधीन होनेका है और जहां मनुष्यशरीरमें भी इन दुर्गुणोंकी न्यूनता है वहां मनुष्यशरीरमें भी प्रायः स्वतन्त्रताही देखनेमें आतीहै,उदाहरण इसका हम सहस्रों इत्यादि पंक्तिसे कहही चुके हैं।(राजकु०) महाराज ! राजेमहाराज तो आपके कहे दोषों से रहित नहीं हैं उनमें स्वतन्त्रता का होना आपने कैसे कहा । (पं०) हे प्रिय ! उनकी स्वतन्त्रता केवल हमने लौकिकदृष्टिसे कही है वस्तुतः

वेह स्वतन्त्रभी नहीं हैं। (राजकु०)राजा महाराजाओंको किसकी पराधीनताहै। (पं०) यह तो आपको मालूमही होगा कि, सबही पुरुष राजा नही होते किन्तु सहस्त्रों लक्षों या कई कोटि मनुष्योंमेंसे एकही राजा होताहै, उस एक मनुष्य जैसे मनुष्यमें अनेक सजातियों के स्वाधीन करनेकी या रखनेकी शक्ति कदापि नहीं होसकती इस लिये वह अपने राज्य जमानेके लिये अनेक सजाति मनुष्योंको साथ मिलाकर उनके वशवर्ति होय इतरोंपर अपना अधिकार जमालेताहै । दीन दुःखी लोग कई एक अनर्थोंसे भयभीत हुए उनके यथा योग्य शासनको स्वीकार करलेतेहैं, कालान्तरमें वेह अधिकार जमानेवाले लोग यदि उस स्वा धीन नाम मात्रके राजाके साथ मिलकर कोई प्रजा पर अनुचित अत्याचार करें तो प्रजा उस अत्याचारको न सहन करती हुई उस राजाको सहित उसके सहायकों के निर्मूल कर देतीहै इस वार्ताका उदाहरण अनेक यवन राजे होसकतेहैं और यदि वही राजा अपने सहायकों केसमेत समय २ पर प्रजा की प्रार्थनापर विशेष दृष्टि रक्खे तो उसको कदा- पि कुछ भय भी नहीं होताहै इस वार्ताका उदाहरणरूप हमारे अनेक प्राचीन राजे महाराजे होसकते हैं इसलिये राजा सर्वथा स्वतन्त्र नहींहै किन्तु अपनी प्रजाके तथा अपने सहायकोंके परम पराधीनहै। (राज०) आपके इस कथन से तो मेराही मत सिद्ध हुआ क्यों कि, मेरी समझमें जीव सर्वथा परतन्त्रही प्रतीत होताहै। (पं०) हे प्रिय! हम तो पूर्व आपको कहही चुके हैं कि, इस जीवका वास्तवस्बरूप स्वतन्त्रहै और कर्मबन्ध या पराधीनता इसकी औप- चारिकहै विविधवासनाविष्ट स्वार्थवश होकर यह जीव वस्तुतः स्वतन्त्र भी अपने को परम परतंत्र मानताहै कर्मबन्ध या अनेक प्रकारका वासना- जाल यदि इस जीवका कदाचित् स्वरूपभूत तथा सनातन होय तो उसको नित्यभावस्वरूप होनेसे उसका उच्छेदभी नहीं होना चाहिये यदि ऐसा होय तो इसकी मोक्षदशा प्रतिपादक शास्त्र सबही व्यर्थ ठहरेंगे मोक्षप्रतिपादक शास्त्र परम युक्तियुक्त हैं यद्यपि ग्रन्थवृद्धिके भय से उन युक्तियोंको

हम यहां नहीं लिखसकते तथापि मोक्षप्रतिपादक शास्त्रका निरर्थक होना असम्भवहै इसलिये जीवका वास्तवस्वरूप स्वतन्त्रहै और कर्मबन्ध या पराधीनता इसको औपचारिकहै अर्थात् इसकी वासनाओंके विचित्र होनेसे इसको अनेक प्रकारके बन्ध तथा पराधीनता प्रतीत होतीहै जैसे २ जहां २ जिस २ जीवमें वासनाओंका संकोच है वहां ही उस जीवको पराधीनता कमहै या लेशभी नहीं, इसका उदाहरण विद्वान् साधु महात्मा लोग या सुषुप्तिमें हरएक जीव होसकता है महात्मा पुरुषोंमें वासनाजाल कम रहताहै इसलिये पराधीनता भी बहुतही कम रहतीहै सुषुप्तिकालमें वासना नहीं होती पराधीनता की प्रतीति भी नहीं होती ऐसेही हरएक प्राणीमें जानलेना चाहिये- (राज०) वास्तव स्वरूप इसका चाहो स्वतन्त्रही हो तथापि देखनेमें यह जीव परतन्त्रही प्रतीत होताहै । (पं०) हे प्रिय ! प्रथम स्वतन्त्र शब्दके अर्थकी विचारणा करें तो इसका स्पष्टार्थ 'यथेच्छाचारी' प्रतीत होताहै एवं लोकमेंभी जो जिसके अधीनहै वह अपनी इच्छाके अधीन है अर्थात् स्वार्थवशसे है इस लिये स्वतन्त्रही कहना चाहिये । (राज०) माहाराज! उनकी अपनी इच्छा से विनाभी तो राजालोग बलसे जीतकर अनेक मनुष्योंको स्वाधीन करलेतेहैं (पं०) हे प्रिय ! हम पूर्व कहचुकेहैं कि, और योनियोंसे इस मनुष्ययोनिमें राग द्वेषादि दुर्गुण अधिकहैं ऐसेपर यदि राजा न होय तो परस्पर कटके मर जावें बली निर्बलको कदापि जीता न छोडे परन्तु राजा सबका न्यायपूर्वक पालन करताहै बस इसी स्वार्थके वशीभूतहो कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं चाहता कि, राजा न होवे किन्तु यही चाहते हैं कि, हमारा कोईभी दुःख सुननेवाला राजा होना चाहिये एवं अपनी इच्छाही से लोग राजा बना लेतेहैं इच्छाहीसे उसका किया न्यायभी मंजूर करलेते हैं जो करते हैं अपनी इच्छा से करतेहैं, इसलिये मनुष्यजातिभी अपनी इच्छासे सब काम करती- हुई स्वतन्त्रही दीख पड़ती है । (राज०) महाराज! मेरे को तो प्रजा सर्वथा राजाके अधीन तथा यावत् स्थावर जङ्गम परमेश्वर के अधीन प्रतीत होतेहैं । (पं०) इस कहनेका आपका अभिप्राय क्याहै।(राज०) देखाजाता,है कि-

अधिक बल बुद्धिवाले लोग अपनेसे न्यून बल बुद्धिवाले जीवोंसे अनेक तरहका काम लेते हैं तथा आप जहांतक बनपडे चैन करते हैं। तथा ईश्वरभी जीवों के पूर्वकर्मोंके अनुसारही फल देताहै। (पं०) इससे सिद्ध क्या हुआ। (राजकु०) सिद्ध यह हुआ कि, यह जीव यदि स्वरूपसे स्वतन्त्रतथा प्रयत्नशील होय तो ऐसी परस्पर एक दूसरेकी पराधीनता नहीं होनी चाहिये। (पं०) इसका उत्तर तो हम पूर्व देचुके हैं कि, स्वार्थवशसे पराधीन होतेहैं। (राजकु०) बलात् भी तो किये जातेहैं। (पं०) कौन किसपर बलात्कार करता है। (राजकु०) जिन मनुष्यों में बल बुद्धि अधिक है वे निर्बल जीवोंपर बलात्कार करते हैं। (पं०) हे प्रिय ! न्यायशील बल बुद्धिमान् मनुष्य कदापि किसी जीव पर बलात्कार नहीं करते किन्तु उसको उसके करने योग्य कार्य्य में नियुक्त करते हैं। पशुप्राय अशिक्षित प्राणिवर्ग को अपने कर्तव्य अकर्तव्यका कुछभी ज्ञान नहीं है। संसारमात्रकी व्यवस्थाके लिये उनको यथाधिकार कार्य्यमें नियुक्त करना विद्वानों का परम धर्म है परन्तु ऐसा कोई जीव नहीं जो उद्योग करना नहीं चाहता प्रत्युत बेकार तथा मानसिक अधिक आयास करनेवाले लोग बैठे २ अकड़ जाते हैं तो विना प्रयोजन दो चार कोश मार्ग नित्य भ्रमण करतेहैं। (राजकु०) महाराज ! यह मनुष्य इष्टानिष्टको जानकर भी अनेक स्थलोंमें अवश्य प्रवृत्त होताहै सो यह प्रवृत्त होना इसका क्या स्वाधीनहै ? कि, अदृष्टाधीनहै या कि, ईश्वराधीन है ? (पं०) हे प्रिय ! यह जीव स्वरूपसे स्वाधीनहै अज्ञानसे कर्मोंका कर्ता तथा फलका भोक्ता है उन कर्मोंके करनेमें भी यह जीव सर्वदा स्वतन्त्र है परन्तु कर्मोंके फल भोगनेमें परतन्त्रहै अर्थात् ईश्वरके अधीनहै ईश्वरका स्वरूप नित्यज्ञान नित्यइच्छा नित्यप्रयत्नशीलहै नित्यज्ञानका भाव यह है कि, ईश्वर कभी अज्ञानी नहीं होता, नित्यइच्छा का भाव यह है कि, ईश्वरकी इच्छा कभी विपरीत नहीं होती, नित्यप्रयत्नका भाव यह है कि, ईश्वरीय प्रयत्न कभी निष्फल नहीं होता एवं जीव स्वाधीन कर्मोंको कर्ता हुआ ईश्वरीय नित्य

इच्छाके अनुसार उचित फलको भोगता हुआ जन्म जन्मान्तरमें विचरता रहताहै । (राजकु०) आपके कथनानुसार यह जीव अनादि कालसे कर्मोंका कर्ता तथा फलका भोक्ता सिद्ध हुआ एवं वर्तमान भोगकेलिये वर्तमान प्रयत्न व्यर्थ हुआ क्यों कि, पिछले किये कर्मोंके फलका देना ईश्वराधीनहै सो वह अवश्य देगा यदि ऐसा कहैं कि, भावी भोगों के लिये अर्थात् आनेवाले जन्ममें होनेवाले भोगों के लिये पुरुषको प्रयत्न अवश्य करना चाहिये तो यह भी उचित नहीं क्यों कि, वर्तमानमे जो कुछ प्रवृत्ति निवृत्ति होती है वह सब पिछली प्रारब्धका भोगरूपही है फिर जुदा प्रयत्न कहां रहा । (पं०) हे प्रिय ! इस प्रश्नका उत्तर हम पूर्व देभी चुकेहैं परन्तु आपने फिर पूछा है तो सावधान होके श्रवण करना उचित है यह जीव अनादि कालसे शुभाशुभ कर्मोंको करनेवाला तथा उनके सुख दुःखरूप फलका भोगनेवालाहै परन्तु जिस कालमें यह जीव शुभ या शुभ किया करताहै उसी कालमें उस कर्म्मरूपबीजसे वासना तथा अदृष्ट ये दो अंकुर पैदा होते हैं अर्थात् शुभकर्मोंके करनेसे शुभवासना तथा शुभ अदृष्ट उत्पन्न होतेहैं एवं अशुभ कर्मों के करनेसे अशुभ वासना तथा अशुभ अदृष्ट उत्पन्न होतेहैं । इनमेंसे शुभाशुभ अदृष्टों का विनाश तो विना उनका सुख दुःखरूप फलभोगे या विना प्रायश्चित्तादि विशेष क्रिया के या विना आत्मज्ञानके कदापि नहीं होता परन्तु शुभाशुभ वासना की विनाश या वृद्धि सत्पुरुषों के सङ्गसे या कुसङ्गसे होसकती है अर्थात् सत्पुरुषों के समागमसे शुभ वासनाकी वृद्धि होती है । उसीके अनुसार पुरुष फिर सत्कर्मोंमें प्रवृत्तहोताहै । और कुत्सित पुरुषोंके संगसे उसी शुभ वासनाका नाश भी होजाताहै । शुभ वासना के नष्टहोनेसे पुरुष यथेष्ट कुकर्मों में प्रवृत्त होताहै । ऐसेही दुराचारी पुरुषोंके संगसे अशुभ वासनाकी वृद्धि होती है उसीके अनुसार पुरुष फिर अशुभ कर्मोंमें प्रवृत्त होताहै। और सत्पुरुषों के समागमसे उसी अशुभ वासनाका विनाश भी हो सकताहै । अशुभ वासना के नष्टहोनेसे पुरुष सत्संग द्वारा सत्कर्मोंमें प्रवृत्त

होताहै । इस विचार से यह निश्चय हुआ कि, शुभाशुभ अदृष्टका फल तो सुख दुःख भोगरूप अवश्यही होताहै । परन्तु सत्संग कुसंग द्वारा शुभाशुभ वासना के वृद्धि ह्रासले उद्योग भी सफलहै इसलिये उद्योगको छोडकर केवल प्रारब्धके भरोसे पर बैठ रहना सत्पुरुषोंका काम नहीं है ।

इति प्रारब्धविचारे विंशतितमो विश्रामः ॥ २० ॥

अथ एकविंश विश्राम २१.

(राजकु०) पूर्व मैंने जितने प्रश्न किये उनके आपने उचित उत्तर दिये जिनको स्मरणकर मेरा चित्त प्रतिक्षण प्रसन्न होकर उद्युक्त होनाचाहता है मेरेको यह निश्चय होचुका है कि, आलस्यकी बीमारीको आपका उपदेश परम औषध है परन्तु तो भी सांसारिक विचित्र घटनाओं तथा इतिहास पुराणादिकों के विलक्षण वचनोंको देखकर मेरे चित्तमें फिर असंतोषसा प्रतीत होने लगता है क्यों कि, बहुधा देखनेमें आता है कि, नित्यके अभ्यासी तथा समयपर व्यापार करने वालोंको भी कदाचित् घाटाखाना पडता है (१) एवं खानेके लिये बहुत देख भालके खरीदे फलादि भी कदाचित् दैवात् खट्टेभी निकलआते हैं (२) एवं राजाके पुण्य विशेषसे उसकी सेना तथा प्रजा कैसी प्रत्यहं सर्वदा नियमित बनी रहती है (३) एवं किसी २ स्थलमें कैसे राज्यवैभव अकस्मात् मिलजाता है (४) एवं समुद्रादि जलमें नुकसान बड़े बड़े उद्योगियोंका भी हो ही जाता है(५) फिर कैसे मानाजावे कि, प्रारब्ध बलवती नहीं है । ऐसे ही—

न दिष्टमभ्यतिक्रान्तुं शक्यं भूतेन केनचित् ।
दिष्टमेव ध्रुवं मन्ये पौरुषं तु निरर्थकम् ॥ ३२ ॥
भा० उद्यो० प० अ० ४० ॥

निमग्नस्य पयोराशौ पर्वतात्पतितस्य च ।
तक्षकेणापि दष्टस्य आयुर्मर्माणि रक्षति ॥ १ ॥
आयुः कर्म च वित्तं च विद्या निधनमेव च ।
पञ्चैतान्यपि सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः ॥ २ ॥

अर्थात् कोई प्राणीभी दैवगतिका उल्लंघन कदापि नहीं करसकता इस लिये दैवहीको ध्रुवमानना चाहिये क्यों कि, उसके आगे पुरुषार्थ करना वृथा है ॥ ३२ ॥ जलराशिसमुद्रमें डूबते हुए पर्वतसे गिरतेहुए तथा तक्षक सर्पसे डसे हुए पुरुषको बचानेवाला केवल उसका प्रारब्ध है ॥ १ ॥ आयु, अच्छी बुरी क्रिया, धन, विद्या, तथा मरण यह पांचों इस जीवके गर्भस्थिति-कालहीमें विधाताकी तरफसे लिखेजाते हैं ॥ २ ॥

इत्यादि इतिहास पुराणोंके वचनभी अनेक हैं जिनको देख सुनकर सुविचारशील पुरुषकीभी चित्तवृत्ति द्विधाहुए विना नहीं रहती । (पं०) हे प्रिय ! जो आपने कहा यथार्थ है इस जीवका यह स्वभाव है कि, जो संस्कार इसको प्रथम बालपनमें पड़जावें उनका निकालना बहुतही कठिन होजाता है यही कारणहै कि, हमारे देशके सहस्रों विद्वान् लोगभी अनेक दूषित तथा अनुत्तम सिद्धान्तोंपर आग्रहकर उनको अनेक मिथ्यायुक्तियोंसे सिद्ध करना चाहते हैं परन्तु अपनी भूल मानकर सन्मार्गमें प्रवृत्त नहीं होते । प्राचीन समयसे हमारे ऋषि मुनि लोग लघु महान् भेदसे उद्योगको दो तरहका मानते चलेआये हैं उसमें लघु उद्योग तो सर्वजीव साधारण है । और महा उद्योग ईश्वरका है । जिसकी स्थलविशेषमें बाध्य बाधक भावसे या सहकारी सहकार्य्य भावसे सफलता होय वह लघु उद्योग है । जैसे- यावत् जीवोंका उद्योग परस्पर न्यूनाधिक बलवाले जीवोंमें बाध्य बाधक भावको प्राप्तहोता है । अथवा सहकारी सहकार्य्य भावको प्राप्तहोता है । जीवोंके परस्पर द्वेषस्थलमें बाध्य बाधक भावको प्राप्तहोता है । और रागस्थलमें सहकारी सहकार्य्य भावको प्राप्तहोता है । एवं इतरानपेक्ष सर्वत्र सफलता लाभकरनेवाला ईश्वर उद्योग है घट, पट, कुडच, कुशूलादि पुरुषके लिये असाधारणत्वेन उपयुक्त सृष्टि जीव उद्योगसाध्य है, पृथिवी जल खण्ड ब्रह्माण्डादि महाकार्य्य महाउद्योग साध्य हैं, उस महा उद्योगी परमेश्वरका नामही सत्यशास्त्रोंमें दैव है हमारे पूर्वज ऋषि मुनि लोग अरण्यगत फल फूलोंसे निर्वाहकरते

हुए निरन्तर तपश्चर्य्यामें आरूढ रहतेथे यह वार्ता प्रत्येक इतिहास पुराणोंसे प्रख्यात है, समय-समयपर राजे महाराजे सेठ साहूकारलोग उनके दर्शनको जाते अनेक विधि सेवन पूजन से उन महात्माओंके उपदेशका लाभ उठाते हुए कदाचित् पूछ लेते कि, महाराज! खान पान का निर्वाह कैसे होता है तो वे ऋषि लोग यही उत्तर देते कि, दैव देता है. तात्पर्य्य उनके कहनेका यही है कि, हमलोग तपस्वी हैं परमात्माके प्रयत्नसे उत्पन्नहुए फल फूल खाय कर निर्वाह करलेते हैं परन्तु विरोचनकी तरह उल्टा अर्थ समझनेवाले भक्तलोग उन ऋषियोंके कहे " दैव " शब्दका अर्थभी प्रारब्ध समझनेलगे उन महात्माओं से न किसीने इन्द्रकी तरह खुलासा करके पृछा और न उन्होंने किसीको पूछे विना अपना हार्द बतलाया ऐसेही अनेकवार समय २ पर भक्तलोग उन महात्माओंके दर्शनको जाते और वहांसे विपरीत अर्थ को धारणकर घरमें आकर उसको गद्य या पद्यात्मक लिख छोड़ते जब कोई बंधु कदाचित् उनको सूतोंको उठाकर किसी कार्य्यविशेषके लिये प्रार्थना करता तो उस बन्धुको वे सीधा जवाब तो नहीं देते कि, हमारेसे कार्य्य नहीं होता परन्तु उठकर उसको " अरक्षितं तिष्ठति दैवरक्षितम " इत्यादि अनेकतरहका मनोघटित विरोचनका सिद्धान्त सुनाने लगजाते थे । राज्यव्यापारादिके सम्बन्धसे विदेशीलोगोंका फेरा इस देशमें उस समय किंचिदपि न था इस महा विस्तृत तथा वैभवशाली देशमें जनसमुदाय बहुतही न्यून था इसलिये ऐसे समयपर सहस्रोंमें सैकड़ों पुरुष गुंजापुंजमें अग्निबुद्धि करतेहुएभी उचित समयपर खानपानादि शीतसे बाधित नहीं होतेथे परन्तु वर्तमानसमय महाशोचनीय है? हे प्रिय! कलंदरका बन्दर, धोबीका बैल या गाड़ीका घोड़ा कदापि अपने मालिकके सामने यह कहसकता है कि, घर घर नाँचनेकी कपड़े ढोनेकी या गाड़ी खैंचनेकी मेरी प्रारब्ध नहीं है अर्थात् सब काम उनसे बलात् करवाये जाते हैं ऐसेही वर्तमानके प्रारब्धवादियोंको भी समझ कर यथाशक्ति स्वयं अपने हिस्सेका बोझा उठा लेना चाहिये अन्यथा उदाहरणीय सजातिभाइयोंकी जो दशा हुआकरती है उसीकी होनेकी सम्भावना है । (राजकु०)

महाराज! विरोचनको तो ब्रह्माके उपदेशसे देहात्मवाद निश्चय हुआ था परन्तु ये प्रारब्धवादी लोग तो देहात्मवादी नहीं हैं। (पं०) हे प्रिय! दृष्टान्त सर्वांशपूर्ण नहीं होता किन्तु एक देशी होता है प्रकृतमें विपरीत निश्चयके तात्पर्य्यसे दृष्टान्त है सो उभयत्र तुल्य है। (राजकु०) महाराज! प्रारब्ध तो आपभी मानते ही हैं फिर उनका मानना विपर्य्यय कैसे है। (पं०) हे प्रिय! हम मानते तो हैं परन्तु ऐसा नहीं मानते कि, हमारे मुखपरसे मक्षीभी प्रारब्धही उड़ावेगी किन्तु पूर्वोक्तरीतिसे साधारण कारणका एकदेश वह भी है। (राजकु०) मेरेकिये प्रश्नोंकी व्यवस्था लगाइये। (पं०) हे प्रिय! हमने आपके प्रश्नोंकी व्यवस्था सामान्यरूपसे कहदी है परन्तु आपने दृष्टि नहीं दी जैसे पूर्व हमने लघु महान् भेदसे प्रयत्न दो तरहका माना है और उनका स्थलविशेषमें परस्पर बाध्य बाधक भाव तथा सहकारी सहकार्य्य भावभी माना है अब यहां यह व्यवस्था करणीय है कि, जहां नित्यके अभ्यासी तथा समयपर व्यापार करनेवाले पुरुषको लाभ या हानि हुई है वह उसकी प्रारब्धसे है कि, या किसीके उद्योगसे है तो हम तो इसका यही उत्तर कहते हैं कि, अवश्य उद्योगहीसे है। कहीं लघु उद्योगसे ही हानि लाभ होजाता है और कहीं महा उद्योगभी हानि लाभमें हेतु होताहै, जैसे इस संसारमें यह जीव सामान्यदृष्टिसे चारही कार्य्योंमें विशेषरूपसे प्रवृत्त देखनेमें आताहै खानपानादिमें (१) पहरानमें (२) या इन दोनोंके साधनोंमें (३) या मनोविनोदसाधनोंमें (४) बस इसके सिवाय संसारमें कोई वस्तु बाकी नहीं है इन चारोंके यथा रुचि उपलाभ होनेसे यह जीव अपना सौभाग्य मानता है किंचित् त्रुटि रहनेसे सर्वदा खिन्न स्वान्त अपने जीवनको पूरा करता है। परन्तु खान पान पहरानआदिके साधन अर्थात् खान पानादि योग्य पदार्थ केवल इस जीवके लघुप्रयत्नजन्यही नहीं हैं किन्तु महान् प्रयत्नकी भी अपेक्षा रखते हैं। और महान्प्रयत्नवान् परमात्माभी अपने प्रयत्नद्वारा समय समय पर इनजीवोंके खानपानादिके योग्य अनेक प्रकारके पदार्थोंको उत्पन्न करता हुआ अनवरत एकरस

विराजमान है। उसी प्रभुके महा उद्योगसे सिद्ध वस्तुओंका यह जीव समय समय पर व्यापार करता हुआ सहस्रोंबार सिवाय लाभके हानि कदापि नहीं उठाता क्यों कि, परमात्माके सृष्टिनियमसे तत् तत् वस्तु तत्तद् देशमें तत्तत् समय विशेषहीमें होती हैं आगे पीछे नहीं होतीं किन्तु आगे पीछे उसका भाव हमेशा चढ़ही जाता है इसीलिये ततद् जिन्सके व्यापारियोंको हमेशा लाभही होता है कदापि घाटा नहीं होता परन्तु सहस्रोंवार ऐसे होतेभी यदि कदाचित् उस महा उद्योगीका उद्योग किसी एक जिन्सके ह्रासमें या वृद्धिमें उपयुक्त होता है तो इन भारतवासी व्यापारीगणके पेट या तो नफेको सोचकर फूले अंगमें नहीं समाते और या नुकसानको सोचकर कहीं दीखभी नहीं पाते । एकही बारका नुकसान अनेक बारके नफेके सिरमें धूलि डालके शेषमें सेठजीको मरणप्राय करता हुआ उनके हाथमें प्रारब्धकी माला पकड़ा जाता है।और वह उस मालाको फेरताहुआ साथही यहभी कहा करता हैं कि. हमारे साथ जो ईश्वरने करी ऐसी किसीके साथ न करे, परन्तु वह तुच्छ यह नहीं जानता कि, उस महा प्रभुका सद् उद्योग क्या संसारमें मेरेहीलिये है उसके अनुग्रहसे अनेक वार मैंने लाभ उठाया अबके हानिभी हुई तो क्या भय है परन्तु पापीको ऐसी बुद्धि आवे कहाँसे ! यही व्यवस्था कृषिकारोंकी हानि लाभमें और समुद्रगतजलयानादि द्वारा हानिलाभमें भी जानलेनी चाहिये । वर्षा वायु आदिकोंका न्यूनाधिक होना केवल परमेश्वरके महा उद्योगसाध्य है। उस महाप्रभुका महा उद्योग सर्वदा अधिक जीवोंके उपकारके उद्देशसे ही होता है (१) ऐसेही खान पानके लिये फल फूल खरीदनेमें धोखाखाना केवल अपनी मूर्खता है अर्थात् जो पुरुष जिस वस्तुके स्वरूपको पूरीतौरपर नहीं जानता उसमें उसको घाटेकी या नुकसानकी सम्भावना अवश्य हो सकती है (२) एवं प्रजा तथा सेनाको नियमितरखनेवाले राजाका प्रजा सेनाके साथ प्रेम तथा उत्तम न्याय है। यदि न्यायमार्गसे प्रचलित राजाके सेना या प्रजा वशवर्ति रहे तो आश्चर्य्यही क्याहै । राजा केवल सुखकेलिये प्रजाका प्रबन्धकर्ता है ना कि, अत्याचार करता ? परमेश्वरने

स्वरूपसे जीवको स्वतन्त्र किया है । परन्तु ये आपही परस्पर सुख-लाभकी आकांक्षा करते हुए आपसमें मिल बैठते हैं। जिसकी जैसी योग्यता होती है उसको वैसेही स्थानपर नियतकर सबही जीव लाभ उठाते हैं । यह वार्ता सबके अनुभव सिद्ध है और इसीका नामही न्याय है । परन्तु यदि कदाचित् राजाभी अपने राज्यके गुमानपर मूढ हुआ अपनी प्यारी प्रजा या सेनाके साथ अत्याचार करने लगता है तो थोडा काल तो प्रजा उसके मुखकी तरफ देखती है पीछे वह एकजान तो है ही क्या, उनके साथ सम्मति देनेवालोंकी भी थोड़ेही दिनों में उस प्रजा या सेनाही के हाथसे धूल उड़जाती है । इस वार्ताके लिये अनेक यवन राजे उदाहरण रूप हैं (३) और हे प्रिय ! अकस्मात् राज्य मिलता तुमने किसको कहां देखा या सुना है । क्या तुमको राजा नलकी महाराज रामचन्द्रकी पाण्डवोंकी इत्यादि अनेक ऐतिहासिक गाथा सबही विस्मरण होगई । यदि अकस्मात राज्य मिलता तो यह बिचारे इतना २ श्रम क्यों उठाते । अहा! क्या इन देशी रजवाड़ोंके तात्पर्यसे तो तुम अकस्मात् शब्द नहीं कहते ? । (राजकु०)इसी तात्पर्यसे तो कहता हूं। (पं०) हे प्रिय ! मैंने इनके तात्पर्य्यसे राज्यप्राप्तिविचार नहीं किया और न इस उद्योगके प्रकरणमें दूसरेकी कृपाका पात्र स्वयं राजा कहा ही सकताहै। यद्यपि वंशपरंपरासे या लोकरूढिसे इनमेंभी राजा शब्दका प्रयोग होता है तथापि हमारे ग्रन्थका नायक उद्योग ब्रिटिश सरकारसे अनुकम्पित अनेक पुरुषोंसे निवृत्त होता हुआ साथही उस स्वव्याप्य वृत्तिराजशब्दकी भी निवृत्तिहीको बोधन करताहै जिसका नाम राज्य है वह तो किसीको सिवाय प्रयत्न के मिलना कठिन है शेषरहा दूसरे की कृपाके पात्रहोकर कुछ लाभकरना वह चाहो न्यूनहो या अधिक हो हमारे इस प्रसंगमें वह राज्य नहीं है ऐसे स्थलोंमें सर्वत्र ब्रिटिश सरकारका उद्योग ही कार्य्यकर है बाकी सब उनके हाथकी चिरय्या हैं जिनको चाहें रक्खें या उड़ावें (४) ऐसेही समुद्रादि भयानक यात्रामें नुकसान होनाभी यद्यपि महान् उद्योगही का कार्य्य है तथापि उससे बचनेके लिये इस पुरुषको उस महा प्रभुने विशेष बुद्धि दी है यह अपनी बुद्धिसे अनेक प्रकारके शुद्ध

यंत्र बनाकर भावी वायु वर्षा वेगादिको साक्षात्कार कर सकता है जैसे (magnetic-compess) मेगनेटिक कम्पास अर्थात् कुतुबनुमासे दिशा भ्रम कदापि नहीं होता एवं जैसे (level) लेबिल अर्थात् भूमिके समभावानुमापक यंत्रसे पृथिवी की उँचाई निचाई में संदेह दूरहोताहै वैसेही वायु वर्षा तूफानाआदिके निश्चयात्मक यंत्रभी प्रथमही इन सबके सूचक होजाते हैं उनके अनुसार जो दृढ जलयानादि द्वारा समुद्रादि यात्रा करते हैं उनको कदापि भयका स्थल नहीं आता और जो अन्धाधुन्द मनमाना करते हैं उनको मरते डूबते वारणभी कोई नहीं करता इत्यादि (५) एवं " न दिष्टमभ्यति क्रान्तुं " इत्यादि वचनभी इतिहास पुराणादिकोंमें जहां तहां आते हैं वेभी धृतराष्ट्र जैसे प्रमादी पुरुषोंके प्रसंगसे ही आते हैं अर्थात् प्रमादी पुरुष प्रथम विना बिचारे प्रमाद करलेता है और पीछे प्रारब्धपर दोष देता हुआ कुछ काल रोय रोय कर संतोष करताहै। (राज०) महाराज! पूर्व आपने कहा कि, अनभ्यासी पुरुष अपनी मूर्खतासे कार्य्य को बिगाड़कर पीछे प्रारब्धपर दोष देनेलगताहै तो उसमें यह कथन है कि, यह जीव स्वाभाविक किंचित् शक्तिवाला है इसलिये एक जीवका हरएक कार्य्यमें निपुणहोना तो असम्भव है एवं अनन्त कार्य्य बिगड़नेही की सम्भावना होसकती है। (पं०) हे प्रिय! एक पुरुषको हरएक कार्य्यके सीखनेकी आवश्यकताही क्या है किन्तु प्रत्येक पुरुषको अपने २ कार्य्यमें निपुणहोना चाहिये ऐसेही परस्पर उपयोगहोनेसे संसारमात्रका निर्वाह होसकता है जैसे आप राजाहैं आपको सिवाय राज्यसंरक्षण या वीरविद्याके और कुछ सीखनेका काम नहीं जब आप अपनी राज्यनीति तथा वीरतासे अपनी प्रजापर उपकार पहुँचाओगे तो नानाविध विद्याओंसे विभूषित हुए आपकी प्रजाके लोग आपकी सेवामें उपस्थित होंगे, एवं सबी लोग ऐसेही अपने अपने कृतकार्य्यमें कुशल होकर परस्पर सहकारी सहकार्य्य भावसे इस संसारहीमें परम सुखको लाभकर सकते हैं। (राज०) यह जो आपने मेरेको अनेकप्रकारका युक्तिगर्भित उपदेश किया है सो क्या आपने अपने अनुभवसे किया है कि, शास्त्रमूलक है। (पं०) हे प्रिय! शास्त्रसिद्धान्तको छोड़कर हम मन माना ऊट पटांग

कदापि किसीको नहीं कहना चाहते उसमेंभी फिर आप तो राजकुमार हैं आप जैसे सुयोग्य पुरुषोंको हम शास्त्रसिद्धान्त के विरुद्ध एक अक्षरभी नहीं बोलसकते । (राज०) उक्त उपदेशके प्रामाणिक होनेके लिये दो चार वचनभी कह दीजिये । (पं०) हे प्रिय ! कल्पित प्रारब्ध के कहनेवाला तो संहिता मात्रमें एक मंत्र नहीं है परन्तु उद्योगके कहनेवाले " कुर्वन्नेवेह कर्म्माणि " [यजु०अ०४.] अर्थात् पुरुष वेदविहित शुभकर्मोंको करता हुआ शत वर्षतक जीनेकी इच्छाकरे इत्यादि अनेक वचन हैं "एवं कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः " इत्यादि भगवद्गीता मेंभी लिखाहै ऐसेही मुमुक्षुप्रकर्ण योगवासिष्ठमें भी है-

यथा ।

उच्छास्त्रं शास्त्रितश्चेति द्विविधं पौरुषं स्मृतम् ।
तत्रोच्छास्त्रमनर्थाय परमार्थाय शास्त्रितम ॥ १ ॥

अर्थात् शास्त्रअविहित तथा शास्त्रविहित भेदसे प्रयत्न दो प्रकारका है इन दोनोंमें शास्त्राविहित प्रयत्न इस पुरुषके अनर्थके लिये है और शास्त्रविहित प्रयत्न परमपदके वास्ते है ॥ १ ॥

सदैवमधः कृत्वा नित्यमुद्रिक्तया धिया ।
संसारोत्तरणं भूत्यै यतताधातुमात्मनि ॥ २ ॥

विद्यमान दैवको अति निर्बल समझ कर प्रतिदिन उद्योगशाली बुद्धिसे पुरुष अपने आपको अनेक प्रकारकी विभूतियों द्वारा संसारमात्रमें उच्चश्रेणीका बनानेका यत्न करे ॥ २ ॥

न गन्तव्य मनोद्योगैः साम्यं पुरुषगर्दभैः ।
उद्योगस्तु यथा शास्त्रं लोकद्वितयसिद्धये ॥ ३ ॥

श्रेष्ठ पुरुषको अनुद्योगी पुरुष स्वरूपवाले गर्दभोंका संग नहीं करना चाहिये । किन्तु ऐसे नीचोंका संग त्यागकर उभयलोकमें कल्याण करने- वाले शास्त्रविहित उद्योगको करना चाहिये ॥ ३ ॥

शुभेन पौरुषेणाशु शुभमासाद्यते फलम् ।
अशुभेनाशुभं नित्यं दैवं नाम न किंचन ॥ ४ ॥

अच्छा प्रयत्न करनेसे पुरुषको अच्छा फलही शीघ्र होता है । एवं बुरा प्रयत्न करनेसे बुरा फलभी उसी काल होता है इसलिये दैव कुछ वस्तु नहीं है ॥ ४ ॥

प्रत्यक्षमानमुत्सृज्य योऽनुमानमुपैत्यसौ ।
स्वभुजाभ्यामिमौ सर्पाविति प्रेक्ष्य पलायते ॥ ५ ॥

प्रत्यक्षप्रमाणसिद्ध पदार्थ को त्याग कर जो पुरुष उसके स्थान पर अनुमित पदार्थको मानता है वह मूर्ख अपनी भुजाहीमें (यह दोनों सर्प हैं) इत्याकारिका बुद्धि करके भाग सकता है ॥ ५ ॥

दैवं संप्रेरयाति मामिति दग्धधियां मुखम् ।
अदृष्टश्रेष्ठदृष्टीनां दृष्ट्वा लक्ष्मीर्निवर्त्तते ॥ ६ ॥

हरएक कार्य्य करनेके लिये प्रेरको दैवही प्रेरणा करता है यह कथन केवल नष्ट बुद्धिवाले पुरुषोंकाहै अदृष्टको श्रेष्ठ माननेवाले अधम पुरुषोंका मुख देखकर लक्ष्मीभी उनसे उपराम होजातीहै अर्थात् वे भिखारी होजाते हैं ॥ ६ ॥

पौरुषं च न वानन्तं न यत्नमभिवाञ्छ्यते ।
न यत्नेनापि महता प्राप्यते रत्नमश्मतः ॥ ७ ॥

जहां कार्य्यकी सम्भावना नहीं है वहां पुरुषोंके अनेक तरहके प्रयत्नकी या प्रयत्नसामान्य की कुछ आवश्यकता नहीं है क्यों कि. महा प्रयत्न करनेसे भी कोई पाषाणसे रत्नलाभ नहीं करसकता ॥ ७ ॥

यथा पटः परिमितो यथाऽपरिमितः पटः ।
नियतः परिमाणस्थः पुरुषार्थस्तथैव हि ॥ ८ ॥

जैसे मापाहुआ वस्त्र या बिना मापा वस्त्र जितना है उतनाही है अर्थात् उसके मापने या ना मापनेसे आच्छादनादि क्रिया जैसे उतने पटसे उतनीही होतीहै वैसेही जिस कार्य्यके लिये जितना पुरुषार्थ उपयुक्त है वह उस कार्य्यके लिये उतनाही सिद्धिकर है अन्यथा नहीं ॥ ८ ॥

स च सच्छास्त्रसत्संगसदाचारैर्निजं फलम् ।
ददातीति स्वभावोऽयमन्यथाऽनर्थसिद्धये ॥ ९ ॥

वही पुरुषप्रयत्न सत्संग द्वारा या सदाचार द्वारा अपने शुभ फलको देता है अन्यथा अनर्थके लिये होता है यह उसका सहज स्वभाव है ॥ ९ ॥

स्वरूपं पौरुषस्येदं दैवं व्यवहरन्नरः ।
याति निष्फलयत्नत्वं न कदाचिन कश्चन ॥ १० ॥

पुरुषार्थही की अवस्थाविशेष को दैवस्वरूपसे मानता हुआ पुरुष कदापि कहीं भी निष्फल प्रयत्नवाला नहीं होता ॥ १० ॥

दैन्यदारिद्र्यदुःखार्ता अप्यन्ये पुरुषोत्तमाः ।
पौरुषेणैव यत्नेन याता देवेन्द्रतुल्यताम ॥ ११ ॥

दीनता तथा दरिद्रदुःखसे पीडित हुए अनेक श्रेष्ठ पुरुष समय पर फिर अपने प्रयत्नहीसे देवराज (इन्द्र) जैसे ऐश्वर्य्यको प्राप्तहोते हैं ॥ ११ ॥

आबाल्यादलमभ्यस्तैः शास्त्रसत्संगमादिभिः ।
गुणैः पुरुषयत्नेन स्वार्थः संप्राप्यते यतः ॥ १२ ॥

अपनी बाल्यावस्थासे लेकर जो पुरुष अपने सच्छास्त्र तथा सत्पुरुषोंके संगका अभ्यास करता है वही पुरुष अपने शुभगुणोंसे तथा सदुद्योगसे अभीष्ट स्वार्थको प्राप्तहोता है ॥ १२ ॥

इति प्रत्यक्षतो दृष्टमनुभूतं श्रुतं कृतम् ।
दैवात्तमिति मन्यन्ते ये हतास्ते कुबुद्धयः ॥ १३ ॥

हे रामचन्द्र ! इसी वार्ताको हमने प्रत्यक्षरूपसे देखा अनुभव किया श्रवण किया तथा अनेकवार करके अजमाया, यावत् कार्य्यको दैवाधीन माननेवाले मूर्ख लोगों की सर्वथा हानिही होती है ॥ १३ ॥

आलस्यं यदि न भवेज्जगत्यनर्थः ।
को न स्याद्बहुधनको बहुश्रुतो वा ॥
आलस्यादियमवनतिः सागरान्ता ।
सम्पूर्णा नरपशुभिश्च निर्धनैश्च ॥ १४ ॥

यदि आलस्य इस संसारमें न होवे तो किसीभी अनर्थके होनेकी सम्भावना नहीं है फिर ऐसे समयमें बहुधनवान् या बहुश्रुत होना पुरुषको कौन कठिन है। यह चारों तरफ देशकी समुद्रपर्य्यन्त अवनतिः केवल आलस्यही के प्रभावसे इन निर्धन पशुप्राय पुरुषोंने सम्पूर्णरूपसे बना रक्खी है ॥ १४ ॥

ह्यस्तनो दुष्ट आचार आचारेणाद्य चारुणा।
यथाऽशु शुभतामेति प्राक्तनं कर्म तत्तथा ॥ १५ ॥

गतदिन (कल) का किया दुराचार जैसे आजके शुभाचरणसे दबजाता है अर्थात् शुभरूपहीसे प्रतीत होनेलगता है यही दशा प्राक्तनकर्मोंकी है। अर्थात् अशुभभी प्राक्तनकर्म वर्तमान शुभ उद्योगसे शुभही होजाते हैं ॥१५॥

तज्जयाय यतन्ते ये न लोभलवलंपटाः।
ते दीनाः प्राकृता मूढाः स्थिता दैवपरायणाः ॥ १६ ॥

लोभ लवमें लम्पट होकर जो पुरुष उन पूर्व कर्मोंके जयमें यत्न नहीं करते वे ही पुरुष दीन, प्राकृत, मूर्ख होकर दैवपरायण रहते हैं ॥ १६ ॥

पौरुषेण कृतं कर्म दैवाद्यदभिनश्यति।
तत्र नाशयितुर्ज्ञेयं पौरुषं बलवत्तरम् ॥ १७ ॥

पुरुषार्थसे किया कार्य्य जहां दैवसे विनाशको प्राप्त होता है वहां विनाश करनेवाले का ही प्रयत्न अधिक बलवान् समझना चाहिये ॥ १७ ॥

द्वौ हुडाविव युद्ध्येते पुरुषार्थौ परस्परम्।
य एव बलवाँस्तत्र स एव जयति क्षणात् ॥ १८ ॥

अनेक स्थलोंमें दो पुरुषार्थ दोनों हुडुओंकी तरह परस्पर युद्ध करते रहते हैं उन दोनोंमें जो बलवान् होता है उसीका अन्तमें विजय होता है ॥ १८ ॥

कर्म यः प्राक्तनं तुच्छं न निहन्ति शुभेहितैः।
अज्ञो जन्तुरनीशोऽसावात्मनः सुखदुःखयोः ॥ १९ ॥

जो जीव प्राक्तन तुच्छ कर्मोंका अपनी शुभचेष्टाओंसे विनाश नहीं कर

सकता उसको अपने सुख दुःखलाभ करनेमें अज्ञानी तथा असमर्थ समझना चाहिये ॥ १९ ॥

ईश्वरप्रेरितो गच्छेत्स्वर्गं नरकमेव वा ।
स सदैव पराधीनः पशुरेव न संशयः ॥ २० ॥

जो पुरुष ईश्वरकी प्रेरणाहीसे स्वर्ग वा नरकमें जाता है वह सदा पाराधीन पुरुष पशुतुल्य है इसमें कुछ संशय नहीं ॥ २० ॥

यस्तूदारचमत्कारः सदाचारविहारवान् ।
स निर्याति जगन्मोहान्मृगेन्द्रः पंजरादिव ॥ २१ ॥

और जो पुरुष उदारचमत्कार तथा सदाचारव्यवहारवाला है वह इस जगत्मोहको सिंहके पिंजरेकी तरह त्यागदेता है अर्थात् जैसे सिंहको अपने पिंजरेसे निकलनेमें श्रम नहीं होता वैसेही इस उदारचरित पुरुषको भी अधिक श्रम नहीं होता ॥ २१ ॥

कश्चिन्मां प्रेरयत्येवमत्यनर्थकुकल्पने ।
यः स्थितोदृष्टमुत्सृज्य त्याज्योऽसौ नराधमः ॥ २२ ॥

दृष्ट वस्तु जातको छोड़कर ' हरएक क्रियामें मेरेको कोई प्रेरणा अवश्य करता है ' इत्याकारक कुकल्पना करनेमें जो पुरुष स्थित हुआ है ऐसे अधम पुरुषका भले पुरुषोंको त्याग करना चाहिये ॥ २२ ॥

मूढैः प्रकल्पितं दैवं मन्यन्तेऽपक्षयं गताः ।
नित्यं स्वपौरुषादेव लोकद्वयहितं भवेत ॥ २३ ॥

मूर्खलोगोंने इस दैवकी कल्पना करी है तथा जिनका विनाश होनेवाला है वेही इसको मानते हैं परन्तु हे राम ! हमारे मतसे तो सदा पुरुषार्थसे ही दोनों लोकोंका हित होसकता है ॥ २३ ॥

ह्यस्तनी दुष्क्रियाभ्येति शोभां सत्क्रियया यथा ।
अद्यैवं प्राक्तनी तस्माद्यत्नाद्यः कार्य्यवान्भवेत् ॥ २४ ॥

गतदिन (कल) होनेवाली दुष्क्रिया जैसे आजकी सत्क्रियासे शोभाको प्राप्तहोती है वैसेही दैव का तिरस्कारकर उद्योगशाली पुरुष सदैव कार्य्यकी सफलताको लाभ करता है ॥ २४ ॥

करामलकवद्दिष्टं पौरुषादेव तत्फलम ।
मूढाः प्रत्यक्षमुत्सृज्य दैवमोहे निमज्जति ॥ २५ ॥

हस्तगत आमलककी तरह जहां तहां फलकी उपलब्धि पुरुषार्थहीसे देखी है परन्तु मूर्खलोग प्रत्यक्षप्रमाणसिद्ध पुरुषार्थको छोड़कर दैवरूपी मूर्खतामें डूबरहे हैं ॥ २५ ॥

ये समुद्योगमुत्सृज्य स्थिता दैवपरायणाः ।
ते धर्ममर्थं कामं च नाशयन्त्यात्मविद्विषः ॥ २६ ॥

जो पुरुष सम्यक् उद्योगको त्यागकर केवल दैवपरायण बैठे रहते हैं वे आत्मविद्वेषी मूर्ख लोग अपने धर्म, अर्थ, तथा कामका स्वयं नाश करलेते हैं ॥ २६ ॥

यथा संवेदनं चेतस्तथा तत्स्पन्दमृच्छति ।
तथैव कायश्चलति तथैव फलभोक्तृता ॥ २७ ॥

जैसे चित्तका संवदन (ज्ञान) होता है वैसही उसमें इच्छा होती है । तदिच्छानुसार ही कायका चालन होता है उसके अनुकूलही फलभोगभी होता है ॥ २७ ॥

आबालमेतत्संसिद्धं यत्र यत्र यथा यथा ।
दैवं तु न क्वचिद्दृष्टमतो जयति पौरुषम् ॥ २८ ॥

इस वार्ताको बालसे लेकर वृद्धपर्य्यन्त सबही जानते हैं कि, जो पुरुष जहां जहां जैसे जैसे प्रयत्नको करता है उसका वैसाही फलभी लाभ करता है । परन्तु दैव तो कहींभी देखने में नहीं आता इसलिये पुरुषार्थहीका विजय है ॥ २८ ॥

पुरुषार्थेन देवानां गुरुरेव बृहस्पतिः ।
शुक्रो दैत्येन्द्रगुरुतां पुरुषार्थेन चास्थितः ॥ २९ ॥

पुरुषार्थ करनेहीसे बृहस्पति देवताओंका गुरु बनगया तथा शुक्र दैत्येन्द्र राजा बलि आदिकोंका गुरु बनगया ॥ २९ ॥

अशुभेषु समाविष्टं शुभेष्ववावतारयेत् ।
प्रयत्नाच्चित्तमित्येष सर्वशास्त्रार्थ संग्रहः ॥ ३० ॥

अशुभ कार्य्योंमें नियुक्त हुए अपने चित्तको मोड़कर पुरुष प्रयत्नसे शुभ कार्य्योंमें प्रवृत्त करे बस यही सम्पूर्ण शास्त्रका सारार्थसंग्रह है ॥ ३० ॥

यथा यथा प्रयत्नो मे फलमाशु तथा तथा ।
इत्यहं पौरुषादेव फलभाङ् न तु दैवतः ॥ ३१ ॥

हे रामचन्द्र! जैसे जैसे मेरा प्रयत्न है फलभी शीघ्रही वैसेही वैसे मिलता है इसरीतिसे मैं पुरुपार्थहीसे जहां तहां फल लाभकिया है किन्तु दैव की अपेक्षा किंचित्भी नहीं करी ॥ ३१ ॥

पौरुषाद्दृश्यते सिद्धिः पौरुषाद्धीमतां क्रमः ।
दैवमाशंसतामात्रं दुःखे पेलवबुद्धिषु ॥ ३२ ॥

जहां तहां पुरुषार्थहीसे कार्य्यसिद्धि देखनेमें आती है एवं बुद्धिमान् पुरुषोंका कार्य्यक्रमभी पुरुषार्थ हीसे होता है और दैव तो दुःखमें सुख-बुद्धि माननेवाले मूर्ख पुरुषोंकी आशामात्रका विषय है ॥ ३२ ॥

प्रत्यक्षप्रमुखैर्नित्यं प्रमाणैः पौरुषक्रमः ।
फलितो दृश्यते लोके देशान्तरगमादिकः ॥ ३३ ॥

पुरुषार्थका क्रम अर्थात् एकके अनन्तर दूसरा कार्य्य प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे पुरुषार्थसें सिद्ध देखनेमें आताहै ऐसेही देशान्तरमें गमन आगमन भी पुरुषार्थसिद्धही है ॥ ३३ ॥

भोक्ता तृप्यति नाभोक्ता गंता गच्छति नाऽगतिः ।
वक्ता वक्ति न चावक्ता पौरुषं सफलं नृणाम् ॥ ३४ ॥

जो भोजन करता है वही तृप्तहोता है दूसरा नहीं, जो चलता है वही स्थान-पर पहुँचता है दूसरा नहीं एवं जिसमें बोलनेकी शक्ति है वही बोलता है दूसरा नहीं बोलसकता, इसीरीतिसे पुरुषोंका पुरुषार्थ सर्वत्र सफल प्रतीत होता है ॥ ३४ ॥

शुभेन पुरुषार्थेन शुभमासाद्यते फलम् ।
अशुभेनाशुभं राम यथेच्छसि तथा कुरु ॥ ३५ ॥

हे रामचन्द्र! अच्छा पुरुषार्थ करनेसे अच्छा फल लाभहोता है और

बुरा पुरुषार्थ करनेसे बुरा फल प्राप्तहोता है जैसे तुम्हारी इच्छाहो तैसे करो ॥ ३५ ॥

पुरुषार्थात्फलप्राप्तिर्देशकालवशादिह ।
प्राप्ता चिरेण शीघ्रं वा याऽसौ दैवमिति स्मृता ॥ ३६ ॥

इससंसारमें देशकालके भेदसे विलम्बसे या शीघ्र जो जैसी जहां फलप्राप्ति होती है उसीका नाम धर्मशास्त्रोंमें दैव है ॥ ३६ ॥

पुरुषो जायते लोके वर्धते जीर्यते पुनः ।
न तत्र दृश्यते दैवं जरायौवनबाल्यवत् ॥ ३७ ॥

इस लोकमें पुरुष उत्पन्न होता है वृद्धिको प्राप्तहोता है तथा जीर्णहोता है परन्तु जरा यौवन तथा बाल्यावस्थाकी तरह पुरुषशरीरमें दैव कहीं दिखाई नहीं देता ॥ ३७ ॥

मूढानुमानसंसिद्धं दैवं यस्यास्ति दुर्मतेः ।
दैवाद्दाहोऽस्ति नैवेति गंतव्यं तेन पावके ॥ ३८ ॥

मूर्खपुरुषोंके अनुमानसिद्ध दैव पर जिस दुर्बुद्धिपुरुषको विश्वास है उसने 'क्या जाने दैवात् अग्निदाह करे या न करे' ऐसा विचारकर निःसन्देह प्रज्वलितअग्निमें भी प्रवेश करजाना चाहिये ॥ ३८ ॥

दैवमेवेह चेत्कर्तृ पुंसः किमिव चेष्टया ।
स्नानदानासनोच्चारान्दैवमेव करिष्यति ॥ ३९ ॥

मूर्खलोग यह नहीं जानते कि, यदि हरएक कार्य्यका कर्ता दैवही है तो पुरुषको चेष्टाकरनेकी क्या आवश्यकता है स्नानकरना कराना दान देना लेना आसन बिछाना बोलना चालना सब दैव आपही करलेगा ॥ ३९ ॥

किं वा शास्त्रोपदेशेन मूढोऽयं पुरुषः किल ।
संचार्य्यते तु दैवेन किं कस्येहोपदिश्यते ॥ ४० ॥

तथा अनेक प्रकारके शास्त्रउपदेशोंसे क्या काम है यह मूर्खपुरुष दैवकी प्रेरणाहीसे हरएक क्रियामें प्रवृत्त होता है इसलिये शास्त्रभी किस किसके उद्देशसे क्या क्या उपदेशकर रहा है अर्थात् दैववादीके लिये व्यर्थही है ॥ ४० ॥

न च निस्पन्दता लोके दृष्टेह शवतां विना ।
स्पन्दाच्च फलसंप्राप्तिस्तस्माद्दैवं निरर्थकम् ॥ ४१ ॥

हे रामचन्द्र! विना मुर्देके हमने कोई जीव इस संसारमें क्रियाशून्य नहीं देखा और क्रियाहीसे तत्तत् फलकी प्राप्तिभी होती है इसलिये दैव मानना व्यर्थही है ॥ ४१ ॥

न चामूर्तेन दैवेन मूर्तस्य सहकर्तृता ।
पुंसः संदृश्यते काचित्तस्माद्दैवं निरर्थकम् ॥ ४२ ॥

हे राम! कई मूर्खलोग दैव तथा पुरुष दोनोंको एक कार्य्यसाधक मानते हैं सोभी ठीक नहीं क्यों कि, अमूर्त अर्थात् स्वरूपरहित दैवकेसाथ स्वरूपवाले पुरुषकी समानकर्तृता अर्थात् एक कार्य्यकर्तृत्व कहीं देखनेमें नहीं आता इस लिये दैव सर्वथा निरर्थक है ॥ ४२ ॥

विनियोक्त्रथ भूतानामस्त्यन्यच्चेज्जगत्रये ।
शेरते भूतवृंदानि दैवं सर्वं करिष्यति ॥ ४३ ॥

तीनों लोकोंमें इन भूतों का कोई विनियोक्ता अर्थात प्रेरक यदि कोई और भी है तो सम्पूर्ण भूतोंको अपनी तरफसे बेफिकर होकर सोना चाहिये क्यों कि, उनका दैव सब आपही करदेगा ॥ ४३ ॥

दैवेन त्वभियुक्तोऽहं तत्करोमीदृशं स्थितम् ।
समाश्वासनवागेषा न दैवं परमार्थतः ॥ ४४ ॥

इस ऐसी स्थितिवाले कार्य्यको मैं दैवसे प्रेराहुआ अर्थात् बलात् अभियुक्त कराहुआ करताहूं यह ऐसी वाणी केवल मूर्खोंका आश्वासनमात्र है अर्थात् प्रत्युत्तर देनेका सहारामात्र है वस्तुतः दैव कुछ वस्तु नहीं है ॥ ४४ ॥

मूढैः प्रकल्पितं दैवं तत्परास्ते क्षयं गताः ।
प्राज्ञास्तु पौरुषार्थेन पदमुत्तमतां गताः ॥ ४५ ॥

हे रामचन्द्र! इस दैवकी कल्पना मूर्खलोगोंने करी है इसीलिये जो लोग दैवपरायण हैं वे जहां तहां क्षयहीको प्राप्तहोते हैं और बुद्धिमान् लोग तो जहां तहां अपने पुरुषार्थहीसे उत्तम पदको प्राप्तहुए हैं ॥ ४५ ॥

ये शूरा ये च विक्रान्ता ये प्राज्ञा ये च पण्डिताः ।
तैस्तैः किमिव लोकेऽस्मिंस्तत्त दैवं प्रतीक्षते ॥ ४६ ॥

हे राम ! जो पुरुष शूरवीर हैं महाबलवाले हैं बुद्धिवाले हैं तथा पण्डित हैं उन्होंनेभी क्या तत्तत् दैवकी प्रतीक्षा करी है अर्थात् कबीही नहीं किन्तु बडेलोग स्वउद्योगसाध्य कार्य्य जानकर शीघ्र कार्य्यकारी होते हैं बीचमें किसी असिद्धकल्पित पदार्थकी प्रतीक्षा नहीं करते ॥ ४६ ॥

कालविद्भिर्विनिर्णीता यस्यातिचिरजीविता ।
स चेज्जीवति संछिन्नशिरास्तद्दैवमुत्तमम् ॥ ४७ ॥

कालगति जाननेवाले ज्योतिषी लोगोंने जिस पुरुषके चिरकाल जीते रहने का निश्चय किया है वह पुरुष यदि शिर कटजानेसे पीछे भी कुछ काल जीतारहे तो हम दैवहीकी उत्तमता मानलेवें भाव यह कि, दैवज्ञ तथा दैव दोनोंही मिथ्या तथा मिथ्यावादी हैं ॥ ४७ ॥

कालविद्भिर्विनिर्णीतं पाण्डित्यं यस्य राघव ।
अनध्यापित एवासौ तज्ज्ञश्चेद्दैवमुत्तमम् ॥ ४८ ॥

हे रामचन्द्र ! कालवेत्ता ज्योतिषीलोगोंने जिसकी जन्मपत्रिका में पण्डित होना लिखा हो वह यदि अभ्यास करनेसे विना ही कदाचित् पण्डित होसके तो हम दैव भी उत्तम मानलें परन्तु ऐसा देखनेमें नहीं आता इस लिये उद्योग ही मुख्य है ॥ ४८ ॥

विश्वामित्रेण मुनिना दैवमुत्सृज्य दूरतः ।
पौरुषेणैव संप्राप्तं ब्राह्मण्यं राम नान्यथा ॥ ४९ ॥

हे राम! विश्वामित्र मुनिने दैवाशाको दूरकर अपने पुरुषार्थसे ब्राह्मण्य पदको लाभकिया है प्रकारान्तरसे नहीं ॥ ४९ ॥

अस्माभिरपरै राम पुरुषैर्मुनितां गतैः ।
पौरुषेणैव संप्राप्ता चिरं गगनगामिता ॥ ५० ॥

हे राम! मैंने या मेरे जैसे और अनेक मुनिलोगोंने अपने पुरुषार्थहीसे बहुत कालमें गगनमें गमनकी शक्तिका लाभकिया है ॥ ५० ॥

उत्साद्य दैवसंघातं चक्रुस्त्रिभुवनोदरे।
पौरुषेणैव यत्नेन साम्राज्यं दानवेश्वराः ॥ ५१ ॥

हे राम! देवसमूहका तिरस्कार करके दानवेश्वर राजा बलिने अपने पुरुषार्थहीसे तीनों लोकोंमें अपने साम्राज्य को जमाया था ॥ ५१ ॥

दैवं न किंचित् कुरुते न भुंक्ते न च विद्यते।
न दृश्यते नाद्रियते केवलं कल्पनेदृशी ॥ ५२ ॥

हे राम! दैव न कुछ करता है न खाता है और न वस्तुतः कुछ है ही, न देखनेमें आता है और न बड़े लोग इसको आदरपूर्वक मानतेही हैं केवल एक परस्पर ऐसी कल्पना चलीआती है ॥ ५२ ॥

सर्वमेवेह हि सदा संसारे रघुनन्दन।
सम्यक्प्रयत्नात्सर्वेण पौरुषात्समवाप्यते ॥ ५३ ॥

हे रघुकुलप्रकाशकरामचन्द्र! इस संसारमें संपूर्ण वस्तु सदा ही यथार्थ पुरुषार्थ करनेसे प्राप्तहोती हैं इसलिये हरएक पुरुषको सम्यक् प्रयत्न करना चाहिये ॥ ५३ ॥

हे राजकुमार! यह वासिष्ठका सिद्धान्त मैंने तेरेको अपना पूर्व कथन प्रमाणित करनेके लिये दिक् प्रदर्शनमात्र दिखलायाहै ऐसे ही अनेक इतिहास, पुराण, स्मृतिवचनोंमें इसी सिद्धान्तको ऋषिलोगोंने स्वसिद्धान्तरूपेण लिखा है और प्रारब्धको दुर्योधन जैसे मूर्खोंकी भूलके समय लिखा है इसलिये प्रारब्धपर सत्पुरुषोंको कदापि विश्वास करना उचित नहीं।

इति एकविंशो विश्रामः ॥ २१ ॥

अथ द्वाविंश विश्राम २२.

(राज०) महाराज! आपने जो मेरेको कृपाकर शास्त्रका गुह्य सिद्धान्त सुनाया सो उसको सुनकर मेरा चित्त बहुतही प्रसन्न हुआ है वास्तवमें आपका कथन युक्तिप्रमाणयुक्त तथा प्राचीन ऋषि मुनि लोगोंके अनुभवपूर्वक है मैंने मिथ्याही अपनी अल्पबुद्धिसे शास्त्रतत्त्वको न जानकर प्रारब्धपर विश्वास कर रक्खाथा वस्तुतः यह विश्वास महा हानिकारक है

परन्तु कौन उपाय किया जावे सबसे प्रथम अल्पश्रुत नवयुवक पुरुषोंको इधर उधरका थोडासा श्लोक संग्रह देखकर ऐसाही विपरीत निश्चय होजाताहै जैसे मेरेहीको आप देखिये यदि आप कृपा न करते तो मैं तो अपनी तरफसे शास्त्रसिद्धान्त समझकर अपने घरमें सन्तुष्ट हो ही चुकाथा जन्मभर कभी कुछ करनेकी इच्छा न होती चाहो सर्वस्वनाश क्यों न होजाता परन्तु मेरे मनमें कदापि कुछ प्रयत्न करनेका साहस न आता मेरेको अब इस उचित समयपर श्रीभर्तृहरि की—

यदा किंचिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः समभवम् ।
तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिप्तं मम मनः ॥
यदा किंचित्किंचिद्बुधजनसकाशादवगतम् ।
तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः ॥ १ ॥

अर्थात् जब मेरेको किंचित् (थोड़ासा) ज्ञान हुआथा तो हस्तीकी तरह मद अन्ध होगया था और मैंने अपने मनमें यही समझलियाथा कि. अब मेरेको कुछ जानना बाकी नहीं है किन्तु जाननेयोग्य सब जानचुकाहूं । परन्तु उसके पीछे जब मैंने विद्वान् लोगोंके समागमसे कुछ ज्ञान पाया तो मैंने अपने आपको मूर्ख समझा और मूर्खताका मद मेरा ज्वरकी तरह दूरभी हुआ, इस उक्तिका सार्थक स्मरण होताहै, इत्यादि राजकुमार मनोहरके वचन सुनकर उसके पिता चन्द्रकीर्तिके चित्तमें ऐसा आनन्दहुआ कि, मानों आजही यह नूतन मनोहर समुत्पन्न होकर मेरे सौभाग्यको वृद्धकर रहा है । (पं०) हे प्रिय ! आपका कथन उचित है कि, सबसे पहिले दैवहीका सर्वशास्त्रसिद्धान्तत्वेन नवयुवकोंको ग्रहण होजाता है परन्तु इसमें दोष नवयुवकोंका नहीं है किंतु मूर्ख शासकोंका है युवकोंके पाठक लोग स्वयं मूर्खहैं शास्त्रतत्त्वको नहीं जानते तो वेही लोग जहां तहां के मनमाने श्लोक बटोरकर लड़कोंको शिक्षा देते हैं । एवं उसी को सिद्धान्त समझकर पढ लिखकरभी आयुभर दुःखही उठाते रहते हैं। अब आप महाराजा हैं आपको उचित है कि, अपने देशमात्रके विद्यालय तथा पाठशालाओंमें यथा योग्य

प्रबन्ध करें अर्थात् नूतनशिक्षाप्रणालीमें 'प्रारब्धबोधक' संग्रहको निकालकर उसके स्थानपर "उद्योगबोधक" वचनोंका प्रचार करना चाहिये । (राज०) महाराज ! एक शिक्षाप्रणालीका क्या मैं तो अब यावत् राज्यप्रबन्धका संशोधन किया चाहता हूं आप कृपाकरके मेरेको यह उपदेश करें कि, कौन कौन राज्यप्रबन्ध कैसे कैसे करना चाहिये जो जिसके अनुसार मैं आयुभर सुखको लाभ कर शेषमें यशोभागी बनारहूं और दूसरा विचार यह है कि, आपके उपदेशसे उद्योगका निवास तो मेरे चित्तमें अवश्य होही चुका है परन्तु वह उद्योग कहां कैसा करना चाहिये अर्थात कई लोग ऐसी व्यवस्था लगाते हैं कि, शारीरिक क्रिया सबी प्रारब्ध पर रहने देनी चाहिये और पारमार्थिक मार्गमें उद्योग करना चाहिये यदि ऐसा है तो तौ तो राज्यप्रबन्ध प्रणाली पूछने की मेरेको कुछ आवश्यकता नहीं है किन्तु केवल मोक्षमार्गमात्र का उपदेशकर दीजिये और यदि यह व्यवस्थाभी अल्पश्रुत पुरुषोंहीकी है तो तौ मेरेको आप राज्यप्रबन्ध तथा मुक्तिमार्ग दोनोंका उपदेश कीजियेजो जिसमें उद्युक्त होकर मैं उभयत्र सुखलाभ करूं (पं०) हे प्रिय ! अल्पश्रुत मूर्खलोग अपने घरमें मनमानी अनेक तरहकी व्यवस्था लगाते हैं परन्तु उन मूर्खोंके कहेको सिवाय मूर्खोंके मानता कौन है? शास्त्रतत्त्व तो वही है जो हम आपको पूर्व कहचुके, शेषरहे अल्पश्रुत मूर्खों के कथन सो उनमें किस किसके कहेकी समालोचना करने बैठें । यदि शारीरिक क्रिया सबही प्रारब्धके अधीन मानली जावे तो उन मूर्खों का भोजन करना या शौच फिरनाभी कठिन होजावे क्यों कि, यह क्रिया कोई पारमार्थिक तो है ही नहीं और व्यवहारमें उद्युक्त होना उनके सिद्धान्तसे विपरीतही ठहरा तो ऐसीदशामें आयुहोते ही मरना होगा इत्यादि, इसलिये ऐसे खलोंके सिद्धान्तोंपर विचारकुशल पुरुषोंको कदापि निर्भर नहीं रहना चाहिये । (राजकु०) महाराज! मैंने आपके तात्पर्य्यको अच्छी तरह समझलिया है मेरेकोभी ऐसे भद्दे भद्दे सिद्धान्त अच्छे नहीं लगते परन्तु अब आप मेरेको उभयलोक कल्याणकर मार्गका उपदेश कीजिये । (पं०) हे प्रिय! उभयलोक कल्याणकर तो इस पुरुषके लिये धर्म है । यदि

उसको पुरुष दृढ उद्योगसे धारणकरे तो अवश्य इस लोकमें अभ्युदय तथा शेषमें कल्याणभागी होता है। (राजकु०) महाराज! मेरे उपयुक्त धर्महीका आप संक्षेपसे निरूपण कीजिये। (पं०) हे प्रिय! धर्म यावत् धर्मशास्त्रोंमें सामान्य विशेष भेदसे दो प्रकारके हैं। यावत प्राणी मात्रकेलिये जिनका धर्म शास्त्रोंमें विधान हो वे सामान्य धर्म हैं। जैसे-

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥ ९२ ॥
मनु०-अ० ६ ॥

अर्थात् धैर्य्यवान् होना, क्षमाशील होना, चित्तका निरोधकरना, चोरी न करनी, पवित्र रहना, नेत्रादि इन्द्रियगणको रोकना, विचारशीलहोना, आत्मज्ञानी होना, सत्यवादी होना, शान्तस्वभाव होना यह दश आश्रमी पुरुषोंके साधारण धर्म हैं। अथवा जैसे-

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
एतं सामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः ॥ ६३ ॥
मनु० अ० १० ॥

अर्थात हिंसक न होना, सत्यवादी होना, चोरी न करनी, पवित्ररहना, इन्द्रियोंका संयम रखना यह संक्षेपसे मनुप्रोक्त चारोंवर्णोंके समान धर्म हैं, हे प्रिय! यह शास्त्रप्रोक्त साधारण धर्म प्राणीमात्रके सुखजनक हैं इसका एक एक अंशभी जिस प्राणीवर्गमें उत्कृष्ट प्रतीत होता है वही प्राणीवर्ग उतनी अंशमें विद्वान्गणमें समय २ पर उदाहरणरूपेण वर्णनीय होता है। एवं वर्ण आश्रमोंके या किसी एक व्यक्तिविशेषके उद्देशसे जिनका धर्मशास्त्रमें निरूपण हो वे विशेष धर्म हैं। जैसे-

प्रजानां रक्षणं दानमीज्याऽध्ययनमेव च।
विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः ॥ ८९ ॥
मनु० अ० १॥

अर्थात् प्रजापालन करना, अशक्तोंको दान देना, यज्ञ होमादि करना, वेद-

शास्त्रका अध्ययन करना, शब्दस्पर्शादि विषयोंमें न फसना येह पांच क्षत्रियके संक्षेपसे धर्म हैं । अथवा जैसे-

शौर्य्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम् ।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ॥ ४३ ॥
भगवद्गी० अ० १८ ॥

अर्थात् शूरवीर होना, तेजस्वी होना, धैर्य्य वालेहोना, अतिचतुर होना, युद्धमें पीछा दिखानेवाले न होना, उदार होना, अनेक प्रकारके ऐश्वर्य्यवाले होना येह सात धर्म क्षत्रिय पुरुषके स्वाभाविक हैं अर्थात् येह सातों क्षत्रियपुरुषमें अनायास होनेचाहिये । इत्यादि, ऐसेही राजा, वैद्य, भिक्षु, सेवक इत्यादि विशेषव्यक्तियोंके भी जहां तहां विशेष धर्म धर्मशास्त्रोंमें निरूपण किये हैं । (राजकु०) महाराज ! आपके सिद्धान्तानुसार यह अल्पशक्तिवाला तुच्छ जीव ना संसारके यावत् पदार्थोंको सम्यक् जान ही सकता है और न जाननेही की अधिक आवश्यकता है किन्तु स्व स्व धर्ममें दृढरहनेके लिये हर एक पुरुषको अपना २ धर्म स्मरण रखना चाहिये इसलिये मुझे औरोंसे विशेष प्रयोजन नहीं मेरेको जो करणीय होवे सो उपदेश कीजिये । (पं०) हे प्रिय तुम क्षत्रिय हो इसलिये पूर्वोक्त क्षात्रधर्मोंको धारणकरो उसमेंभी आप राजकुमारहो इसलिये पूर्व राज्यप्राप्तिविचारमें कहे राजाके धर्मोंकोभी धारणकरो तिसपरभी यदि आपको विशेषरूपसे राजधर्म श्रवणकी आकांक्षा होय तो धर्मशास्त्र श्रवणकरो (राजकु०) महाराज ! मेरेको कर्त्तव्याकर्त्तव्यका विशेषरूपसे उपदेश कीजिये ।(पं०)हे प्रिय! तेरेको इसप्रजाके संरक्षणकेलिये सर्वांतर्यामी परमात्माने इन्द्र, वायु, यम, सूर्य्य, अग्नि, वरुण, चन्द्र तथा कुबेर इन अष्ट दिग्पालोंके अंशोंसे निर्माणकिया है इसलिये अष्टदिग्पालोंके स्वभावका बर्तावभी तुम्हारेमें अवश्य होना चाहिये । अर्थात् आपको प्रयत्नसे इन्द्र जैसा ऐश्वर्य्य सम्पादन करना चाहिये ॥ १ ॥

वायुवत् चारकों द्वारा सर्वत्रगति या अनुष्णाशीत स्पर्श या कहींभी विशेष सम्बन्धाभाव या प्राणवत् सर्वका जीवनहोना चाहिये ॥ २ ॥

यमवत् क्रूरस्वभावसे दुर्जनोंके शासक होनाचाहिये अर्थात् गरीबोंके सताने-वाले दुर्जनोंके लिये यमराजकी तरह :क्रूरस्वभाववाले होना राजाका धर्म हैं ॥ ३ ॥

एवं सूर्य्यवत् तेजस्वी तथा प्रजारूप कृषिके पोषक होना चाहिये अर्थात् जैसे सूर्य्य अपनी किरणोंद्वारा सर्वत्र कृषिआदिकोंमेंसे जल खैंचलेता है परन्तु खैंचता प्रतीत नहीं होता और फिर समयपर वर्षाद्वारा उसी जलको देकर सर्वत्र कृषिको प्रफुल्लित करदेता है वैसेही आपकोभी चाहिये कि, अपनी प्रजारूप खेतीसे करादिरूप जलको ग्रहण करन कालमें प्रतीत न होवे परन्तु प्रजाके दुःखविमोचन कालमें मेघवर्षणकी तरह सबको प्रतीत होवे ॥ ४ ॥

ऐसेही अग्निवत् आपको पवित्र स्वभाववाले तथा शत्रुकुलदाहक होना चाहिये ॥ ५ ॥

और वरुणवत् शान्त गम्भीर तथा शत्रुशासनके लिये सर्वदा पाशहस्त होना चाहिये ॥ ६ ॥

चन्द्रवत् शीतलप्रकाशक तथा उभयपक्ष प्रजारूप कृषिके पोषक होना चाहिये ॥ ७ ॥

ऐसेही कुबेरवत् धनसंग्रही तथा गुह्यकेश्वर होना चाहिये ॥ ८ ॥

इन अष्टदिग्पालोंके स्वरूपको धारण कर आपको समान दृष्टिसे सर्व प्रजाका पालन करना चाहिये क्यों कि, न्यायपूर्वक प्रजारक्षक राजा धर्मार्थ कामादि पदार्थोंको अनायास लाभ करता हुआ अन्तमें अखण्डयशोभागी होता है और अन्याय करनेवाले अविचारशील राजा का यहां ही सर्वस्व नाश तथा सर्वत्र अपकीर्ति होतीहै परन्तु हे प्रिय ! न्यायका मूल दण्ड है, क्यों कि, विना दण्डस दुर्जनोंको शिक्षा नहीं होती तथा साधु पुरुषोंको संतोषभी नहीं होता। तथाहि—धर्मं प्रति भीष्मः—

दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति ।
दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः ॥ १ ॥

अथात् दण्ड ही सम्पूर्ण प्रजाको शासन करताहै तथा दण्ड ही सर्व

प्रजाका रक्षक है। शासकों के सोने कालमें दण्डही जाग्रत् रहताहै इस लिये विद्वान् लोक दण्डहीको धर्मरूपसे मानते हैं ॥ १ ॥

दण्डः संरक्षते धर्मं तथैवार्थं जनाधिप ।
कामं संरक्षते दण्डस्त्रिवर्गो दण्ड उच्यते ॥ २ ॥

हे राजन्! धर्म, अर्थ तथा काम इन तीनोंका संरक्षण दण्डहीसे होताहै इसलिये बुद्धिमान् लोग उक्त त्रिवर्ग दण्डहीसे मानते हैं ॥ २ ॥

दण्डेन रक्ष्यते धान्यं धनं दण्डेन रक्ष्यते ।
एवं विद्वन्नुपाधत्स्व भावं पश्यस्व लौकिकम् ॥ ३ ॥

धन धान्यादि की रक्षाभी दण्डहीसे होतीहै इसलिये हे विद्वन् राजकुमार! लौकिकभावको देखता हुआ तूं उक्त अर्थको निश्चय कर ॥ ३ ॥

राजदण्डभयादेके पापाः पापं न कुर्वते ।
यमदण्डभयादेके परलोकभयादपि ॥ ४ ॥

अनेक पापी लोग राजदण्डके भयसे पाप नहीं करते एवं अनेक पापी यमके या परलोकके भयसे भी पाप नहीं करते हैं ॥ ४ ॥

परस्परभयादेके पापाः पापं न कुर्वते ।
एवं सांसिद्धिके लोके सर्वं दण्डे प्रतिष्ठितम् ॥ ५ ॥

अनेक प्राणी परस्पर भयसे भी पाप नहीं करते हैं इस रीतिसे स्वभावसिद्ध सम्पूर्ण दण्डहीसे प्रतिष्ठित प्रतीत होता है ॥ ५ ॥

दण्डस्यैव भयादेके न खादन्ति परस्परम् ।
अन्धेतमसि मज्जेयुर्यदि दण्डो न पालयेत् ॥ ६ ॥

दण्डहीके भयसे अनेक प्राणी आपसमें एकदूसरेको खाते नहीं हैं यह संसार यदि दण्डसे संरक्षित न होय तो शीघ्रही अन्धतममें निमग्न होजाय॥६॥

यस्माददान्तान्दमयत्यशिष्टान्दण्डयत्यपि ।
दमनाद्दण्डनाच्चैव तस्माद्दण्डं विदुर्बुधाः ॥ ७ ॥

यह दण्ड अदान्त (इन्द्रिय लोलुप) पुरुषोंको दमन करता है तथा अशिष्टपुरुषोंको दण्डन करता है। एवं दमन तथा दण्डन ही करनेसे विद्वान लोग इसको दण्ड कहते हैं ॥ ७ ॥

असंमोहाय मर्त्यानामर्थसंरक्षणाय च ।
मर्यादा स्थापिता लोके दण्डसंज्ञा विशांपते ॥ ८ ॥

हे राजन्! मनुष्योंको व्याकुलतासे बचानेकेलिये तथा अनेक प्रकारके अर्थके संरक्षणके लिये यह दण्ड नामकी एक प्राचीन मर्यादा स्थापनकरी चलीआती है ॥ ८ ॥

यत्र श्यामो लोहिताक्षो दण्डश्चरति सूद्यतः ।
प्रजास्तत्र न मुह्यन्ते नेता चेत्साधु पश्यति ॥ ९ ॥

जिस देशमें श्यामवर्ण तथा रक्तनेत्रों वाला दण्ड समुद्यत हुआ विचरे है उसदेशकी प्रजा कदापि मोहको प्राप्तनहीं होती परन्तु प्रजाके नियन्ता राजाकी प्रजापर साधु दृष्टि होनीचाहिये ॥ ९ ॥

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थश्च भिक्षुकः ।
दण्डस्यैव भयादेते मनुष्या वर्त्मनि स्थिताः ॥ १० ॥

ब्रह्मचारी. गृही, वानप्रस्थ या भिक्षुक, संन्यासी येह सबी लोक दण्डहीके भयसे न्यायमार्ग में वर्तमान हैं ॥ १० ॥

नाभीतो यजते राजन् नाभीतो दातुमिच्छति ।
नाभीतः पुरुषः कश्चित्समये स्थातुमिच्छति ॥ ११ ॥

हे राजन्! भयसे बिना ना कोई यजन करता है और न कोई किसीको कुछ दियाही चाहता है एवं भयसे न्याय बिना कोईभी पुरुष नियत काल या संकेतपर स्थिर रहनेकी इच्छाभी नहींकरता ॥ ११ ॥

नाछित्वा परमर्माणि नाकृत्वा कर्म दुष्करम ।
नाहत्वा मत्स्यघातीव प्राप्नोति महतीं श्रियम ॥ १२ ॥

हे प्रिय! कोईभी पुरुष परमर्म को न छेदन करके तथा कईएक दुष्कर कर्मोको न करके या मत्स्यघातीकी तरह दूसरोंका घात न करके महती श्री अर्थात् महासमृद्धिको प्राप्त नहीं होसकता ॥ १२ ॥

नाघ्नतः कीर्तिरस्तीह न वित्तं न पुनः प्रजा ।
इन्द्रो वृत्रवधेनैव महेन्द्रः समपद्यत ॥ १३ ॥

इस संसारमें ऐसाही देखनेमें आता है कि,अघातक पुरुषकी ना इस संसार में कीर्ति होती है और न उसको कहींसे धन मिलता है एवं न उसके कुछ प्रजाही होती है, भाव यह कि, जैसे इन्द्रने वृत्रासुरको मारकर महेन्द्र पद को लाभकिया वैसेही प्रजा, धन,समृद्धि, कीर्ति इत्यादि संसारके अनेक पदार्थ घातुक पुरुषहीको प्राप्तहोते हैं ॥ १३ ॥

नहि पश्यामि जीवन्तं लोके किंचिदहिंसया ।
सत्त्वैः सत्त्वा हि जीवन्ति दुर्बलैर्बलवत्तराः ॥ १४ ॥

यदि विचारकर देखा जाय तो विना हिंसासे इस जीवकी जीनाही कठिन है. देखाजाता है कि, बलवालेजीव दुर्बलोंको बलात् खायकर अपना जीवन करते हैं ॥ १४ ॥

नकुलो मूषकानत्ति बिडालो नकुलांस्तथा ।
बिडालमत्ति श्वा राजञ्छ्वानं व्यालमृगस्तथा ॥ १५ ॥

देखाजाता है कि, नकुल अर्थात् निउला चूहोंको खाजाता है और नकुलको बिडाल खाजाता है । एवं बिडालको कुत्ता खाजाता है । ऐसेही कुत्तेको सर्प मृगादि खाजाते हैं ॥ १५ ॥

तानत्ति पुरुषः सर्वान्पश्य कालो यथागतः ।
प्राणस्यान्नमिदं सर्वं जंगमं स्थावरं जगत् ॥ १६ ॥

सर्प मृगादिकोंको पुरुष खाजाता है, हे राजन्! ऐसेही काल जाता है तुं दृष्टिदेकर देख इसलिये यह स्थावर जंगमरूप यावत् जगत् प्राणोंहीका अन्न अर्थात् भक्ष्यप्रतीत होता है ॥ १६ ॥

विधानं दैवविहितं तत्र विद्वान्न मुह्यति ।
यथा सृष्टोऽसि राजेन्द्र तत्तथा भवितुमर्हसि ॥ १७ ॥

जैसे रचना परमेश्वरने रची है उसमें विद्वान् पुरुषको मोह नहीं होता इसलिये हे राजेन्द्र! तेरेकोभी जैसा ईश्वरने बनाया है वैसाही उचित आचरण कर ॥ १७ ॥

विनीतक्रोधहर्षा हि मन्दा वनमुपाश्रिताः ।
विना धनं न कुर्वन्ति तापसाः प्राणयापनम् ॥ १८ ॥

संसारके हर्ष शोकको दूरकर जिन मन्दस्वभाववाले तपस्वीलोगोंनें वनका आश्रयण किया है वे तपस्वीलोगभी अपने प्राणोंका निर्वाह विना धनसे नहीं करसकते ॥ १८ ॥

उदके बहवः प्राणाः पृथिव्यां च फलेषु च ।
न च कश्चिन्न तान्हन्ति किमन्यत्प्राणयापनम् ॥ १९ ॥

हे राजन् ! जलमें पृथिवीमें फलोंमें अनेक प्रकारके प्राणी रहते हैं परन्तु ऐसा कोई पुरुष नहीं है कि, जो जल न पीवे या फल न खावे या भूमिपर व्यवहरण न करे किन्तु सबही करते हैं तो फिर इससे परे प्राण यापन और क्या है ॥ १९ ॥

सूक्ष्मयोनीनि भूतानि तर्कगम्यानि कानिचित् ।
सूक्ष्मणोऽपि निपातेन येषां स्यात्स्कन्धपर्ययः ॥ २० ॥

हे प्रिय ! अनेक जीव ऐसे सूक्ष्म हैं कि, वे देखनेमें नहीं आते किन्तु तर्कगम्य हैं अर्थात् तर्कसे उनकी कल्पना करसकते हैं। ऐसे सूक्ष्मजीवोंपर यदि थोड़ासाभी आघात होजाय तो उनका शरीर छूटजाता है ॥ २० ॥

ग्रामान्निष्क्रम्य मुनयो विगतक्रोधमत्सराः ।
वने कुटुम्बधर्माणो दृश्यन्ते परिमोहिताः ॥ २१ ॥

काम, क्रोध, मद, मत्सरादि दोष रहित होकर मुनिलोग ग्रामको छोड़कर वनको प्राप्तहुएभी वहां जंगलहीमें कुटुम्बधर्मवाले देखनेमें आते हैं ॥ २१ ॥

भूमिं भित्त्वौषधीं छित्वा वृक्षादीनण्डजान्पशून् ।
मनुष्यास्तनुते यज्ञांस्ते स्वर्गं प्राप्नुवन्ति च ॥ २२ ॥

पृथिवीका खोदनकरके अनेक प्रकारकी औषधियोंको काटके अनेक वृक्ष लतादि तथा कई एक पशु पक्षियोंकों मारके मनुष्य यज्ञ करते हैं फिर वे स्वर्गको प्राप्त होते हैं अर्थात् शास्त्रने उनको स्वर्गप्राप्ति कही है ॥ २२ ॥

दण्डनीत्यां प्रणीतायां सर्वे सिद्ध्यन्त्युपक्रमाः ।
कौंतेय सर्वभूतानां तत्र मे नास्ति संशयः ॥ २३ ॥

हे कुन्तीपुत्र ! संपूर्ण भूतोंमें दण्डनीतिके प्रचार करनेसे सब ही कार्य्य सहजही सिद्ध होजाते हैं। इस वार्तामें मेरेको रंचकभी संदेह नहीं है ॥ २३ ॥

दण्डश्चेन्न भवेल्लोके विनश्येयुरिमाः प्रजाः ।
जले मत्स्यानिवाभक्षन्दुर्बलान्बलवत्तराः ॥ २४ ॥

यदि इस लोकमें संरक्षक दण्ड विराजमान न होय तो प्रजाके विनाश होनेकी भी सम्भावना होसकती है क्यों कि, दुर्बल जीवोंको बलवाले प्राणी जलमत्स्योंकी तरह एकदूसरेको खाजानेमें कुछभी देरी न करें ॥२४॥

सत्यं चेदं ब्रह्मणा पूर्वमुक्तं दण्डः प्रजा रक्षति साधुनीतः ।
पश्याग्नयश्च प्रतिशाम्यभीताः संतर्जिता दण्डभयाज्ज्वलन्ति ॥२५॥

यह वार्ता पहलेही ब्रह्माने सच कही है कि, अच्छी रीतिसे जोड़ाहुआ दण्डही इस प्रजाका रक्षक होता है देखो अग्नियाँभी बुझवादेनेके भयसे तिरस्कृत होकर दण्डहीके भयसे देदीप्यमान प्रज्ज्वलित होती हैं ॥ २५ ॥

अंधंतम इवेदं स्यान्न प्रज्ञायेत किंचन ।
दण्डश्चेन्न भवेल्लोके विभजन्साध्वसाध्विति ॥ २६ ॥

यह संसार सारा अन्धेरगुबारकी तरह होजावे तथा किंचिदपि विशेषरूपसे जान न पड़े यदि अच्छे बुरे पदार्थका विभाजक इस लोकमें दण्ड विराजमान न होवे तो ॥ २६ ॥

येऽपि संभिन्नमर्य्यादा नास्तिका वेदनिन्दकाः ।
तेऽपि भोगाय कल्पन्ते दण्डेनाशु निपीडिताः ॥ २७ ॥

जो लोग शिष्टोंकी मर्य्यादाको नहीं मानते वेद तथा परलोकको भी नहीं मानते वे लोगभी दण्डसे शासितहुए अनेक प्रकारके भोगोंके विधायक होते हैं अर्थात् राजदण्डसे ड़रते राजाके हरतरहसे अनुकूल होते हैं ॥ २७ ॥

सर्वो दण्डजितो लोको दुर्लभो हि शुचिर्जनः ।
दण्डस्य हि भयाद्भीतो भोगायैव प्रवर्त्तते ॥ २८ ॥

यह संसार सारा ही दण्डसे जीताहुआ है जिसको कोई दण्ड दण्डित न करसके ऐसे पवित्र पुरुषका मिलना कठिन है दण्डहीके भयसे यह जीव उचित भोगकेलिये प्रवृत्त होता है ॥ २८ ॥

चातुर्वर्ण्यप्रमोदाय सुनीतिनयनाय च ।
दण्डो विधात्रा विहितो धर्मार्थौ भुवि रक्षितुम् ॥ २९ ॥

ब्राह्मणादि चारों वर्णोंके आनन्दकेलिये तथा श्रेष्ठ नीतिके प्रचारके लिये तथा धर्म और अर्थको भूमिपर संरक्षणके लिये यह दण्डका विधान ब्रह्माने किया है ॥ २९ ॥

यदि दण्डान्न बिभ्येयुर्वयांसि श्वापदानि च ।
अद्युः पश्यन्मनुष्यांश्च यज्ञार्थानि हवींषि च ॥ ३० ॥

कुत्त, बिल्ली, पशु, पक्षी इत्यादि यदि दण्डसे न डरें तो ये मनुष्योंके दखतेहीं यज्ञकेलिये बनाई हविको खानेमें विलम्ब न करें ॥ ३० ॥

न ब्रह्मचार्य्यधीयीत कल्याणी न दुहेत गाम् ।
न कन्योद्वहनं गच्छेद्यदि दण्डो न पालयेत् ॥ ३१ ॥

यदि दण्डकी शासना शिरपर न होय तो ब्रह्मचारीका पढना या सुन्दर स्त्रीका गोदोहन करना तथा कन्याका विवाहित होना कठिन है ॥ ३१ ॥

विश्वग्लोपः प्रवर्तेत भिद्येरन्सर्वसेतवः ।
ममत्वं न प्रजानीयुर्यदि दण्डो न पालयेत् ॥ ३२ ॥

हे प्रिय! यदि दण्ड पालना करनेवाला न होय तो एकदम यावत् संसारके प्रबन्धोंके लोपहोनेकी सम्भावना है तथा सबही नियमोंके टूटनेकी सम्भावना है एवं परस्पर ममत्वके भी दूरहोनेकी सम्भावना है ॥ ३२ ॥

चरेयुर्नाश्रमधर्मं यथोक्तं विधिमाश्रिताः ।
न विद्यां प्राप्नुयात्कश्चिद्यदि दण्डो न पालयेत् ॥ ३३ ॥

यथोचित विधिपूर्वक वर्णाश्रमोंके धर्मोको भी कोई आचरण न करे यदि दण्ड पालना करनेवाला न होय तो किसीको विद्यामें अभ्यास करनाभी कठिन है ॥ ३३ ॥

न चोष्ट्रा न बलीवर्दा नाश्वाश्वतरगर्दभाः ।
युक्ता वहेयुर्यानानि यदि दण्डो न पालयेत् ॥ ३४ ॥

उष्ट्र, बैल, घोड़ा, खच्चर, गर्दभ इत्यादि अनेक जीव जोडेहुए दण्डशासनासे विना यानादिको कभी नहीं खैंच सकते अर्थात् ये सबही जीव दण्डहीसे डरते सब कार्य्य करते हैं ॥ ३४ ॥

न प्रेष्या वचनं कुर्युन बाला जातु कर्हिचित् ।
न तिष्ठेद्युवती धर्मे यदि दण्डो न पालयेत् ॥ ३५ ॥

यदि दण्ड शासक न होय तो नौकर या बालक आज्ञाको कभी न मानें एवं स्त्रीभी अपने पतिको कुछ न पहचाने अर्थात् दण्ड विना उसके भी स्वतन्त्र होनेकी सम्भावना होसकती है ॥ ३५ ॥

दण्डे स्थिताः प्रजाः सर्वा भयं दण्डे विदुर्बुधाः ।
दण्डे स्वर्गो मनुष्याणां लोकोऽयं सुप्रतिष्ठितः ॥ ३६ ॥

हे राजन् ! येह सम्पूर्ण प्रजा दण्डहींके आश्रय स्थित है सिवाय दण्डके दूसरी प्राणियोंको कोई भीति नहीं है दण्डके होनेही से मनुष्योंको इस लोकमें स्वर्गसुखका अनुभव होता है दण्डहीके अधीन इसलोक की स्थितिभी प्रतीत होती है ॥ ३६ ॥

न तत्र कूटं पापं वा वंचना वापि दृश्यते ।
यत्र दण्डः सुविहितश्चरत्यरिविनाशनः ॥ ३७ ॥

हे प्रिय! जिस देशमें राजाका दण्ड दुष्टोंके दमन करनेके लिये तथा साधु पुरुषों की रक्षा करनेके लिये उद्युक्त रहता है वहां मिथ्या बोलना, पाप, ठग, चोरी इत्यादि दुराचारोंका नामभी नहीं रहता ॥ ३७ ॥

हविः श्वा प्रलिहेद्दृष्ट्वा दण्डश्चेन्नोद्यतो भवेत् ।
हरेत्काकः पुरोडाशं यदि दण्डो न पालयेत् ॥ ३८ ॥

यदि दण्डका भय न दिखलाया जाय तो कुत्ते तथा काकोंके यज्ञके पुरोडाश तथा हवि भी खाजानेकी सम्भावना है अर्थात् दण्डहीसे भय मान कर ये जीव पीछे हटे रहते हैं ॥ ३८ ॥

अर्थे सर्वे समारम्भाः समायाता न संशयः ।
स च दण्डेन समायातः पश्य दण्डस्य गौरवम् ॥ ३९ ॥

हे राजन् ! संसारके यावत् कार्य्य धनहीसे होते हैं इस वार्ताका हरएक विज्ञको निश्चय ही है परन्तु वह धन दण्डहीसे राजाको मिलता है इसलिये दण्डहीको सबका मुख्य गुरु जानना चाहिये ॥ ३९ ॥

लोकयात्रार्थमेवेह धर्मप्रवचनं कृतम् ।
अहिंसा साधु हिंसेति श्रेयान्धर्म परिग्रहः ॥ ४० ॥

शास्त्रोंमें अनेक स्थानोंमें अहिंसाको साधु लिखा है तथा अनेक प्रकरणों में हिंसाभी लिखा है इन दोनोंका धर्म प्रबलरूपसे विधान केवल लोक-यात्राके लिये है अर्थात् जहां लोकमें हिंसाहीसे अनेक प्रजाको सुख होय वह हिंसाभी राजाको धर्मरूप है ॥ ४० ॥

नात्यन्तं गुणवत्किञ्चिन्न चाप्यत्यन्तनिर्गुणम् ।
उभयं सर्वकार्य्येषु दृश्यते साध्वसाधु वा ॥ ४१ ॥

इस संसारमें सर्वदा सर्वांगगुणपूरित कोई वस्तु नहीं और नाहीं कोई अत्यन्त निर्गुण है। किन्तु संसारका पदार्थमात्र गुणदोषमय ही प्रतीत होता है ॥ ४१ ॥

पशूनां वृषणं छित्त्वा ततो भिन्दन्ति मस्तकम् ।
वहन्ति बहवो भारान्बध्नन्ति दमयन्ति च ॥ ४२ ॥

देखा जाता है कि, लोग प्रथम पशुओंके वृषण (अण्डकोष) छेदन करते हैं फिर उनके मस्तक भेदन करते हैं। ऐसे करनेसे वे अनेक तरहके भार वहन करते हैं और उन पशुओंके स्वामीभी उनको बाँध सकते हैं ताड़ सकते हैं ॥ ४२ ॥

एवं पर्य्याकुले लोके वितथैर्जर्जरीकृते ।
तैस्तैर्न्यायैर्महाराज पुराणं धर्ममाचर ॥ ४३ ॥

इत्यादि पूर्वोक्त रीतिसे सारा संसार आच्छादन होरहा है तथा विचित्र अन्यथाभावोंसे जर्जरीभूत होरहा है, हे राजन्! आपको भी उन २ प्राचीन न्यायप्रणालियोंसे प्रचलित पुराने धर्मपर चलना योग्य है ॥ ४३ ॥

जपं देहि प्रजां रक्ष धर्मं समनुपालय ।
अमित्राञ्जहि कौंतेय मित्राणि परिपालय ॥ ४४ ॥

हे राजन् ! जप दान करो, प्रजाका संरक्षण अपने धर्मका पालन करो, शत्रु-गणका विनाश करो तथा मित्रमण्डलका पालन करो ॥ ४४ ॥

मा च ते निघ्नतः शत्रून्मन्युर्भवतु पार्थिव।
न तत्र किल्बिषं किंचित्कर्तुर्भवति भारत ॥ ४५ ॥

हे पृथ्वीपाल! शत्रुनाश करनेमें तेरेको कदापि शोच या शोक नहीं होना चाहिये क्यों कि, राजाको शत्रुनाश करनेसे धर्मशास्त्रमें पाप नहीं लिखा है ॥ ४५ ॥

अपि भ्राता सुतोऽर्घ्यो वा श्वशुरो मातुलोऽपि वा।
नादण्डयो नाम राज्ञोऽस्ति धर्माद्विचलितः स्वकात् ॥४६ ॥

हे राजन्! राजाको धर्मसे विपरीत हुआ अपना सहोदर भाई, पुत्र, मोललि, या पुत्र,श्वशुर या मामां इत्यादि कोईभी अदण्डनीय नहीं हैं अर्थात् न्यायकारी राजाको सबको उचित दण्ड देना धर्म है ॥ ४६ ॥

हे प्रिय ! यह उपदेश भारत शान्तिपर्वके १.५अध्यायमें भीष्मने युधिष्ठिर को किया है प्रसंगसे वही मैंने आपको सुनाया है इसलिये आपको भी उचित है कि, आप युधिष्ठिरकी तरह धर्मपूर्वक राज्य करें।

इति द्वाविंशो विश्रामः ॥ २२ ॥

अथ त्रयोविंश विश्राम २३.

(राजकु०) महाराज! आपने दण्डनीतिका उपदेश बहुतही उत्तम कहा यदि औरभी कुछ मेरेको करणीय होय तो कहिये। (पं०) हेप्रिय! आपको हरएक विद्याके वृद्ध विद्वानोंका सदैव सेवन रखना चाहिये प्रायः पुराने राजनीतिकुशल पुरुषोंका सहवास तथा उनहीके साथ सविनय नम्रवचन बोलने चाहिये, हे प्रिय ! प्राचीन नीतिनिपुण पुरुषोंके सेवन करनेवाला राजा कदापि कहीं पराभवको प्राप्त नहीं होता ऐसेही आपको वेदविद्या राजनीतितर्कशास्त्रादिमें भी अभ्यास करना चाहिये तथा हरएक लोकोपकारी विद्याके विद्वानोंका पालन करना चाहिये। हे प्रिय ! अनेक प्रकारकी विविध विद्याहीके आश्रय राज्यवैभव की स्थिति है जिस राजाके राज्यमें विद्वान् लोगोंका ह्रास होजाता है उस राजाका राज्य शीघ्रही भूतखेलकी तरह कहींभी दीख नहीं पड़ता एवं राजाको अपने राज्यके

स्वाधीन रखनेके लिये जितेन्द्रिय होना चाहिये जो मूर्ख राजा होकर अपनी शक्तिसे या बुद्धिसे विषय सेवन नहीं करता वह मूढ जीता ही मुर्दोंकी तरह राज्याधिकारसे किनारे होय कर या असाध्य रोगातुर हुआ शेषमें प्राण देताहै । या प्रबल शत्रुगणसे स्वराज्यस्वत्व छिनाय कर शेषमें दीन होकर मूर्खमण्डल में त्राण लेता है । हे प्रिय! इस लोकमें जैसे दुर्दशा व्यसनी राजाकी होती है ऐसे परमात्मा किसी शत्रुकीभी न करे मैंने इस अपनी छोटीसी आयुमें अनेक व्यसनी राजे धूलि में मिलते देखे क्यों कि,व्यसनी अपने व्यसनसें प्रमादीहोता है तो उस समयमें शत्रुगणको अवसर मिलता है वे उसीवक्त मिलकर उस भूँजी रांडोंकी गॉड चाटने वालेको निकाल बाहर करते हैं तथा वहां अपना अधिकार जमाते हैं । एवं जिस व्यसनी राजाके कर्मचारीलोग कुशलहों परन्तु उसको व्यसनसे वारणकी सामर्थ्य न रक्खें तो ऐसे राजाका राज्य नष्ट तो नहीं होता परन्तु थोडे ही समयके पीछे वह मूँजी आप स्वयं ऐसा होजाता है कि, सिवाय पिशाब करनेके या औषधी खानेके उसको दुनियांमें दूसरा कार्य्यही नहीं रहता असाध्यरोगपीडासे राज्यवैभव भोगशक्ति नष्ट होजाती है तो वह मूढ उत्तम२ भोगोंको देख २ कर ललचाताही मर जाताहै. हे प्रिय ! पुंस्त्वशक्ति हीन पुरुषको स्त्री काष्ठके थमलेकी तरह जानती है और व्यसनी पुरुषका सामर्थ्यही क्या है जो उसका संतोष करसके वहां कोई राज्यकी हुकूमतका काम नहीं है किन्तु शारीरिक बलकी अपेक्षा है जिसको मूँजी अपनी मूर्खतासे नष्ट करचुका है तो कहिये अब उभयत्र संतोष कैसे रहे, हेप्रिय! जिस भले पुरुषको भोजनका निमंत्रण दिया जाय और भोजन करानेवाला निर्लज्ज उचित समयपर भोजन करवादेने की सामर्थ्य न रक्खे तो कितनी शर्मकी बात है धिक्कार है उसके भोजनके लिये बुलानेको घरमें कुछभी नहीं तो दाता और उदार बना चाहता है एवं जो तृष्णालु पुरुष दो दिनके खाने योग्य पदार्थको एकही दिनमें खाजायगा तो वह अवश्य विषूचिका की बीमारीसे मरेगा, हे प्रिय ! जिसको राज्यवैभव के भोगनेकी भी बुद्धि नहीं है वह राज्यवैभवको सम्पादन क्या करेगा धूल ? या जिसको स्वात्म-

संरक्षणकी भी तमीज नहीं है वह प्रजाका संरक्षण क्या करेगा माका शिर ? भाव यह कि, व्यसनी पुरुष कदापि राज्यवैभवको भोग नहीं सकता किन्तु शीघ्रही अपनी व्यसनाग्निमें पतंगकी तरह जलकर मरजाता है । इसलिये राजाको व्यसनाग्निसे बचनेकेलिये सर्वदा सावधान रहना चाहिये और व्यसनाग्निमें डालनेवाले जन्म जन्मान्तरके भूखे नीच पामर मित्रमण्डल का भी राजाको अवश्य त्याग करना चाहिये । किन्तु सदा अपने हितको चाहनेवाले दूरदर्शी तथा नीतिनिपुण वृद्धोंका संग रखना चाहिये, हे प्रिय ! राजाको परमात्माने प्राणीमात्र की शासनाके लिये निर्माण किया है इसलिये राजाको प्रमादी या व्यसनी कदापि नहीं होना चाहिये अन्यथा शीघ्रही अपने समेत अपने सर्वस्वको धूलिमें मिलाकर शेषमें यमलोक में निवास करनेमें कुछ देरी न करेगा, हे प्रिय ! इस पूर्वोक्त कथनसे हमारा यह तात्पर्य्य नहीं है कि, राजाको सांसारिक विषयसुखका अनुभव ही नहीं करना चाहिये किन्तु यह है कि, राजा जो करे सो सब संयमसे करे जैसे परमेश्वरने राजाको सर्वप्राणियोंका शिरोमणि बनाया है वैसेही उसके भोग्यपदार्थ भी सर्वोत्तम ही बनाये हैं परन्तु राजाको अपनी बुद्धिसे उनको उपयोगमें लाना चाहिये, हे प्रिय ! शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ये पांच प्राणीमात्रके बाह्य भोग्यविषय हैं । और काम, क्रोध, लोभ मोह, अहंकार येह पांच प्राणीमात्रके चित्तके विकार हैं इनमें प्रथम पांचकी जब इस जीवको अप्राप्ति होती है तो सबसे प्रथम चित्तका विकार काम अर्थात कामनाकार होता है (१) कामना अनुसार प्रयत्न करनेसे यदि कदाचित् किसी प्राणीको उक्त पांचोंमेंसे किसी एक विषयकी कोई एक अंश दैवात् मिलने भी लगे तो उस मिलनेमें प्रतिबन्धक होनेवाले पर उसी वक्त चित्तका परिणाम क्रोधाकार होता है (२) एवं यथाशक्ति प्राप्त विषयके त्यागनेमें असमर्थ होना ही चित्तका लोभाकार परिणाम है (३) उक्तविषयोंमें फँसकर उनसे छूट-नेकी सामर्थ्य भी न रहनी चित्तका मोहाकार परिणाम है (४) दूसरेके

पास अपनेसे न्यून विषयसम्पत्ति देखकर चित्तमें अभिमान विशेषका नाम अहंकाराकार परिणाम है (५) हे प्रिय ! यह हमने आपको साधारण लोकस्थिति कही है परन्तु राजामें सब इससे विपरीत होना चाहिये क्यों कि, राजाको कोई विषय अप्राप्त नहीं हैं इसलिये राजामें काम का अभाव होना चाहिये (१) राजा की साधारण विषयप्राप्तिमें किसी जीवको बीचमें प्रतिबन्धक होनेकी ताकत नहीं है इसलिये राजाको क्रोधभी नहीं होना चाहिये (२) राजाको समय २ पर अनेक प्रकारके भोग्य-पदार्थ स्वयं प्राप्त होनेकी सम्भावना है इसलिये प्राप्तविषयके त्यागनेमें अस-मर्थरूप लोभभी राजामें कभी नहीं होना चाहिये (३) राजाको भोग्य-पदार्थ कोई दुर्लभ नहीं हैं किंतु एकके नष्टहोनेसे या उसको स्वयं छोड-देनेसे उसके स्थानापन्न दूसरा उससेभी अच्छा इस परमेश्वरकी सृष्टिमें नूतन तैयार है इसलिये किसीएक विशेष पदार्थके साथ प्रेमकरके व्यामोहसागरमें डूबना राजाकी मूर्खता है। भाव यह कि, राजाका किसीभी पदार्थविशेषमें कदापि अधिक प्रेम नहीं होना चाहिये (४) एवं कदाचित् भोग्य पदार्थको लाभकर अभिमानवृत्तिभी छोटेचित्तके साधा-रण पुरुषकी होती है इसलिये सर्वदा अनायास सिद्धविषयव्यूहवाले विमलस्वान्त गम्भीर हार्द महाराजको अभिमान या अहंकार करनेकी कुछ आवश्यकता नहीं है (५) हे प्रिय ! शिकार खेलना, जूआ खेलना२ दिनका सोना ३ वृथा किसीकी निन्दा स्तुति करनी ४ स्त्रियोंसे अधिक प्रेम रखना ५ शराबपीना ६ गानेबजाने आदिका सुनना ७ विना प्रयो-जनसे इधर उधर घूमना ८ ये अष्ट व्यसन हैं इनसे प्रेमकरनेवाला राजा बहुतही शीघ्र विनाशको प्राप्त होता है इसलिये राजाको निर्व्यसनी, उद्योगी, साहसी, दृढप्रतिज्ञ, सत्यवादी, प्रजापालक तथा शूरवीर होना चाहिये। ऐसेही राजाको अपने राज्यके अनुरूप पांच सात या दश मंत्री नियत करने चाहिये वे राजधर्मनीतिमें कुशल, कुलीन, विद्वान, दूरदर्शी तथा धर्मात्मा होने चाहिये इनहीके साथ राजाको हरएक राज्यप्रबन्ध चिन्तन करना चाहिये ऐसेही कुलीन,शुचि, चतुर, विद्वान, राजभक्त,वार्ताको स्मरण रखने

वाला, इशारेके समझनेवाला, देशकालानुरूप बर्तनेवाला, दृढशरीरवाला, निर्भय, बोलचालमें कुशल दूतभी होना चाहिये । बस इन दूत मंत्रियोंके शिरपर ही सारे राज्यकी बुन्याद होती है यदि दैवात् इनका मेल अच्छा मिलता चलाजाय तो राज्यप्रबन्ध कोई दिन बनारहता है और यदि इनका जुडाव अच्छा न होय अर्थात् इनमें कोई एक या दो नीच हों या परस्पर राग, द्वेष, ईर्षा, वखीली अधिक फैलजाय तो राजाके देखतेही उसका राज्य इन्द्रप्रतिम भी क्यों न होय थोडेही कालमें भूतखेलकी तरह दृष्टिगोचर कदापि नहीं होगा यद्यपि राज्यकार्य्यमें रहकर पुरुषका रागद्वेषशून्य रहना महा दुर्घट है तथापि विचारशील पुरुषको आपसमें के, तुच्छ रागद्वेषसें सारे राज्यमात्रमें हानि पहुँचानेवाली कोई चेष्टा कदापि नहीं करनी चाहिये । राजाका निवास स्थान नगरके मध्य या एक किनारेपर दृढ चोरादिकें गमनायोग्य राजपुरुषोंसे चारोंओर संरक्षित तथा स्वच्छ हवादार होना चाहिये । अपनी प्रजाके विद्वान् लोग राजाको यथायोग्य राज्यप्रबन्धोंमें नियुक्त करने चाहियें तथा शूरवीर लोगोंको जंगी सेनामें नियत करना चाहिये । प्रजाके लोगोंसे भूमिकर(उपजका छठाभाग)लेना चाहिये उसके दश भाग बनाकर एक भाग प्रति वर्ष कोशमें जमा रखना चाहिये एक भागमेंसे पाठशाला, धर्मशाला, अनाथालय, औषधालय इत्यादि धर्मकार्य्य करने चाहिये, शेष रहे अष्टभागोंका प्रजासंरक्षक तथा राज्यसंरक्षक पुलिस और जंगीसेनामें खर्च करना चाहिये इस उभयसंरक्षक सेनाका युद्धाभ्यास अर्थात् कवाइद प्रतिदिन नियत समयपर होना चाहिये । मरनेसे डरनेवाला पुरुष जंगीसेनासे निकाल देना चाहिये । और राजाका तो युद्धसे विना मरना या शस्त्रोंसे विना दूसरेको नमनकरना धर्म ही नहीं है-

तथा हि अर्जुनः ।

क्षत्रियाणां महाराज संग्रामे निधनं मतम् ।
क्षात्रधर्मो महारौद्रः शस्त्रनित्य इति स्मृतः ॥ १ ॥

भारत शां० अ०२२ श्लो० ५ ॥

हे महाराज! क्षत्रियलोगोंका युद्धहीमें मरना श्रेष्ठ है अर्थात् खाटपर मरनेसे क्षत्रियके नामको लज्जा है यावत् धर्मोंसे क्षत्रियका धर्म इसीलिये भयानक है कि, इसमें सिवाय शस्त्रोंके दूसरे किसीको नमस्कार करनेकी भी आज्ञा नहीं है ॥ १ ॥

भीष्मः ।

ब्राह्मणानां यथा धर्मो दानमध्ययनं तपः ।
क्षत्रियाणां तथा कृष्ण समरे देहपातनम् ॥ २ ॥

हे कृष्ण! जैसे ब्राह्मणोंका सहज धर्म दान देना, विद्या पढना, तप करना आदि है वैसेही क्षत्रियका केवल युद्धमें प्राणदेना मात्र है अर्थात् युद्धसे विना क्षत्रियका मरना सर्वथा पापरूप है और युद्धमें मरना मात्र धर्म है॥२

पितॄन्पितामहान्भ्रातॄन्गुरून्सम्बान्धिबान्धवान् ।
मिथ्या प्रवृत्तान्यः संख्ये निहन्याद्धर्म एव सः ॥ ३ ॥

पिता, पितामह, भ्राता, गुरु, सम्बन्धी या बन्धुवर्गमें कोईभी मिथ्या प्रवृत्तिवाला हो जो युद्धमें इनके विनाशमें संकोच नहीं करता वही धर्मात्मा क्षत्रिय है ॥ ३ ॥

समयत्यागिनो लुब्धान्गुरूनापि च केशव ।
निहन्ति समरे पापान्क्षत्रियो यः स धर्मवित् ॥ ४ ॥

हे केशव! जो लोभके वश होकर समयपर अपना त्यागकरे वह चाहे गुरु भी क्यों न हो क्षत्रियको उसके मारडालनेका दोष नहीं है उलटा युद्धमें उनके मारनेसे धर्म होता है ॥ ४ ॥

लोहितोदां केशतृणां गजशैलां ध्वजद्रुमाम् ।
महीं करोति युद्धेषु क्षत्रियो यः सधर्मवित् ॥ ५ ॥

जो क्षत्रिय पुरुष युद्धभूमिको लोहूसे जलवाली बनाता है तथा शत्रुगणके केशोंसे तृणमयी दिखलाता है सेनाके हस्तियोंके समूहसे पर्वतोंवाली एवं अनेक ध्वजा (निशानोंसे) वृक्षोंवालीसी बनाता है वही क्षत्रिय अपने धर्म्मके मर्मको जाननेवाला कहाता है ॥ ५ ॥

आहूतेन रणे नित्यं योद्धव्यं क्षत्रबन्धुना ।
धर्म्यं स्वर्ग्यं च लोक्यं च युद्धं हि मनुरब्रवीत् ॥ ६ ॥

क्षत्रिय पुरुषको यदि कोई युद्धकेलिये बुलावे अर्थात् अपने साथ युद्ध-करनेके लिये प्रेरे तो क्षत्रियको युद्धसे इन्कार नहीं करना चाहिये क्यों कि, क्षत्रिय पुरुषकी इस लोकमें कीर्ति और परलोकमें सद्गति तथा धर्मकी वृद्धि युद्धहीसे मनुने कही है ॥ ६ ॥

नित्योद्युक्तेन वै राज्ञा भवितव्यं युधिष्ठिर ।
प्रशस्यते न राजा हि नारीवोद्यमवर्जितः ॥ ७ ॥
भारत अ० ५५-श्लो० २० ॥

हे युधिष्ठिर ! राजा पुरुषको सदा उद्युक्त रहना चाहिये क्यों कि, राजा होकर जो स्त्री की तरह अपने वेष बनानेमें अर्थात् कंघी पट्टीसे अपनेको शृंगारित करनेमें काल खोता है उसकी इस लोकमें प्रशंसा नहीं होती॥७॥

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्य्याकार्य्यमजानतः ।
उत्पथप्रतिपन्नस्य दण्डो भवति शाश्वतः ॥ ८ ॥

कार्य्याकार्य्यको न विचारके करनेवाला पापिष्ठ तथा न्यायमार्गके विपरीत चलनेवाला गुरु भी क्यों न हो राजनियमसे अवश्य दण्डनीयहै॥८॥

लोकरंजनमेवात्र राज्ञां धर्मः सनातनः ।
सत्यस्य रक्षणं चैव व्यवहारस्य चार्जवम् ॥ ९ ॥
भारत अ० ५७ श्लो०८ ॥

सदा सत्यका संरक्षण करना व्यवहारकी सरलता करनी तथा प्रजाको हरएक तरहसे प्रसन्न रखना राजाके सहज सनातन धर्म हैं ॥ ९ ॥

आत्मा जेयः सदा राज्ञा ततो जेयश्च शत्रवः ।
अजितात्मा च नरपतिर्विजयेद्धि कथं रिपून् ॥ १० ॥

सबसे प्रथम राजाको संयमी होकर आत्मज्ञानी होना चाहिये उसके पीछे शत्रुविजय अर्थात् विरोधिराजाओंको जीतना चाहिये क्यों कि, जो राजा संयमसे स्वात्मजेता नहीं है उसके द्वेषी राजा जीतनेमें भी सन्देह ही हैं अर्थात् नहीं जीतसकेगा ॥ १० ॥

एतावानात्मविजयः पञ्चवर्गविनिग्रहः ।
जितेन्द्रियो नरपतिर्बाधितुं शक्नुयादरीन् ॥ ११ ॥
अ० ६९ श्लो० ५ ॥

स्वात्मविजय नाम कामादि पञ्च वर्गके जीतनेका है इन पञ्चवर्गके जीतनेवाला राजा अपने शत्रुवर्गको भी जीत सकता है ॥ ११ ॥

विश्वासयेत्परांश्चैव विश्वसेच्च न कस्यचित् ।
पुत्रेष्वपि हि राजेन्द्र विश्वासो न प्रशस्यते ।
अविश्वासो नरेन्द्राणां गुह्यं परममुच्यते ॥ १२ ॥
अ० ८५ श्लो० ३३ ॥

हे राजेन्द्र! राजाको आप सबके विश्वास पात्र बनना चाहिये परन्तु अपना विश्वासपात्र किसीको नहीं समझना चाहिये अधिक क्या कहें राजाको अपने पुत्रोंपर भी विश्वास करना उचित नहीं है परन्तु राजाका लोगोंपर अविश्वास लोगोंको प्रगट नहीं होना चाहिये अर्थात् राजाका अविश्वास ऐसा गुह्य होना चाहिये जो किसीको मालूम न हो कि, राजाको मेरा विश्वास नहीं है ॥ १२ ॥

न हि शौर्य्यात्परं किंचित्त्रिषु लोकेषु विद्यते ।
शूरः सर्वं पालयति सर्वं शूरे प्रतिष्ठितम् ॥ १३ ॥
अ० ९९ श्लो० १८ ॥

शौर्य्यधर्म जैसा उत्तम धर्म तीनोंलोकोंमें दूसरा नहीं है सर्वप्राणियोंकी पालना करनेकी शूरवीर पुरुषमें सामर्थ्य है इसलिये वीरपुरुषको सर्वाधार कहना भी उचित है ॥ १३ ॥

जयं जानीत धर्मस्य मूलं सर्वसुखस्य च ।
या भीरूणां परा ग्लानिः शूरस्तामनुगच्छति ॥ १४ ॥

शूरपुरुषका विजय सर्वधर्मका कारण तथा अनेकविधके सुखोंका मूलभूत है क्यों कि, भीरु (डराकुल) पुरुषोंके ग्लानिके स्थानको शूरवीर पुरुष स्वाभाविक प्राप्त होसकता है ॥ १४ ॥

ते वयं स्वर्गमिच्छन्तः संग्रामे त्यक्तजीविताः ।
जयन्तो वध्यमाना वा प्राप्नुयाम च सद्गतिम् ॥ १५ ॥
अ० १०० श्लो० ४१ ॥

वीरपुरुषोंका सदा यही विश्वास रहता है कि, स्वर्गकी इच्छा करनेवाले हमलोग यदि युद्धमें प्राणत्यागेंगे तो जय अथवा पराजयका अन्तिम फल हमको सद्गतिरूप अवश्य होगा ॥ १५ ॥

अलब्धं चैव लिप्सेत लब्धं रक्षेत्प्रयत्नतः ।
रक्षितं वर्धयेच्चैव वृद्धं पात्रेषु निक्षिपेत् ॥ १६ ॥
मनु० अ० ७ श्लो० ९९ ॥

राजाको उचित है कि,अलब्ध सम्पदाके लाभकी चेष्टा करे और लब्धको प्रयत्नसे रक्षणकरे एवं रक्षितको न्यायसे वर्धितकरे तथा वर्धितको सत्पात्रोंमें दानकरे ॥ १६ ॥

आहवेषु मिथोऽन्योऽन्यं जिघांसन्तो महीक्षितः ।
युध्यमानाः परं शक्त्या स्वर्गं यान्त्यपराङ्मुखाः ॥ १७ ॥

युद्धभूमिमें परस्पर सम्मुख शस्त्राघातसे बाध्य बाधित या बाधक होनेवाले राजाको स्वर्गप्राप्ति धर्मशास्त्रोंमें लिखी है अर्थात् रण-भूमिमें शत्रुके सामने पीछा न दिखानेवाले वीरको स्वर्ग होता है तथा पीछा दिखानेवालेको नरक होता है ॥ १७ ॥

एकेनापि हि शूरेण पदाक्रान्तं महीतलम् ।
क्रियते भास्करेणेव स्फारस्फुरिततेजसा ॥ १८ ॥

वीरपुरुष एक भी होय तो सारी भूमिको अपने पादके नीचे अर्थात् अपने अधिकारमें करसकता है जैसे एकही सूर्य्य सारी भूमिको अपनी किरणोंसें व्याप्त करलेता है ॥ १८ ॥

हे प्रिय! प्रजापालक तथा शूरवीर राजाके ऐसे २ अनेक धर्म हैं हम आपको इस थोडेसे कालमें कहांतक सुनासकें परन्तु यदि आपको न्याय तथा धर्मपूर्वक राज्यकरनेका उत्साह होय तो समय २ पर इतिहास, पुराण-धर्मशास्त्र तथा नीतिशास्त्रका श्रवणकिया करो । (राज०) महाराज !

मेरे श्रवणयोग्य कौन २ ग्रन्थ हैं । (पं०) हे प्रिय ! सबसे प्रथम कार्य्य आपका चौकस होकर प्रजापालन है यदि कदाचित् समयमिले तो महाभारत वाल्मीकि रामायणादि इतिहास सुनने चाहिये धर्म नीति तथा राजनीतिके प्रचारके लिये मनु याज्ञवल्क्यादि धर्मशास्त्र सुनने चाहिये एवं आत्मज्ञानके लिये सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा, वेदान्त इन छः शास्त्रोंको श्रवण करना चाहिये इनके सिवाय यद्यपि बुद्ध, जिन, चार्वाकादिविचारकुशलोंने और भी नाना प्रकारके विचार किये हैं तर्कनिपुण जिज्ञासु पुरुषको वे भी अवश्य जानने योग्य हैं तथापि राजाको उनके जाननेका कुछ उपयोग नहीं है राजाको केवल परमेश्वरपर तथा शिष्टपरम्परा कृत सत्य न्याय मार्गपर विश्वासके विना इन मत मतान्तरोंके पचड़ेमें पड़नेकी कुछ आवश्यकता नहीं है, राजाका सिवाय ईश्वरके तथा सत्यन्यायके किसी मतमन्तान्तरपर आग्रह नहीं होना चाहिये अपने अपने घरमें सबही अच्छे हैं परन्तु राजाके लिये सबही समान हैं क्यों कि, राजा सर्वका प्रभु है, जैसे अंतर्यामी परमात्मा सर्व मतमतान्तरवालोंपर समानदृष्टि रखताहुआ सबका समान पालन पोषणादि व्यवहार करता है ऐसेही राजारूप ईश्वरकी भी सर्वप्रजापर समान दृष्टि होनी चाहिये, राजाका विना न्यायबर्ताव किसी सिद्धान्तपर आग्रह होना उसकी महा हानिका हेतु है; हे प्रिय! विद्वान् लोग सबही इस वार्ताको अच्छीतरह जानते तथा मानते हैं कि, धर्म जितने प्रचलित हैं या हुए या जो आगे होंगे वे सब जीव ही की कल्पनासे प्रचारित हैं ऐसा कोईभी धर्म नहीं जो कि, परमेश्वरकी तरफसे हो परन्तु तौ भी मूर्खसमुदायसे लेकर अनेकों विद्वानोंतक भी अपने २ धर्मका पूर्णरूपसे आग्रह देखनेमें आता है इस धर्महीके आवेशमें सहस्रों मूँजी जिनको रुधिर देखकर मूर्च्छा आजातीहो समयपर वे भी जान कुर्बानकरनेमें सी नहीं करते इसलिये प्रजाके धर्म में दखल देनेवाले राजाका राज्य स्थायी होना सर्वथा दुर्घट है ।

इति त्रयोविंशो विश्रामः ॥ २३ ॥

अथ चतुर्विंश विश्राम २४.

(राजकु०) महाराज ! आपने मेरेको आत्मज्ञानके लिये दर्शनशास्त्र श्रवणकी आज्ञा करी सो आपके उपदेशानुसार राज्यकार्य्योंको छोडकर सांगोपांग दर्शनोंका श्रवण करना तो कठिनही है इसलिये आप मेरेको संक्षेपसें दर्शन सिद्धान्तको श्रवण करावो।(पं०) हेप्रिय ! आपको सांगोपांग दर्शनोंके श्रवणकी कुछ आवश्यकता नहीं है किन्तु उनका तात्पर्य समझलेना चाहिये वास्तवमें दर्शन सिद्धान्त ही इसजीवके संतोषका मूल है, जिसमें आत्मविचारका युक्तिपूर्वक निरूपण हो उसका नाम दर्शन है । उक्त षट्दर्शनोंमें प्रथम दर्शन सांख्य है महर्षि कपिल इसका कर्ता है समय इसका हमारे इतिहासोंसे सत्ययुग प्रतीत होता है सत्ययुगका समय प्रमाण कलियुगसे चौगुना लिखा है । कलियुगका प्रमाण ४३२००० चारलाख बत्तीस हजार वर्ष परिमित पुराणोंमें लिखा है द्वापरका इससे द्विगुण है अर्थात् ८६४००० अष्टलाख चौसठ हजार कहा है एवं त्रेताका त्रिगुण अर्थात् १२९६००० बारालाख छियानवें हजार कहा है ऐसेही सत्ययुगका चौगुन अर्थात् १७२८००० सत्रहलाख अठाईसहजार वर्षपरिमित लिखा है इसरीतिसे महर्षि कपिलका यदि सत्ययुगकी अन्तिम शताब्दीमें भी प्रादुर्भाव मानलिया जाय तो५००१ वर्ष व्यतीत कलिके साथ मिलाकर देखनेसे महर्षि कपिलका समय २१६-५००१ इतना पुराना प्रतीत होता है इस महर्षिने अपने शास्त्रमें पुरुष तथा प्रकृति इस नामके दो पदार्थ ही माने हैं उनमें पुरुष तो वास्तवसे नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव चेतनस्वरूप है और प्रकृति सत्त्वरजस्तमोमयी त्रिगुणात्मिका परिणामिनी कर्त्री जडस्वरूपा है पुरुष कर्ता नहीं परन्तु प्रकृतिके योगसे भोक्ता है ऐसे पुरुष असंख्यात अर्थात् अनन्तानन्त हैं और सबही पुरुष गगनकी तरह सर्वव्यापक हैं जब यह प्रकृति उक्त पुरुषोंके भोग भुगानेमें अभिमुख होतीहै तब इसका तेतीस तरहका परिणाम होता है अर्थात् प्रकृति प्रथम महत्तत्त्वरूपसे परिणत होती है महत्तत्त्व अहंकाररूपसे परिणत होता है अहंकार पञ्चतन्मात्रारूपसे परिणत होता है पञ्चतन्मात्रा

पंचमहाभूतरूपसे परिणत होती हैं उसमेंभी इतना भेद है कि, तमः प्रधान अहंकारसे शब्दादि पञ्चतन्मात्राओंकी उत्पत्ति है और सत्त्वप्रधान अहंकार से चक्षुः, श्रोत्र, रसना, घ्राण, त्वक् येह पञ्च ज्ञानइन्द्रिय तथा वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ ये पञ्च कर्मेन्द्रिय ग्यारहें मनकेसहित, प्रादुर्भूत होते हैं रजोगुणको सर्वत्र क्रिया उत्पादनद्वारा कारणता है इसलिये रजोगुण भी व्यर्थ नहीं है एवं प्रत्यक्ष अनुमान और शब्द येह तीन प्रमाण हैं सत्कार्य्यवाद है अर्थात् सद्रूपकार्य्यही की कारणसामग्रीसे प्रादुर्भाव अवस्था होजाती है जगत् कर्ता ईश्वरका अनंगीकार है, पुरुष सत्ताको पाकर प्रकृति ही सब जगत्को बनाती है पूर्व कहे पुरुषोंके सिवाय दूसरे जीव नहीं हैं अर्थात् पुरुषहीकी बुद्धियोगसे जीवसंज्ञा होजाती है, जगत् प्रकृतिका परिणाम है, पुरुषोंके भोग देनेकेलिये प्रकृतिने रचा है पुरुष कर्मोंका कर्ता नहीं है परन्तु भोक्ता है, कर्मकर्त्री बुद्धि है उसीके सम्बन्धसे पुरुषमें कर्तापन प्रतीत होता है पुरुषकी मुक्ति आत्मज्ञानसे होती है वह आत्मज्ञान पुरुषको प्रकृति तो अन्यत्वप्रकारेण स्वात्मविषयक होना चाहिये तो ऐसे ज्ञानसे मुक्ति होती है मुक्ति नाम प्रकृतिके भोगदेनेसें उपरामहोनेका है वस्तुतः आत्मा मुक्तस्वरूप है इत्यादि, यह संक्षेप मात्रसे सांख्यशास्त्रका सिद्धान्त है ॥ १ ॥

इसके कुछ काल पीछे कणादमहर्षिने दशअध्यायरूप वैशेषिक शास्त्रका निर्माण किया लक्षणादि द्वारा पदार्थोंके वास्तवस्वरूपका दिखलाना इसका मुख्य प्रयोजन है विशेषरूपसे निर्वचन करनेके लिये सांख्यशास्त्रप्रतिपादित पदार्थोंहीको इस महर्षिने नामान्तरसे पढा है जैसे—द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, बिशेष, समवाय तथा अभाव येह सात वैशेषिक शास्त्रके पदार्थ हैं इनमें पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा, मन इन नवका नाम द्रव्य है॥ रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व इत्यादि चौवीस तरहके गुण हैं । उत्क्षेपण अपक्षेपणादि पांचतरहके कर्म हैं । सामान्य नाम सत्ताका है वह दो तरहकी है एक पर दूसरी अपर है वह पर सत्ता द्रव्य, गुण, कर्म तीनोंमें रहती है ।

परसे भिन्न जो जाति है वह द्रव्यादि प्रत्येकमेंभी रहसकती है, नित्यद्रव्योंके विभाजक तथा नित्य द्रव्योंहीमें रहनेवाले पदार्थका नाम 'विशेष' है वह अनन्त है सबन्धविशेषका नाम 'समवाय' है जैसे घट तथा उसके रूपका या घटका तथा उसकी क्रियाका इत्यादि, निषेधमुख प्रतीतिके विषयका नाम अभाव है वह चार प्रकारका है प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अत्यन्ताभाव तथा अन्योऽन्याभाव इत्यादि, इनके सिद्धान्तमें प्रत्यक्ष तथा अनुमान येह दो ही प्रमाण हैं ईश्वर जगत्का कर्ता है, जीव कर्ता भोक्ता विभु परिमाणवाला तथा नाना है, जगत्का उपादानकारण परमाणु हैं, परमाणुनाम पृथिवी, जल, तेज, वायु इन चारोंभूतोंके अत्यन्त सूक्ष्मभागोंका है, कर्म शुभाशुभ जीव कर्ता है उसका फलभी भोगता है। पदार्थोंके यथार्थ तत्त्वज्ञानसे अर्थात् पदार्थ प्रतियोगिक यथार्थ आत्मतत्त्वज्ञानसे मुक्ति होती है मुक्ति नाम २१ दुःखध्वंसका है मनसहितषड्ज्ञानेन्द्रिय षड् उनके रूप रसादिविषय, षड्उनके ज्ञान शरीरसुख तथा दुःख येह एकविंशति दुःख हैं। तत्त्वज्ञानसे इन सबका नाश होता है इत्यादि, यह संक्षेपसे वैशेषिक शास्त्रका सिद्धान्त है ॥ २ ॥

इसके बहुतही स्वल्पकालपीछे महर्षि गौतमने न्यायशास्त्रका प्रकाश किया अनेक तरहकी युक्ति तथा प्रमाणोंसे प्राचीन कपिल महर्षिके सिद्धान्तका संरक्षण तथा वादियोंका विजय करना इस शास्त्रका मुख्य प्रयोजन है इसशास्त्रके सबही पदार्थ प्रायः वादिविजयके ढंगपर लिखेहुए हैं। प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय वाद जल्प वितण्डा हेत्वाभास छल जाति निग्रहस्थान येह १६ इस शास्त्रके पदार्थ हैं। इनहींके सम्यग् ज्ञानसे मोक्षकी प्राप्ति मानी है। प्रत्यक्ष अनुमान उपमान तथा शब्द येह चार प्रमाण हैं आत्मा शरीर इन्द्रिय अर्थ बुद्धि मनः प्रवृत्ति दोष प्रेत्यभाव (पुनर्जन्म) फल दुःख अपवर्ग येह ११ तरहका प्रमेय है। ऐसे ही पांच अध्यायरूप न्यायशास्त्रमें इन ऊपर लिखे प्रमाणादि पदार्थोंका सविस्तर निरूपण है ईश्वर जीव जगत्की उत्पत्ति कर्म मुक्ति तथा आत्मज्ञानका स्वरूप येह सबही इस शास्त्रके वैशेषिक शास्त्रहीके समान हैं। इत्यादि यह संक्षेपसे न्यायशास्त्रका सिद्धान्त है ॥ ३ ॥

इसके बहुत काल पीछे आत्मज्ञानी पुरुषोंके जीवनमुक्तिसुखके सम्पादनार्थ महर्षि पतंजलिने योगशास्त्रका प्रकाश किया वह योगशास्त्र समाधि-साधन विभूति तथा कैवल्य इन चार पादोंमें विभक्त है इनमें प्रथम पादमें चित्तवृत्तिनिरोधको योग कहकर सविस्तर समाधिका निरूपण कियाहै द्वितीय अध्यायमें तप स्वाध्याय ईश्वरप्रणिधान इत्यादिरूपसे क्रियायोगका निरूपण है तथा चंचल चित्तवाले पुरुषके उद्देशसे यम नियम आसन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधिः इन अष्ट बहिरंगसाधनोंका निरूपणहै तृतीय पादमें अवान्तरफलरूप अनेक प्रकारकी योगीकी विभूतिका निरूपणहै, चतुर्थमें जन्म औषधी मन्त्र तप तथा समाधिसे उत्पन्न होनेवाली चारप्रकारकी सिद्धिके निरूपणपूर्वक सविस्तर कैवल्यरूप परमप्रयोजनका निरूपण है क्लेशकर्मादिशून्य पुरुषविशेषको महर्षि पतंजलिने ईश्वर मानाहै शेष यावत् मन्तव्य पूर्वोक्त सांख्यशास्त्रवत् हैं इत्यादि यह संक्षेपसे योगशास्त्रका सिद्धान्त है ॥ ४ ॥

इसके कुछ काल पीछेमहर्षि व्यासने वेदान्तशास्त्रका प्रकाश किया परमप्राचीन महर्षि कपिलका कहाअर्थ वास्तवसे श्रुतिअनुकूल है यह दिखलाना इसका मुख्यप्रयोजन है इसीही लिये इसशास्त्रका नाम उत्तरमीमांसा भी प्रख्यात है मीमांसा नाम वेदविचारका है उत्तर शब्द सापेक्षक है अर्थात् महर्षि जैमिनिके पूर्वमीमांसाके तात्पर्य्यसे यह शास्त्र उत्तर है यह वेदान्त शास्त्र समन्वय अविरोध साधन तथा फल इन चार अध्यायोंसे विभक्त है इसके प्रत्येक अध्यायके चार चार पाद हैं उनमें प्रथम अध्यायके चारों पादों में श्रुतियोंके अर्थका समन्वय दिखलाया है अर्थात् यह सिद्ध किया है कि, सबही वेदवाक्य किसी एक महा तात्पर्य्यके बोधक हैं। एवं दूसरे अध्यायके चारोंपादोंमें भिन्न २ अर्थके कहनेवाले या परस्पर विरुद्ध अर्थके कहनेवाले वेदवचनोंके विरोधका परिहार किया हैं अर्थात् व्यवस्था लगाई है, एवं तीसरे अध्यायके चारों पादोंमें सविस्तर आत्मज्ञानके साधनोंका निरूपण है, चतुर्थ अध्यायके चारों पादोंमें सविस्तर मुक्तिरूप फलका निरूपण है शेष यावत् मन्तव्य इसशास्त्रके भी प्राचीन महर्षि कपिलके ही समान हैं ।

यद्यपि वर्तमानकालमें इस शास्त्रके टीका टिप्पणी करनेवाले सांप्रदायिक लोगोंने इस शास्त्रको मनमाना अपनी २ तरफ खैंचा है तथापि महानुभाव महर्षि लोग अपने पूज्य पूर्वजोंकी पुष्टिहीमें प्रयत्नशील होते हैं तथा तुच्छलोग पूर्वजोंको तुच्छ कहकर अपना मनमाना ढंग चलाते हैं इस प्राचीन परिपाटीको स्मरणकर निश्चय होता है कि, यह शास्त्रभी महर्षि कपिल के प्रतिकूल नहीं है । शोक केवल इतनाही है कि, वर्तमान कालमें महर्षि कपिलके सिद्धान्तके अनुकूल वेदान्तशास्त्रपर कोई व्याख्या नहीं है इत्यादि यह संक्षेपसे वेदान्तशास्त्रका सिद्धान्त है ॥ ५ ॥

इसके कुछ काल पीछे या समकालहीमें महर्षि जैमिनिने पूर्वमीमांसा शास्त्र का प्रकाश किया आत्मज्ञानके अनधिकारी मन्दबुद्धिवाले पुरुषोंको शुभकर्मोंमें लगाना इस शास्त्रका मुख्य प्रयोजन है यह द्वादश अध्यायरूप शास्त्र अधिकारीभेदसे तथा उनकी इच्छाओंके भेदसे अनेक प्रकारके कर्मोंका बोधक है इसके प्रथम अध्यायमें विध्यादिके प्रामाण्यका निरूपण है (१) द्वितीयमें विधिविहित कर्मोंके भेदका निरूपण है (२) तृतीयमें विहितकर्मोंके अंग अङ्गीभावका प्रदर्शन है (३) चतुर्थमें यज्ञप्रयुक्त अनुष्ठेय पदार्थोंके तथा पुरुषार्थप्रयुक्त अनुष्ठेय पदार्थोंके परिमाणका चिन्तन है अर्थात् उनपदार्थोंके उपयुक्त तोल माप का विचार किया है (४) पञ्चम में अनुष्ठेय पदार्थोंके अनुष्ठानके क्रमका निरूपण है अर्थात् किस पदार्थके अनन्तर किसका अनुष्ठान करना चाहिये ऐसा विचार किया है (५) षष्ठमें विहितकर्मोंके फल भोक्तृत्वरूप अधिकारका निरूपण हैं अर्थात् वेदविहित कर्मोंके फलके भोगनेमें कैसे अधिकारीका अधिकार है इसका विचार किया है (६) सातवेंसे प्रकृति (महायाग) में उपदिष्ट अंगोंका विकृति (छोटे) यागोंमें मासान्यरूपसे अतिदेशका निरूपण है अर्थात् जिन अंग उपांगोंका प्रकृतियागमें विधान होचुका है विकृतियागमें भी उनहीका अनुवर्तन करलेना उचित है इत्यादि विचार किया हैं । ७ । अष्टममें (आग्नेयोऽष्टाकपाल) इत्यादि

प्रकृतियागके अङ्गोंको ' सौर्य्यं चरुं निर्वपेत् ' इत्यादि विकृतियागोंमें सप्तदशद्रव्यदेवतादिद्वारा विशेषरूपसे अतिदेशका निरूपण है (८) नवममें प्रकृतियागमें उपदिष्ट मन्त्रोंकी सामगायनकी तथा संस्कारकर्मोंकी ' प्रकृतिवद्विकृतिः कर्तव्या ' इस अतिदेश वाक्यसे विकृतियागमें भी प्राप्ति प्राप्तहुई तो प्रकृतिगत देवतादि वाचक पदको छोडकर विकृतिगत देवतादि वाचक पदको अध्याहार करनेकी ऊहाका निरूपण किया है अर्थात् प्रकृतिगत देवताके स्थानापन्न विकृतिगत देवताके अध्याहारपूर्वक यावत् विकृतियाग प्रकृतियागकी तरह करना उचित है जैसे ' आग्नेय ' याग महायाग होनेसे प्रकृतियाग है । तथा ' सौर्य्य ' याग उसकी विकृति छोटा याग है । यहां प्रकृतियागका देवता अग्नि है और विकृतियागका सूर्य्य है तहां प्रकृतियागके प्रकरणमें ' अग्नये जुष्टं निर्वपामि ' ऐसा मन्त्र पढा है इसी मन्त्रकी यदि विकृतियागमें आवृत्ति करनी होय तो अग्निदेवताके स्थानापन्न सूर्य्यका उच्चारण करना अर्थात् ' सूर्य्याय जुष्टं निर्वपामि ' इत्याकारक विपरिणाम करके उच्चारण करनेकी ऊहाका निरूपण है (९) दशममें विकृतियागोंमें ' प्रकृतिवद्विकृतिः कर्तव्या ' इत्यादि चोदकवाक्यसे प्राप्तहुए प्राकृत अंगोंके प्रकृतिमें सावकाश चिन्तनपूर्वक विकृतियागगत उपदिष्ट विशेष अंगों से बाधका निरूपण किया है अर्थात् विकृतियाग पठित विशेषअंगों से चोदकवाक्यप्राप्त प्राकृतअंगोंका बाध होता है इत्यादि विचार किया है (१०) एकादश अध्यायमें अनेक अङ्गियोंकी विधिमें प्राप्त हुए अंगोंका एक ही बार अनुष्ठान करनेसे सबही अंगियोंपर तुल्यरूपसे उपकार करनेवाले तन्त्रका निरूपण है दर्शपौर्णमासादि प्राहा यागोंका नाम अंगी है । तथा प्रयाज अनुयाज आदि उनके अङ्ग हैं (११) द्वादश अध्यायमें एक अंगीप्रयुक्त अंगोंके अनुष्ठानको अनुष्ठानप्रयोजक सामर्थ्यरहित भी अङ्गी आन्तरमें उपकार प्रसङ्गका निरूपण है इत्यादि यह परम संक्षेपसे जैमिनीय द्वादशअध्यायरूप महाशास्त्रका विषय है ईश्वरका विधान इस शास्त्रमें नहीं है जीवोंका स्वरूप कर्ता भोक्ता चेतन नाना तथा व्यापक है । जगत् इस शास्त्रमें नित्य है कभी इसका निर्मूल

नाश नहीं होता शुभाशुभ कर्मोंका फल जीवको होता है । स्वर्गप्राप्तिरूपही मुक्ति है । पदार्थोंका विचार मीमांसा शास्त्रके मूलकारण यद्यपि सूत्रोंमें नहीं कहा तथापि इनके अनुगामी कुमारिल भट्ट आदि विद्वानोंने कुछक भेदसे प्रायः कणाद महर्षिहीके मार्गका आश्रयण किया है । विहितकर्मोंके स्वरूपका सम्यक् ज्ञानही इस शास्त्रका तत्त्वज्ञान है प्रमाणभी इस शास्त्रके अनुगामी प्रभाकरके मतमें प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द तथा अर्थापत्ति भेदसे पाँच हैं । और पूर्वोक्त कुमारिल भट्टके मतसे अनुपलब्धिको मिलाकर छः हैं इत्यादि यह संक्षेपसे पूर्वमीमांसा शास्त्रका सिद्धान्त है (६) इत्यादि षड्शास्त्रके सिद्धान्तको श्रवणकर राजकुमारके चित्तमें बहुतही सन्तोष हुआ और उक्त पण्डितजीको अपना सच्चा गुरु जानकर बहुत कालतक सन्मानपूर्वक अपने पास रक्खा । तथा भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, राजनीति आदिके अनेक प्रकार उपदेशोंको सुनकर आध्यात्मिक शारीरिक तथा राष्ट्रीय तीनों प्रकारकी उन्नतिको करताहुआ अपनेको कृतकृत्य माननेलगा । पश्चात् वृद्ध-महाराज चन्द्रकीर्तिके परलोक होनेसे तथा राजकुमार मनोहरसिंहके सर्व-राज्यकार्य्ययोग्य होनेसे उक्त पण्डितजी राजकुमार द्वारा सन्मानित होकर श्रीकाशीजी जाय विराजे । और पीछे सद्गुणसम्पन्न राजकुमार पितासे भी चौगुन प्रतापशील होकर बहुतकालतक राजकरता रहा इति ।

दोहा ।

पढे सुने जो ग्रन्थ यह, गोविंदको उपदेश ॥
श्रीगुरु नानक करें तिस, उद्यमयुक्त हमेश ॥ १ ॥

इति श्रीगोविन्दसिंहसाधुकृत उद्योगप्रारब्धविचार समाप्त ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-
खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" छापाखाना, खेतवाडी-बंबई

विक्रय्यपुस्तकोंकी संक्षिप्त-सूची।

पुस्तकोंका नाम.	कीमत.
शुक्रनीति भाषाटीका सहित (राजप्रबन्ध व नीति ...	१॥)
भर्तृहरिशतक भाषाटीका (नीति शृंगार, वैराग्य) ...	१)
चाणक्यनीति भाषाटीका दोहा सहित जिल्दबँधी ...	॥)
पंचतंत्र मूल	१॥)
पंचतंत्रभाषाटीका शिक्षाचातुर्यताकी सीढी	२)
विदुरनीति हिंदुस्थानी श्रीमहाराज धृतराष्ट्र को विदुरने उपदेश दिया है यक्ष प्रश्नोंकेसह	।)
विदुरप्रजागर राजनीति मारवाडीभाषा	॥)
विदुरप्रजागर राजनीति छंदबद्ध कविता देखनेही योग्यहै	।)
राजनीति पंचोपाख्यान भाषा	।≡)
कुण्डलिया गिरिधररायकृत (सामायिक नीति वेदांत संयुक्त) अबकीबार दूनी होगई है	।-)
गीतगोविंदमूल	≡)
गीतगोविंद राधाविनोद सहित संस्कृत टीका और भाषा टीका समेत...	१)
भामिनीविलासमूल	।)
भामिनीविलास महावीरप्रसादकृतभाषा टीका	१)
माघकाव्य (शिशुपालवध) सटीक संपूर्ण	२॥)
तथा पूर्वार्द्ध ९ सर्ग	१।)
भर्तृहरिशतकत्रयसंस्कृतटीका और भाषाटीका ग्लेज ...	१)
अमरुशतक (शृंगार और वेदान्तपर दोटीकासह ...	॥≡)